मन की आंखें खोल

सुदर्शन जी महाराज

डायमंड बुक्स

ISBN : 978-81-288-3011-2

© **लेखकाधीन**

प्रकाशक : **डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.**
X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II
नई दिल्ली-110020
फोन : 011-41611861, 011-40716600
फैक्स : 011-41611866
ई-मेल : sales@dpb.in
वेबसाइट : www.dpb.in
संस्करण : 2010
मुद्रक : आदर्श प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली - 32

MAN KI ANKHAN KHOLE
by : Sudarshan ji Maharaj

पुस्तक के सम्बन्ध में

आचार्य सुदर्शन एक विचारक संत हैं। पिछले पचास वर्षों से वे शिक्षा, नैतिकता और जीवन जीने की विधि का प्रचार कर रहे हैं। उनका मानना है कि नई पीढ़ी के बच्चे हमारे देश का भविष्य हैं। बालकाल में अगर उन्हें जीवन के विविध नैतिक नियमों का परिचय करा दिया जाय तो वे एक दिन पूर्ण मानव बनकर समाज में खड़े होंगे।

आचार्य जी ने अबतक शिक्षा, नैतिकता और जीवन जीने की विधि (Methoded of life) पर सत्तर से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। उन्हीं पुस्तकों के अमूल्य संक्षिप्त अंशों को राष्ट्रीयस्तर के सम्मानित पत्र-पत्रिकाओं एवं अखबारों ने प्रकाशित किया है।, जिससे लाखों पाठकों को लाभ हुआ है। उन्हीं के अनुरोध पर मैं पुनः पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशित संदर्भों को एकत्र कर पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निर्णय किया है। इसके लिए हम उनका आभार प्रगट करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक "मन की आँखें खोल" में छोटे-छोटे अंशों को प्रकाशित किया जा रहा है जो बड़े ही महत्वपूर्ण और मर्मस्पर्शी हैं, इन संदर्भों से अगर हमारे सुधी पाठकों विशेषकर नई पीढ़ी के बच्चों को कुछ भी लाभ हुआ, तो हम अपना प्रकाशकीय दायित्व निर्वहन करने में सफल होंगे।

कृतज्ञता सहित

प्रकाशक

अनुक्रमणिका

1. मन भी कुछ होता है 9
2. मन सम्पूर्ण शरीर को नियंत्रित करता है 11
3. भीतर की ओर जाओ 14
4. मन का लाभ 17
5. परमात्मा से मिलन के लिए आत्मिक सुधार जरूरी 19
6. हे मानव! चित का निरोध करो 23
7. मानसिक शांति ही स्वस्थ रख सकती है 25
8. सुख अंतर्मन की अनुभूति है 28
9. अभ्यास से भटकते मन को स्थिर करें 30
10. अच्छे विचारों से खिलता है जीवन पुष्प 32
11. विचार एक ऊर्जा है 34
12. वैचारिक प्रदूषण से बचो 36
13. दूर रहो इन विकारों से 38
14. मन के विकारों से मुक्ति पाएं 39
15. मन में न रखें बदले की भावना 40
16. पहले अपने मन को साफ करें 42
17. संशय को मन से दूर रखो 44
18. संदेह है सबसे बड़ा शत्रु 46
19. सद्विचार का संकल्प लें 47
20. मन को जगाता है मंत्र 49
21. साधने पर ही फल देता है मंत्र 51
22. महामृत्युंजय मंत्र का अमोघ प्रभाव 53
23. जीवन का उद्देश्य 55

24. जीवन को किसी उद्देश्य से मत बांधो 62
25. शिक्षा का प्रकाश फैलाना ही उद्देश्य 67
26. एक दीप जलाएं 68
27. निज कृत कर्म भोग सुनु भ्राता 70
28. उन्नति का मूल है कर्म 72
29. कर्म से बदलता है भाग्य 74
30. कर्मों से बदल डालो दुर्भाग्य 76
31. कर्म करें, फल की न सोचें 82
32. कर्त्तव्य-विमुख न हों 84
33. कर्त्तव्यशील पाता है भाग्य का साथ 86
34. छोड़ दूसरे की चिन्ता, पहले अपना कल्याण कर 88
35. जीवन का आधारभूत लक्ष्य है खुशी 91
36. हंसो और स्वस्थ रहो 93
37. जीवन आनन्दमय कैसे बने? 95
38. जीवन आनन्दमय हो जाए 98
39. मानव जीवन रहस्यों से भरा ... 101
40. जीवन परमात्मा का प्रसाद है ... 103
41. जीवन को प्रेममय बनाओ ... 105
42. जीवन को बनाएँ रागात्मक ... 112
43. जीवन में बनें आस्थावान ... 114
44. स्वाभिमानी होकर जीएं ... 116
45. वर्तमान में जीना सीखो ... 117
46. दिखावे से बचो ... 119
47. प्रदर्शन से बचें वास्तविकता में जीएं ... 121
48. पहले अहंकार की दीवार को ढहाओ ... 123
49. षड्विकारों से मुक्ति ही असल धर्म ... 125
50. जीवन को आध्यात्मिक कैसे बनाएं ... 127
51. मोह का त्याग ही है भक्ति का मार्ग ... 130
52. भक्ति के लिए ईर्ष्या का शमन जरूरी ... 132
53. साधना की अतल गहराई ... 134

54. अहंकार का त्याग ही भक्ति है ...136
55. अहं बाधक है ईश्वर की प्राप्ति में ...138
56. मोह का क्षय हो जाना ही मोक्ष है ...140
57. भक्ति भाव से कथा सुनने पर ही लाभ ...142
58. प्रभु चिंतन पर छोड़ें सब ...144
59. होइहि सोइ जो राम रचि राखा ...146
60. जीवन में आशा का दीप जला ...148
61. समर्पण की पूर्व भूमिका है भरोसा ...150
62. आस्था और विश्वास ...152
63. मार्ग की चिंता मत करो ...155
64. सच्ची राह ...157
65. सत्य की खोज ...160
66. अशांत मनुष्य की शान्ति की खोज ...162
67. सुख की खोज ...164
68. दु:खी दिखने की आदत छोड़ें ...166
69. मनुष्य है प्रसन्नता का प्रतीक ...168
70. बीमारी निराशा की कोख से जन्मा पौधा ...170
71. आशा ही कारण है दु:ख का ...172
72. सहानुभूति लेना कायरता ...174
73. सहानुभूति पाना पाप है ...176
74. ऐसे कम होती है पीड़ा ...178
75. गुरु अंधकार से उबारता है ...180
76. वाणी का संयम है मौन ...182
77. बातन हाथी पाइए, बातन ...184
78. बोलने की अनमोल कला ...186
79. पहले तोलो फिर बोलो ...189
80. हम सबसे नाटक करा रही है माया ...191
81. योग प्रकृति के प्रभाव को नियंत्रित करता है ...193
82. बुढ़ापा जीवन काश्रृंगार ...196
73. कैसे हों दीर्घायु? ...198

84. आंतरिक ऊर्जा बढ़ाएं ...200
85. आत्म-पीड़ा से बचें ...202
86. खुद को न सताएं ...204
87. काम से ऊपर उठें ...206
88. जीवन पर अमिट प्रभाव है सोलह संस्कारों का ...208
89. बच्चों को सिखाएं संस्कार ...210
90. बुरी आदतों से बचो ...212
91. जल्दबाजी से बचो ...214
92. प्रकृति सरलता देती है ...216
93. व्यक्ति का अर्थ है व्यक्त होना ...218
94. सदा निश्छल और सरल बने रहें ...220
95. अपने चरित्र से बनें सुन्दर ...222
96. नैतिकता का मूल्य ...224
97. अपने आचरण को सुन्दर बनाएं ...226
98. तो बच्चा बन जाओ ...228
99. प्रेम गली अति संकरी जा में दो न समाय ...230
100. इच्छा मात्र से नहीं मिलता मनोवांछित फल ...233
101. अपनी मर्जी के मालिक बनो ...235
102. हृदय का आमंत्रण है प्रणाम ...237
103. पैर छूकर प्रणाम से मिलती है ऊर्जा ...239
104. प्रणाम का अर्थ पीड़ामुक्ति की याचना ...241
105. सिर झुका कर प्रणाम करें ...243
106. श्रीकृष्ण ही धर्म है ...245

1

मन भी कुछ होता है

हमारे पास पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और एक मन होता है। सबसे पहले हम अपनी उन इंद्रियों को जो बाहर की ओर भाग रही हैं, बंद करें। जब हमारी इंद्रियां बाहर की ओर भागना बंद कर देंगी, तो स्वाभाविक रूप से उनका झुकाव हमारे भीतर की ओर हो जाएगा। ठीक उसी प्रकार जैसे हम पानी की धारा को एक तरफ बहने से रोकते हैं, तो वह दूसरी ओर से बहने लगती है। मनुष्य के जीवन की साधना का वही अर्थ होता है। साधना में कुछ और नहीं होता, वह तो अपनी इंद्रियों को साधने का माध्यम मात्र है। हमारी साधना जितनी गहरी होगी, हमारी इंद्रियां हमारे भीतर उतनी ही गहराई में उतरती जाएंगी।

प्राचीन ग्रंथों में सात कुंडलियों की चर्चा की गई है। संत कबीरदास ने भी इसकी चर्चा की है। इसके अनुसार हमारी जो सबसे निचली कुंडली है, उसे हम काम केंद्र भी कहते हैं। इसके बाद हम ऊपर की ओर बढ़ते जाते हैं। कबीरदास एवं अन्य संतों ने सात केंद्रों या सात कमलों की भी बात की है। इस सिद्धान्त की वैज्ञानिकता पर पश्चिमी देशों, खासकर-जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका आदि में अनेक शोध और प्रयोग हुए हैं। महान मनोवैज्ञानिक **फ्रॉयड** ने भी **कबीरदास** के सात केंद्रों के सिद्धान्त पर काम किया है। फ्रॉयड के काम और विचार के आधार केवल यही रहे कि अपनी समझ के मुताबिक अपनी इंद्रियों को मोड़कर साधक एक दूसरे के मन और अनुभव के क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है, लेकिन वह जीवन भी यह नहीं जान सकता कि इंद्रियों को

भीतर की ओर मोड़ने पर क्या और कैसा अनुभव करता है। फ्रॉयड ने अपने शिष्यों के साथ भी इस विषय पर काम किया और यह निष्कर्ष निकाला कि मन भी कुछ होता है। मन के अंदर भी कुछ ऐसी चीजें होती हैं, जिससे अनुभव की प्राप्ति हो सकती है। भारत के कुछ मनीषियों ने इस अनुभव को पहले ही प्राप्त कर लिया था।

कुछ लोगों ने एक बार महान वैज्ञानिकों अलबर्ट आइन्स्टीन से पूछा कि आप तो दुनिया के महानतम वैज्ञानिकों में से एक हैं। आपसे बड़ा मस्तिष्क तो इस देश के किसी भी व्यक्ति के पास नहीं होगा? तो आप जानते हैं कि आइन्स्टीन ने क्या जवाब दिया-"नहीं, ऐसा नहीं है। मेरा मस्तिष्क तो अभी पूर्ण विकसित भी नहीं हुआ है।" उन्होंने यह जरूर कहा कि "मेरा मस्तिष्क, अन्य लोगों की तुलना में कुछ अधिक विकसित है। इसके बावजूद वह केवल तीन प्रतिशत ही विकसित हुआ है।" यह जवाब सुनकर लोगों ने आइन्स्टीन से पूछा कि क्या किसी के मस्तिष्क का विकास तीन प्रतिशत से भी अधिक हुआ है? आप जवाब सुनकर दंग रह जाएंगे, क्योंकि जवाब में आइन्स्टीन ने कहा कि, "भारत के ऋषियों का मस्तिष्क पांच प्रतिशत तक विकसित हो चुका है।"

•

2

मन सम्पूर्ण शरीर को नियंत्रित करता है

प्राय: अकस्मात मृत्यु के समय ऐसा ही होता है। एक मिनट पहले जीव दौड़ता रहता है। ज्यों ही कोई घटना घटती है तो शरीर और जीव का जो आधार बना होता है वह भंग हो जाता है। आधार भंग होते ही ब्रह्मांड से उसका सम्बन्ध टूट जाता है और वह मर जाता है। मृत्यु के कई और भी कारण हैं जैसे-शरीर का बूढ़ा हो जाना, बूढ़ा होने के अर्थ है कि शरीर का आधार धीरे-धीरे कमजोर होकर ब्रह्मांड से जुड़ने से असमर्थ हो रहा है। शरीर का आधार जब तक ब्रह्मांड से जुड़ा रहता है, शरीर बूढ़ा नहीं हो सकता। आज ऐसे बहुत लोग हैं जो 100-150 वर्षों तक स्वस्थ जीवन जी रहे हैं। दूसरा कारण यह है कि एक जवान व्यक्ति भी अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है।

क्योंकि जवान व्यक्ति स्वयं अपने शरीर के आधार को अपनी बुरी आदतों से बर्बाद कर लेता है। जैसे कोई शराब पीता हो, तो शराब पीने से कोई नहीं मरता। शराब पीने से उसका लीवर खराब होता है और लीवर के खराब होते ही वह मर जाता है। मृत्यु का प्रधान कारण है, शरीर के फेल होते ही ब्रह्मांड से जो प्राण ऊर्जा का प्रवाह अनवरत प्रत्येक जीव पर हो रहा है उसमें अवरोध हो जाना। कभी-कभी मरते हुए व्यक्ति को भी डॉक्टर कुछ दवा देकर

जिलाता रहता है। इसका अर्थ है कि जीव की प्राण ऊर्जा से ब्रह्मांड का सम्बन्ध किसी तरह स्थापित किया जाता है। लेकिन यह प्रयास देर तक नहीं चलता। इस अध्यात्म विज्ञान को थोड़ा और साफ करें। सामान्य विज्ञान कहता है कि कोई भी व्यक्ति एक बार में ही नहीं मरता। रूस के वैज्ञानिक तो यह मानते हैं कि पहले दिल मरता है फिर दिमाग और फिर दूसरे अंग। जिसे हम मरा समझते हैं वह पूर्ण रूप से मरा नहीं होता एक-एक अंग धीरे-धीरे मरता है। मतलब यह कि धीरे-धीरे उस अंग का संबंध ब्रह्मांड से टूटता जाता है। जैसे किसी वृक्ष की डाली को काटकर गिरा दिया जाए तो डाली का प्राणत्व कटते ही नहीं निकलता, कुछ समय लगता है। शरीर की अंगुली भी जब कट कर गिर जाती है तो देर तक उंगली कांपती रहती है। अब इस प्रश्न का उत्तर एक और आध्यात्मिक दृष्टि से खोजें।

हमारे शरीर में पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां और एक मन होता है। मन हमारे पास एक ही नहीं है मन भी पांच हैं। **अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, विज्ञानमय कोष, मनोमय कोष और आनन्दमय कोष,** यह सब अध्यात्म की समझ है। जिसका विस्तार से वर्णन मैंने अन्य पुस्तकों में किया है। लेकिन मैं यहां यह बताना चाहता हूं कि हमारे पास अनेक मन हैं। एक प्रधान मन है, जो सम्पूर्ण शरीर का नियंत्रण करता है। हमारी इन्द्रियां जैसे आंख किसी वस्तु को देखती है और उसे अच्छा लगता है। तो वह मन को सूचना देती है कि अमुक वस्तु सुन्दर है। मन अपने छोटे मन को जो विभिन्न अंगों में बैठा है, आदेश देता है कि तुम उत्सुक हो जाओ। तब हमारा अंग विशेष सक्रिय हो जाता है। प्रधान मन कभी इस अंग को आदेश देता है, कभी उस मन को। यह सब आधार बना हुआ है। जब यह आधार फेल कर जाता है, तो जीव मर जाता है। आधार को क्रियाशील बनाकर ब्रह्मांड से जोड़ना जन्म और टूटना मृत्यु है। यह पूरा ब्रह्मांड प्राणतत्त्व से भरा है। प्राणायाम के माध्यम से हम उसी प्राणतत्त्व को अपने शरीर में अधिक से अधिक संग्रह करके प्राणवान बनाते हैं। इसी कारण हमें प्राणी कहा जाता है। जन्म में

जीव कहीं से आता नहीं, प्राण तो सर्वत्र विद्यमान है। जब प्राण तत्त्व घनीभूत हो जाता है तो जीव बन जाता है और जब विखंडित हो जाता है, तो मर जाता है। जैसे दीपक जलता है तो उसका प्रकाश यहीं उपलब्ध रहता है, बुझ जाने पर यहीं अदृश्य हो जाता है।

प्राण जिसे प्राणी वही, यही जगत का खेल।
कण-कण विचरे प्राण तत्त्व, ज्यों सरसों में तेल॥
तिल्ली घर्षत अग्नि प्रकटे, त्यों जगति में प्राण।
प्राण तत्त्व से भरा समुन्दर, कर अपना कल्याण॥

•

3

भीतर की ओर जाओ

साधना के नियम व शर्तों के अनुसार आप अपने मन को इस तरह नियंत्रित करते हुए एक ओर केंद्रित हो जाओ कि जब आपके कॉन्सियसनेस से आगे का दरवाजा खुले, तो आपको एक और सुपर **कॉन्सियसनेस** का अनुभव होने लगे। इसके बाद कोई भी वहां से कॉन्सियसनेस में लौटकर नहीं आना चाहता क्योंकि **सुपर कॉन्सियसनेस** का अनुभव अत्यधिक आनन्ददायक होता है। इसके बाद साधक यह समझने लगता है कि जब सुपर कॉन्सियसनेस में आने के बाद इतना आनन्द प्राप्त हो रहा है, तो क्यों न इसके आगे के दरवाजे में झांककर देखा जाए। इस तरह के विचार मन में आने के बाद जब हम उस मार्ग पर आगे बढ़ते हैं, तो हमारे सामने एक और दरवाजा खुलता है, जिसका नाम होता है-**कलेक्टिव कॉन्सियसनेस**। यह दरवाजा जैसे ही खुलता है, लोग सुपर कॉन्सियसनेस को भी भूल जाते हैं और यह सोचने लगते हैं कि हम बेकार ही चांदी के सिक्कों के लिए दौड़ रहे थे?

लोगों को ऐसा महसूस होने लगता है कि कॉन्सियसनेस में हम लोहे के सिक्कों से जुड़े हुए थे, जबकि सुपर कॉन्सियसनेस में चांदी के सिक्के प्राप्त हुए। लेकिन कलेक्टिव कॉन्सियसनेस में सोने के सिक्के भरे पड़े हैं। इस तरह के अनुभव के बाद उसे और अनुभव की प्राप्ति होने लगती है। इसके बाद साधक के मन में और अधिक लोभ आने लगता है। वह सोचने लगता है कि क्या इससे भी आगे कोई और दरवाजा है? हां, इससे भी आगे के दरवाजे को कहते हैं **कॉस्मिक**

कॉन्सियसनेस। जब कोई इस कॉस्मिक कॉन्सियसनेस में पहुंच जाता है, तो वह बाकी सभी सुखों को भूल जाता है। इसकी इंद्रियां शिथिल पड़ जाती हैं और वह स्थाई कॉन्सियसनेस में प्रवेश कर जाता है। तब साधक यह भूल जाता है कि उसके आगे-पीछे क्या हो रहा है? अब सवाल यह उठता है कि कॉन्सियसनेस, सुपर कॉन्सियसनेस, कलेक्टिव कॉन्सियसनेस और कॉस्मिक कॉन्सियसनेस में प्रवेश करने की विधि क्या है?

इनमें प्रवेश की विधि बहुत सरल है। आप जब कभी किसी ऊंचे वृक्ष को देखते हैं, तो ऐसा महसूस करते होंगे कि यह बहुत ऊंचा है। आप यह भूल जाते हैं कि यह वृक्ष जितनी ऊंचाई लिए खड़ा है, उसके नीचे उसकी जड़ भी उतनी ही गहराई तक होगी। कोई भी वृक्ष जितना नीचे गहराई तक गया होगा, वह उतना ही ऊंचा भी होगा। आपने दूब घास देखी होगी, उसकी जड़ अधिक नीचे तक नहीं जाती, इसलिए उसकी ऊंचाई भी अधिक नहीं होती। यह वास्तविकता है कि कोई पेड़ जितना अधिक नीचे की ओर अपनी जड़ें फैलाएगा, उसका ऊपरी शीर्ष भी उतनी ही ऊंचाई पर स्थित होगा। इसी प्रकार साधना के क्षेत्र में आप जितनी अधिक गहराई में उतरेंगे, उतने ही मोतियों को प्राप्त कर सकेंगे। साधना भी उल्टी दिशा में चलती है। आप उसकी गहराई में जितना अधिक उतरेंगे, आपकी ऊंचाई उतनी ही बढ़ती चली जाएगी।

हमारा शरीर चुंबक के भंडार की तरह है। यदि इन्हें एकत्रित करके एक दिशा में संचालित किया जाए, तो बड़ी से बड़ी वस्तु को भी खींचा जा सकता है। पृथ्वी में भी अपार चुंबकीय शक्ति है। हम प्रतिक्षण पृथ्वी की अपार चुंबकीय शक्ति से प्रभावित होते रहते हैं क्योंकि पृथ्वी एक बड़ा मैगनेट है और हमारा शरीर छोटा मैगनेट।

छोटे मैगनेट को बड़ा मैगनेट (पृथ्वी) हमेशा अपनी ओर खींचता रहता है। जब कभी हम भोजन करते हैं, सोते हैं या पूजा-पाठ करते हैं, तो उस समय हमारे शरीर को पृथ्वी के आकर्षण शक्ति से मुक्त रहना चाहिए। तभी शरीर भोजन पचा सकता है या हमें गहरी नींद आ सकती है। ध्यान और पूजा करते समय भी हमें उसे पृथ्वी के आकर्षण केन्द्र से मुक्त रखना चाहिए। इससे न केवल शरीर अपना काम ठीक ढंग से

कर पाता है, बल्कि मन भी एकाग्र हो जाता है। शरीर की आंतरिक क्रिया स्वतंत्र रूप से चल पाती है। इसलिए प्रयास करना चाहिए कि भोजन काल, सोते समय और ध्यान करते समय शरीर और पृथ्वी का संबंध टूट जाए। यह तभी संभव है, जब शरीर और पृथ्वी के बीच कोई कुचालक वस्तु हो।

भोजन करते समय भारत के लोग लकड़ी के पीढ़े पर बैठते हैं। इसके पीछे कारण यह है कि शरीर भोजन करते समय केवल भोजन करे, वह पृथ्वी के आकर्षण केन्द्र से प्रभावित न हो। जब दो मैगनेट, यानी शरीर और पृथ्वी का आकर्षण टकराता है, तो पाचन क्रिया अस्त-व्यस्त हो जाती है। इसलिए लकड़ी का पीढ़ा अथवा लकड़ी की मेज पर ऐसे बैठ जाएं, जिससे पृथ्वी स्पर्श न हो।

कंबल या मृगछाल पर बैठकर पूजा करने की यही वजह है कि शरीर और पृथ्वी के बीच कुचालक वस्तु रहती है। कंबल के अतिरिक्त किसी भी सुचालक वस्तु पर बैठकर ध्यान लगाया जाए, तो ध्यान नहीं लगता। ध्यान बराबर खंडित होता रहता है। सोते समय भी लकड़ी का पलंग अथवा चौकी का उपयोग हम इसलिए करते हैं, ताकि हमारे मस्तिष्क को पृथ्वी अपनी ओर आकर्षित न करे। लकड़ी पर सोते समय पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से शरीर मुक्त रहता है, तभी गहरी नींद आ सकती है। किसी धातु पर सोना पूर्णतः वर्जित है।

प्राचीन काल में सभी लोग लकड़ी की खड़ाऊं पहनते थे, क्योंकि वह शरीर को मुक्त रखती है। आज भी भारत के संत-महात्मा खड़ाऊं पहनते हैं, ताकि उनका शरीर पृथ्वी के आकर्षण से मुक्त रहे।

खड़ाऊं से एक और फायदा यह है कि हमारे तलवे जब खड़ाऊं से घर्षण करते हैं, तो तलवों में जितनी भी नाड़ियां हैं, उसका मर्दन होता रहता है और उनमें रक्त संचार बढ़ जाता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि खड़ाऊं से शरीर का पृथ्वी से संबंध टूटा रहता है, जिससे शरीर की क्रियाएं नियमित चलती रहती हैं।

•

4

मन का लाभ

आप जब कभी भी किसी व्यक्ति से कोई काम कराना चाहें या कोई लाभ लेना चाहें, तो उसके पास जाकर उसे सहलाएं। उसकी, उसके बच्चों व उसके परिवार की झूठी तारीफ करें। फिर देखिए वह गुब्बारे की तरह फूल जाएगा। फिर आप उससे अपने मन का लाभ प्राप्त कर सकते हैं। सहानुभूति दो प्रकार की होती हैं–**सकारात्मक** और **नकारात्मक**। सकारात्मक सहानुभूति हमारे जीवन के लिए लाभदायक होती है। उदाहरण के लिए यदि हमें पीड़ा हो और हमें सकारात्मक सहानुभूति मिले, तो हमारी पीड़ा में आराम की अनुभूति होती है तथा कई बार हमारी पीड़ा समाप्त भी हो जाती है। पर यदि हमें केवल नकारात्मक सहानुभूति मिलती रहे, तो हमारा संपूर्ण व्यक्तित्व फिर से खोखला हो जाएगा।

नकारात्मक सहानुभूति का उद्देश्य ही आपको नष्ट करना होता है। यह आपके अहम् पर चोट करता है। इसे उभार देता है। जिस प्रकार शराब का सेवन करके कोई व्यक्ति किसी गलत काम में लग जाता है। उसी प्रकार प्रशंसा करके या बहला-फुसलाकर, चिकनी-चुपड़ी बातें करके किसी से काम निकलवा लेना शर्मनाक होता है। हमें ऐसी सहानुभूति नहीं लेनी चाहिए। जिस व्यक्ति ने यह समझ लिया कि कौन-सी सहानुभूति गलत है, तो जीवन का नाश हो जाएगा। वह कभी किसी गलत धारणा में नहीं पड़ेगा। अतः यही नियम क्यों न बना लिया जाए कि मुझे झूठी सहानुभूति या फिर सहानुभूति चाहिए ही नहीं। बाहर

की कोई भी कैसी भी सहानुभूति आपके लिए कारगर साबित नहीं होगी। आपके चरित्र का जो व्यक्तिगत विकास आपको अपनी सहानुभूति से होगा, वह आपके चरित्र को प्रभावित करेगा। फिर आप दूसरे से प्रभावित होकर उसके द्वारा क्यों नियंत्रित हो रहे हैं? ऐसा करके आपने अपने विकास को रोक लिया है। अपने चरित्र को दबाकर किसी अन्य के चरित्र को ओढ़ लिया है। यहां आप नष्ट हो जाते हैं और कोई दूसरा अपने चरित्र के माध्यम से आपके चरित्र को प्रभावित कर देता है। वह अपने चरित्र से आपके चरित्र को अपना गुलाम बनाकर आपको नियंत्रित करने लगता है। इसलिए आपको सहानुभूति से डरना चाहिए। सहानुभूति यदि सकारात्मक हो, तो अवश्य ही आपका दर्द कम होगा, लेकिन यदि आपको मिलने वाली सहानुभूति में गलत दृष्टि मिली है तो फिर ऐसी सहानुभूति किस काम की? आप दूसरे की सहानुभूति ग्रहण करने की बजाय अपनी सहानुभूति ग्रहण करें। आप अपनी सहानुभूति तभी ग्रहण कर पाएंगे, जब भीतर की ओर मुड़ेंगे। आप तो शक्तिपुंज हैं, आपको कोई क्या समझाएगा? आप केवल इसी दृष्टि को अपने जीवन में उतारें कि आपको किसी की सहानुभूति लेने की जरूरत नहीं है। आप केवल अपनी सहानुभूति स्वीकार करेंगे, तभी आपका जीवन आनंदमय हो सकता है।

•

5

परमात्मा से मिलन के लिए आत्मिक सुधार जरूरी

परमात्मा के सम्पूर्ण गुणों से युक्त उनका अंश 'आत्मा' हमारे अंदर है, हम अपनी आत्मा के संपर्क में रहकर परमात्मा से जुड़ने का प्रयास करें, बड़े ही आश्चर्य की बात है कि आज हर व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त करना चाहता है। दिन-रात वह इसी प्रयास में लगा रहता है कि वह परमात्मा को प्राप्त कर ले। वह इसके लिए पूजा-अर्चना, हवन, पाठ आदि माध्यमों का सहारा लेता है, लेकिन सही मायने में वह परमात्मा को पाने का प्रयास करता ही नहीं है। ये तमाम चीजें तो एक परंपरा के तहत चली आ रही हैं। सभी लोग, उन्हीं बातों में लगे हुए हैं, लेकिन वे कोई सकारात्मक प्रयास नहीं करते।

अगर किसी व्यक्ति को परमात्मा को प्राप्त करना है, तो उसे स्वयं ही प्रयास करना होगा। दुनिया में आज तक कोई ऐसा गुरु नहीं हुआ है, जो हमारे बदले में तपस्या कर ले और उसका फल हमें प्राप्त हो जाए। तमाम गुरु तो हमें मार्ग बताने वाले हैं, वे हमारे बदले में कार्य करने में समर्थ नहीं हैं। कोई व्यक्ति किसी महापुरुष को जिस भाव से आमंत्रित करता है, उसे उसका फल भी उसी भावरूप में ही मिलता है, जो लोग हृदय से आमंत्रित करते हैं, तो दोनों लोगों के हृदयों का मिलन होता है और इसके बाद जो फल मिलता है वह भी सकारात्मक होता है। जब उनके हृदय से दुआ या आशीर्वाद निकलता है तो वह बहुत ही

प्रभावकारी होता है। जब आप दीपावली के अवसर पर अपने घर में लक्ष्मी के आगमन पर उनके स्वागत के लिए अपने घर की साफ-सफाई करते हैं, दीवारों पर रंग-रोगन करते हैं और फिर दीप जलाकर माता लक्ष्मी के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं। आप सोचते हैं कि माता लक्ष्मी के आगमन पर उन्हें कोई कठिनाई न हो, वे सुगमता से आपके घर आ सकें और आपकी तैयारी देखकर प्रसन्न हो जाएं, आप दीवाली पर इतनी साफ-सफाई कर लेते हैं, लेकिन परमात्मा को तो आप चौबीसों घंटे अपने घर पर बुलाना चाहते हैं, तो क्या आपने इसके लिए अपने घर की सफाई कर ली? क्या अपने-अपने घर का कूड़ा-करकट बाहर फेंक दिया? जिस दिन आपके शरीर रूपी घर से कूड़ा-करकट निकल जाएगा, आपको परमात्मा के स्वरूप का प्रकाश धीरे-धीरे प्राप्त होने लगेगा। इसके बाद आपके शरीर का रुपांतरण हो जाएगा।

हमारे यहां जितने भी गुरु महात्मा हुए हैं, वे कोई परमात्मा नहीं हैं, उन्होंने तो अपनी साधना के बल पर परमात्मा से सीधा संपर्क स्थापित कर लिया है और उसके विद्युत प्रवाह से उनकी ऊर्जा चार्ज हो जाती है। आप में और उस गुरु के शरीर में कोई अंतर नहीं है, वे भी भोजन करते हैं, आप भी भोजन करते हैं लेकिन उनका शरीर चार्ज हो चुका है और आपका शरीर अभी चार्ज नहीं हुआ है। चुम्बक और सामान्य लोहे में जो अन्तर होता है, वही अंतर आपके शरीर और गुरुओं के शरीर में होता है। चुम्बक एक चार्ज लोहा है, लेकिन सामान्य लोहा चार्ज नहीं किया जाता। इसलिए जिस दिन आपकी वृत्ति जाग जाएगी और आपके शरीर की ऊर्जा चार्ज करने के लिए किसी मेन लाइन से जुड़ जाएंगी, उस दिन से आपको संतत्व और बुद्धत्व की प्राप्ति हो जाएगी, आपको परमात्मा के क्षेत्र में प्रवेश की अनुमति मिल जाएगी, अतः आप परमात्मा की चिंता छोड़ दें। सबसे पहले अपने आत्मिक सुधार की बात करें।

जिस दिन आपका शरीर चार्ज हो जाएगा, उस दिन से आपके शरीर का एक-एक क्षण महोत्सव हो जाएगा, एक-एक पल प्रसन्नता से भर जाएगा। इसके लिए आपको केवल रुपांतरित होने की आवश्यकता है। जिस क्षण आप रुपांतरित हो जाएंगे, उसी क्षण परमात्मा आपको एक

पात्र समझकर उसमें प्रवेश कर जाएंगे। सभी जानते हैं कि लोहे और लकड़ी में से लोहे के द्वारा तो विद्युत प्रवाह हो जाता है, लेकिन लकड़ी के माध्यम से यह असंभव है। लकड़ी तो ऊष्मा या विद्युत का कुचालक होता है, जबकि लोहा इनके लिए सुचालक का रूप धारण कर ले, ताकि जैसे ही परमात्मा की धारा छूटे, वह सीधे आपके शरीर में प्रवेश कर जाए, उस समय आप भी अपने को इस संसार से ऊपर उठा हुआ महसूस करेंगे। वे संत लोहे ही होते हैं, जो अपने को चार्ज कर चुके हैं और उसके बाद उनके जीवन में दु:ख-सुख का कोई स्थान नहीं रहता। आपने उन्हें पुण्य-माला पहना दी, उन्होंने पहन ली, उन्हें कोई चिंता नहीं, कोई राग-द्वेष नहीं रहता।

जो दु:ख और सुख से ऊपर उठ जाए वही तो परमात्मा का सच्चा भक्त है। कृष्ण ने अर्जुन से कहा था-"तुम सुख और दु:ख से ऊपर उठ जाओ। इनसे ऊपर उठने की कला का नाम है-परमात्मा को पाने का एक प्रयास।" आप किसी मंदिर या धार्मिक स्थल पर जाकर रामचरितमानस या किसी अन्य पुस्तक का पाठ करते हैं। कभी आप अपने शरीर पर भी रामचरितमानस का पाठ कर लें। आप गंगा स्नान से केवल अपने शरीर को धोते हैं। शरीर को धोने से कुछ नहीं होगा, आप अपने शरीर के अंदर के विकारों को धोने का प्रयास करें। आप अपने अहंकार, काम, क्रोध, लोभ, मद एवं मोह को गंगा में विसर्जित कर दें। गंगा स्नान का अर्थ ही होता है कि गंगा में प्रवेश के उपरान्त अपनी बुराइयों का विसर्जन कर देना। लोग हवन कुंड बनवाते हैं और आत्मकल्याण यज्ञ भी करवाते हैं, जिसे महाराज परीक्षित ने भी करवाया था। आत्मकल्याण यज्ञ अर्थात् जिस यज्ञ को आप अपनी भलाई के लिए करते हैं। कुछ लोग विश्व कल्याण के लिए भी यज्ञ करवाते हैं, कुछ यज्ञ देश कल्याण के लिए भी होते हैं। लेकिन सबसे पहले आप अपने कल्याण के लिए हवन करें और उस हवन कुण्ड में अपने शरीर की तमाम दुष्प्रवृत्तियों और बुराइयों को भस्म कर दें। इसके बाद आप निष्पाप, निष्कलंक, सरल, सुगम और बोधमय हो जाएंगे और तभी आप परमात्मा को अपने अंदर बुलाकर बैठा सकेंगे। जिस दिन आप साधना में बैठेंगे, सबसे पहले आपसे आंख बंद करके चिंतन की मुद्रा में बैठने को कहा जाएगा।

आप जैसे ही उस चिंतन से बाहर जाएंगे, आपके जीवन में हजारों फुलझड़ियां फूटने लगेंगी। एक फूल क्या हजारों फूल आपके जीवन में खिल जाएंगे। लेकिन उन फूलों को खिलाने के लिए आपको प्रयास करना होगा। अगर आप चाहें कि केवल पुस्तकें पढ़कर अपने जीवन में फूल खिला लेंगे, यदि आप सोचते हैं कि केवल प्रवचन सुनकर आपके जीवन में अनेक फूल खिल जाएंगे, तो यह संभव नहीं है। यदि आपको अपने जीवन में अनेक फूल खिलाने हैं, तो वह केवल आत्मचिंतन से ही संभव है। आप अपने आत्मचिंतन को थोड़ा सा जागृत कर लें और तमाम कुंडलियों और गांठों को खोल लें, फिर आप महसूस करेंगे कि परमात्मा का सीधा प्रकाश आपके ऊपर पड़ना आरम्भ हो जाएगा। आप महसूस करेंगे कि एक ओर आप खड़े हैं और दूसरी ओर परमात्मा। आपने अपने और परमात्मा के बीच में एक बहुत मोटा परदा डाल रखा है। आप उस पर्दे को हटा दें, क्योंकि जब तक आप उस पर्दे को नहीं हटाएंगे, तब तक परमात्मा के दर्शन नहीं कर पाएंगे।

•

6

हे मानव! चित का निरोध करो

योगश्चित्तवृत्ति निरोध

पतंजलि कहते हैं *योग चित्तवृत्ति का निरोध* है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार सूक्ष्म शरीर का गुण माना गया है। इस दृष्टि से चित्त सूक्ष्म शरीर से जुड़ा हुआ है। जब योग महज चित्तवृत्ति का निरोध है तो योग सूक्ष्म शरीर के लिए उपयोगी है।

सूक्ष्म शरीर की चार इन्द्रियां हैं :- मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और कारण शरीर की करुणा, दया, प्रेम आदि।

योग का सीधा संबंध सूक्ष्म शरीर से ही होता है। इसमें शारीरिक व्यायाम नहीं आता। शारीरिक व्यायाम मांसपेशियों का व्यायाम हो सकता है लेकिन योग नहीं। योग अंतर्मन की कुंठाओं से विमुक्ति का सतत् प्रयास है।

प्रात:कालीन भ्रमण के समय अगर चित्त शांत और अंतर्मुखी न हो तो वह योग क्रिया नहीं है। वह व्यायाम या शरीर को चलाने का प्रयास हो सकता है जैसे मजदूर काम करके थकता है, तो वो मजदूर काम करने का योग नहीं करता। योग चित्त से होता है, योग पूर्णत: मानसिक होता है। शरीर तो अंतर्मन का वाहन है। वाहन को भी स्वरूप होना चाहिए उसके लिए व्यायाम ठीक है। लेकिन वाहन जिसको ढोता है वह महत्त्वपूर्ण है, जैसे गाड़ी की बॉडी और उसका इंजन। इंजन की कीमत होती है, गाड़ी की बॉडी की नहीं। प्रात:काल का भ्रमण मन की कुंठाओं, कामवासनाओं, चिन्ताओं और तनाव आदि मानसिक विकृतियों से मुक्ति की प्रक्रिया है और उन विकारों से निजात पाने का प्रयास है

तो वह योग है। इन्हीं प्रक्रियाओं से मन को शांत, अंतर्मन में प्रसन्नता, उत्साह, खुशी, आनन्द प्राप्त किया जा सकता है।

पतंजलि का योग-सूत्र केवल मानसिक संयंत्रों की व्याख्या करता है। पतंजलि कहते हैं, "चित्त का निरोध करो, चित्त पर नियंत्रण करो।" शरीर की ओर उनका ध्यान नहीं है। बाहर का शरीर तो अंतर्मन से नियंत्रित होता है। अब तो विश्व के अनेक विद्वानों ने ऐसी घोषणा कर दी है कि शरीर को विकारों से मुक्ति के लिए बाहर के शरीर को नहीं भीतर के शरीर (सूक्ष्म शरीर) का इलाज किया जाना चाहिए। इसके लिए वे कर्लियन फोटोग्राफी का सहारा लेकर इलाज कर रहे हैं जैसे होमियोपैथी का इलाज होता है।

आज बहुत लोग प्रश्न पूछ रहे हैं कि *योग का मूल अर्थ व्यायाम है या प्राणायाम*। दरअसल, योग जब चित्तवृत्ति का निरोध है, तो चित्त अन्तर्मन का भाव है, इसलिए योग का सीधा संबंध प्राणायाम से होता है। प्राणायाम में प्राण ऊर्जा के संग्रह का संयमित प्रयास किया जाता है। योग में प्राणवायु से अंतर्मन को स्वस्थ किया जाता है। कई लोग प्रातःकाल टहलते समय बातचीत करते रहते हैं, जल्दी-जल्दी दस-बीस चक्कर लगाकर हांफने लगते हैं। यह टहलना स्वास्थ्य सेवा नहीं है, श्रम है। परिश्रम कर शरीर को थका देना, न कोई योग है न व्यायाम। टहलना स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी है, लेकिन तभी जब मानसिक रूप से शांत भाव से केवल टहला जाए। चिन्ता, तनाव, मानसिक उद्वेग में टहलना पैर को थकाने के अलावा कुछ नही है।

पतंजलि कहते हैं, "प्राणायाम से प्राण ऊर्जा का संग्रह और दिव्य चेतना, जो अंतर्मन में प्रदीप्त है, का विकास होता है।" प्राणायाम काल में जीव विराट, ब्रह्मांड से जुड़ जाता है। क्योंकि तात्विक दृष्टि से सम्पूर्ण ब्रह्मांड एक ही तत्त्व के विभिन्न रूप हैं।

श्रोतकाशयोः संबंधसंयोगात् दिव्यं श्रोत्रम्

कान को आकाश से जोड़ लेने पर दिव्य श्रवण सुनाई पड़ता है। अर्थात इस स्थूल कान को सूक्ष्म आकाश से जोड़ा जा सकता है। यह प्रक्रिया केवल प्राणायाम से ही संभव है।

ब्रह्मांडीय शक्तियां अति सूक्ष्म हैं। जीव का अस्तित्व अथवा प्राण भी सूक्ष्म है इन सूक्ष्म तत्त्वों को प्राणायाम से ही जोड़ा जा सकता है। दरअसल, प्राणायाम ब्रह्मांड की सूक्ष्म शक्तियों से स्वयं को जोड़ने का प्रयास है।

•

7

मानसिक शांति ही स्वस्थ रख सकती है

पतंजलि ने मन की जिन स्थितियों की चर्चा की है वहां तक आज का विज्ञान नहीं पहुंच सका है शायद पतंजलि भविष्य के विज्ञान को और मार्ग बात सकेंगे। योग की चर्चा आज आम बात हो गई है। प्राय: समस्त विद्यालयों में बड़े-बड़े मैदानों में योग की कक्षाएं चलाई जा रही हैं विदेशों में योग का काफी प्रसार हो गया है क्योंकि आज सभी लोग अपने शरीर को स्वस्थ रखना चाहते हैं, शरीर के प्रति जागरुक होना अच्छी बात है, लेकिन जो लोग इन मैदानों में व्यायाम या कसरत नहीं करते क्या वे स्वस्थ नहीं हैं? आज देश में लाखों-करोड़ों लोग ऐसे हैं जो कभी व्यायाम नहीं करते फिर भी वे स्वस्थ हैं। इस पर विचार करना चाहिए।

दरअसल, व्यायाम से शरीर में स्फूर्ति आती है, रक्त संचार ठीक से होता है, लेकिन मन पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता है। मन पर प्रभाव प्राणायाम का पड़ता है, जो लोग व्यायाम नहीं करते लेकिन शरीर को ऊर्जावान बनाए रखते हैं वे स्वस्थ रहते हैं। कई बार ऐसा देखा जाता है कि किसी व्यक्ति के अगर दोनों पांव काम नहीं करते हैं तो वह टहल फिर नहीं सकता, फिर भी वह वर्षों स्वस्थ जीवन जीता रहता है, इसका अर्थ है कि व्यायाम के बिना भी मानसिक शांति से जीने वाला व्यक्ति स्वस्थ रह सकता है। इसलिए हमारे जीवन में प्राणायाम महत्त्वपूर्ण है

ताकि हम मन को नियंत्रित और संयमित कर सकें। आजकल लोगों में सामान्य धारणा है कि पौष्टिक भोजन की कमी, खान पान में अव्यवस्था आदि से शरीर कमजोर बनता है, उनके लिए इन बिन्दुओं की चर्चा आवश्यक है। दरअसल जो लोग हमारे शरीर को ही सब कुछ मानते हैं वे शरीर के अंदर की दुनिया के बारे में कुछ नहीं जानते।

पतंजलि जैसे विचारक केवल अंतर्मन को ही सब कुछ मानते हैं। उनका मानना है कि शरीर तो अंतर्मन का बाहरी भाग है जैसा अंतर्मन होगा वैसा शरीर बनेगा। अगर ऐसा नहीं होता तो खाते-पीते लोग अथवा जो धनी है, और खूब पौष्टिक भोजन करते हैं वे कभी बीमार नहीं पड़ते। उनके शरीर में प्राण ऊर्जा भरी रहती है उनके शरीर में अधिक लाली रहती है अथवा पूर्ण स्वस्थ होते हैं। लेकिन देखा तो यह जाता है कि धनी लोग, खाते-पीते लोग ही अधिक बीमार रहते हैं, बड़ी-बड़ी बीमारियां धनी लोगों को ही होती हैं। गरीब लोग जिन्हें कभी कोई पौष्टिक भोजन नहीं मिलता, जो कुछ खाकर काम चला लेते हैं, ऐसे लोग कभी जिम में नहीं जाते, कोई टैबलेट नहीं लेते फिर भी स्वस्थ और प्रसन्न रहते हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्य अन्दर के कारण ही स्वस्थ या बीमार रहता है मन के स्तर पर जब टूट-फूट होती है तभी आदमी बीमार पड़ता है, योग अन्दर को स्वस्थ करने की क्रिया है पतंजलि ने जो आठ नियम बनाए-**यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि**, इनमें केवल आसन ही बाहर के शरीर के लिए है, वह भी शरीर को साधने के लिए। आसन से मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। हमारा शरीर या पूरा व्यक्तित्व मन से नियंत्रित होता है मन शरीर को भी नियंत्रित करता है और अंतर्मन की क्रियाओं को भी नियंत्रित करता है इसलिए योग में मन को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता है मन के नियंत्रण में आते ही सभी इन्द्रियां नियंत्रित होकर ऊर्ध्वगामी बन जाती हैं इन्द्रियों को उर्ध्वगामी होते ही ऊर्जा सहस्रार की ओर गतिमान हो जाती है। अब प्रश्न उठता है कि *मन को कैसे नियंत्रित करें?*

उसके लिए थोड़ा प्रयास करना पड़ता है अभ्यास से पहले मन की गति को शिथिल किया जाता है और फिर धीरे-धीरे जो मन संसार की

ओर भागता रहता है उसको अपना मित्र बनाकर, शुभचिन्तक और हितैषी बनाकर अन्दर की ओर क्रियाशील बनाया जाता है, तभी वह मित्र बनकर अन्दर के ब्रह्मांड की ओर क्रियाशील बनता है। इसी मन की सीढ़ी पर चढ़कर काम केन्द्र से ऊर्जा ऊपर की ओर बढ़ने लगती है, यह क्रिया मानसिक योग से ही सम्भव होती है। हमारे लिए मन का भाव महत्त्वपूर्ण है। जिस भाव से शरीर का स्पर्श किया जाए वैसा ही संवेग मन में उठता है, स्पर्श के भाव से मन के संवेग में अंतर पड़ता है। योग स्पर्श के भेद को नष्ट कर सम्पूर्ण जीव सृष्टि के साथ एकलयता लाता है। इसलिए पतंजलि कहते हैं कि चित्त को नियंत्रित करने के लिए संवेग को भी मारना पड़ता है।

•

8

सुख अंतर्मन की अनुभूति है

आज बड़ी तेजी से समय बदल रहा है समय के साथ ही मनुष्य का परिवेश और जीवन जीने के विधि में परिवर्तन हो रहा है। यही परिवर्तन मनुष्य के अच्छे-बुरे जीवन की दिशा तय करता है। आज के युग को **भौतिकवादी युग** कहा जाता है। भौतिकता का अर्थ है अपने साधनों का विस्तार और अधिक से अधिक उपलब्धि। अधिक-से-अधिक वस्तुओं का संग्रह कर सुखी होना चाहता है। भौतिक वस्तुओं का संबंध बाहर के संसार से है और सुख अंदर के संसार से उपजता है। यही दृष्टिभेद है। बाहर की वस्तुओं से धन-वैभव बढ़ता है और धन मनुष्य के अहंकार को तृप्त करता है। अपार धन संपदा भी मनुष्य के आंतरिक गुणों को विकसित नहीं कर पाता।

भारत का चिंतन है कि मनुष्य को जीवन में सुख और शान्ति प्राप्त करना चाहिए। इसलिए कि सुख अंतर्मन की अनुभूति है, उसे बाहर की वस्तुओं में ढूंढ़ना उचित नहीं है। भारत का कहना है कि पहले यह निर्णय करो कि तुम्हें बाहर का सुख चाहिए कि भीतर का। बाहर का सुख चाहिए तो धन-वैभव के संग्रह से क्षणिक सुख प्राप्त कर सकते हो। तुम्हारे पास इतने बड़े बैंक बैलेंस हैं। यह सब भौतिक उपलब्धि है और विवेक को जागृत कर सुखी बनाया जा सकता है। पहले तुम्हें तय करना है कि बाहर का सुख चाहिए या भीतर का।

आज तक जितने भी पूर्व अथवा पश्चिम के विचारक हुए हैं, उनका मानना है कि बाहर की महान विचारक **वर्टन रसल, हेनरी डेविड**

थोरियो, विल डुरेन्ट जैसे विद्वानों ने स्पष्ट रूप से बताया है कि मनुष्य के जीवन का एक निश्चित उद्देश्य होता है जिसे वह अपने विवेक को जागृत कर प्राप्त कर सकता है। लेकिन मनुष्य भ्रम वश रेलवे स्टेशन पर जाकर हवाई जहाज के आने-जाने का समय पूछने लगता है। जिन लोगों ने जीवन भर अथक परिश्रम पर काफी धन-वैभव प्राप्त किया, इससे उनके अहंकार की तृप्ति तो हुई लेकिन वे सुखी नहीं बन सके। यही कारण है कि बड़े-बड़े उद्योगपति संत-महात्माओं की टूटी हुई झोपड़ी के सामने बड़ी-बड़ी गाड़ियां लेकर खड़े मिलते हैं, क्योंकि अब उन्हें पता चल गया है कि जिस धन-वैभव को प्राप्त करने के लिए उन्होंने जीवन भर संघर्ष किया उससे तो उनके जीवन में और अशांति बढ़ गई और फिर वे शांति की खोज में धर्म स्थलों की यात्रा पर निकल पड़ते हैं। इसका अर्थ है कि संसार की उपलब्धि में सुख नहीं है।

•

9

अभ्यास से भटकते मन को स्थिर करें

किसी ने पूछा कि *"महाराज जी, मैं बहुत दिनों से गायत्री मंत्र का पाठ कर रहा हूं, लेकिन मेरे मन के भटकाव में कोई अंतर नहीं आया है। अभी भी मेरा मन काफी भटकता है, इसका क्या कारण है?"*

सच पूछो तो हमारे पास ऐसे-ऐसे प्रश्न रहते हैं, जिन पर विचार करने की आवश्यकता है। केवल सत्संग में बैठकर, प्रवचन सुनकर इन प्रश्नों का उत्तर खोजना काफी कठिन होता है। तुमने गायत्री मंत्र का पाठ आरंभ किया और अनेक बार तुमने पाठ कर भी लिया, लेकिन तुम्हारे मन पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सका। जब तुम्हारे मन में कोई बदलाव नहीं आया तो क्या यह मान लिया जाना चाहिए कि गायत्री मंत्र शक्तिहीन है? अगर गायत्री मंत्र शक्तिहीन है तो फिर हमारे ऋषियों ने इसकी चर्चा क्यों की? उन्होंने यह क्यों बताया कि तुम गायत्री मंत्र का पाठ करोगे तो तुम्हारी बुद्धि प्रखर हो जाएगी। क्योंकि गायत्री मंत्र की पूरी पंक्ति को जब तुम पढ़ोगे तो पाओगे कि उसमें एक ही बात कही गई है- *"हे सविता, तुम मेरी बुद्धि को प्रदीप्त कर दो, उसे प्रखर कर दो।"* इतनी प्रार्थनाएं करने के पश्चात् भी यदि जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो निश्चित रूप से गलती मूल मंत्र की नहीं, अपितु उस मंत्र के पाठ करने वाले की है।

दूसरा प्रश्न यह है कि *हम सत्संगों में बैठते हैं, प्रवचन सुनते हैं, वहां हमें अच्छी-अच्छी बातें सुनाई पड़ती हैं लेकिन फिर भी हमारा मन*

वहां नहीं रहता। हमारा मन कहीं बाहर भटकता रहता है। इसका क्या कारण है? तो फिर यह जान लें कि मन को भटकना ही है, क्योंकि मन का तो स्वभाव ही होता है भटकना। जगतगुरु शंकराचार्य ने तो 'विवेक चूड़ामणि' में लिखा है कि मन बाघ के समान है, जो विषयों के अरण्य में भटकता रहता है, उसका काम ही है भटकना। तुम्हारा मन भटकाव में है। यदि तुम भटकते रहते हो तो इसका अर्थ यह नहीं कि सिर्फ तुम्हारे ही साथ ऐसी घटना घट रही है। फिर अगर भटकना ही हमारे मन का स्वभाव है तो फिर हमारे स्वभाव को आगे आना चाहिए। हमारा स्वभाव यह होना चाहिए कि हम उस भटकते हुए मन को स्थिर करें। साधना की अग्नि में मन के वेग को हम जला दें, यही तो नियंत्रण की विधि है। ध्यान रखें कि प्राणायाम और व्यायाम दो अलग-अलग चीजें हैं। व्यायाम हम शरीर को स्वस्थ रखने के लिए करते हैं तो प्राणायाम हम प्राणवायु को संयमित करने के लिए करते हैं। साधना मन के वेग को नियंत्रित करने के लिए करते हैं। यहां बहुत सारी अद्‌भुत घटनाएं घटती रहती हैं, इसलिए इतने लोग आज साधक बने हुए हैं और एकान्त में बैठकर मन के वेग को, मन के प्रहार को दमित करते हैं। अगर मन को स्थिर रखना हो तो तुम्हें भी ऐसा ही कुछ करना पड़ेगा।

•

10

अच्छे विचारों से खिलता है जीवन पुष्प

आत्मप्रशंसा जिजीविषा है, जीवन से प्रेम करने की विधि है। जीवन में आकर्षण पैदा करना, जीवन में रस पैदा करना बहुत आवश्यक है। कुछ लोग जीवन से उदास होकर जीने लगते हैं। वैसे लोग अच्छे कपड़े नहीं पहनते, अच्छा भोजन नहीं करते, हमेशा उदास और दु:खी रहते हैं, उनकी जीवनी शक्ति धीरे-धीरे नष्ट होने लगती है। हम प्रतिदिन अनुभव करते हैं कि जब कहीं हमारा अभिनंदन होता है, हमारी प्रशंसा होती है तो हम स्वस्थ और तरोताजा महसूस करने लगते हैं। अगर ऐसा प्रतिदिन किया जाए तो मनुष्य के जीवन में हजार-हजार फूल खिलने लगेंगे। मनोविज्ञान कहता है कि निराशा से जीवनी शक्ति कम हो जाती है।

दूसरी ओर आशावादी व्यक्ति दीर्घजीवी होता है। निराशा के कारण मनुष्य अल्पायु बन जाता है। ऐसा प्राय: देखा जाता है कि जिस परिवार में बुजुर्गों को आदर मिलता है वे बहुत दिन तक जीते हैं और जहां उनका अपमान होता है उनका जीवन नरक बन जाता है और वे मर जाते हैं। यह सब विचार के कारण होता है। मान से जीवन बढ़ना और अपमान से जीवन का नष्ट होना स्वाभाविक प्रक्रिया है। यही कारण है कि शहरों की अपेक्षा गांवों के लोग काफी स्वस्थ और दीर्घजीवी होते हैं।

स्वस्थ और दीर्घायु बनना प्रत्येक व्यक्ति की कामना होती है। जो लोग आत्मप्रशंसा के गुण को विकसित कर लेते हैं वे जीवन का रस

भोगते हैं और जो हीन भावना का शिकार हो जाते हैं उनका जीवन नीरस हो जाता है। परिवार का अच्छा माहौल, प्रेम, मिलजुल कर रहने की वृत्ति से सभी सदस्यों को लाभ होता है। इसलिए इस गुण को प्रत्येक परिवार में विकसित करना चाहिए। हीन भावना के विचार से छोटे बच्चे भी प्रभावित होते हैं। अगर उन्हें डांटा जाए, बार-बार उसके बुरे व्यवहार या आचरण की निंदा की जाए तो बच्चे मान लेते हैं कि उनका सुधार नहीं हो सकता तब वे जीवन भर के लिए गलत बन जाते हैं।

लेकिन उन्हीं बच्चों को अगर प्रोत्साहित किया जाए, उनके बुरे आचरण को भुलाकर अच्छे आचरण की प्रशंसा की जाए तो उनके मन में पोजिटिव ऊर्जा बनने लगती है और वह एक दिन आदर्श व्यक्ति बनकर समाज में खड़ा हो जाता है। हमारा परम कर्त्तव्य है कि अपने बारे में भी हमेशा अच्छे विचारों का पोषण करें और दूसरों के अच्छे विचारों की प्रशंसा करें। तभी हमारे जीवन में सुन्दर फूल खिल सकते हैं।

•

11

विचार एक ऊर्जा है

परम पूज्य आचार्य श्री सुदर्शन जी महाराज कहते हैं कि मन एक दर्पण है, चरित्र का आईना है। माना जाता है कि मनुष्य का संपूर्ण चरित्र उसके विचारों से ही बनता है। जैसा वह सोचता है वैसा बनता है। जो लोग अच्छे विचार का चिन्तन करते रहते हैं उनके जीवन में केवल अच्छाइयां ही प्रवेश करती हैं। विचार एक ऊर्जा है। ऊर्जा का अर्थ है गर्मी-प्रकाश-विद्युत=ऊर्जा। विचार एक सूक्ष्म भाव है। इसे देखा नहीं जा सकता है। यह इतना वेगवान होता है कि एक सैकंड में पृथ्वी की तीन परिक्रमा कर ले। विचार सूक्ष्म रूप से शरीर को प्रभावित करता है। हम अपने विचार को जितना अधिक किसी बिन्दु पर केन्द्रित करते हैं उतना अधिक प्रभाव हमें दिखता है। जिस प्रकार सूर्य की रश्मि सर्वत्र व्याप्त है। लेकिन जब हम लैंस के द्वारा उसे केन्द्रित करते हैं तो आग पैदा हो जाती है।

विचार को भी मन के लैंस के माध्यम से केन्द्रित किया जाता है। आजकल तो वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं कि अगर अच्छे विचार किए जाएं हमेशा पॉजिटिव चिन्तन करते रहें, तो जीवन भर स्वस्थ रहा जा सकता है। कई लोग तो यह भी मानने लगे हैं कि अगर कोई बीमार पड़ता है तो उसमें उसका विचार दोषी है। क्योंकि जब वह बीमार पड़ने की सोचता है तभी वह बीमार पड़ता है। शरीर में अगर घाव होता है तो उस घाव का कारण ही बताया जाता है, यह घाव उसकी उसकी सोच का संकलित रूप है। कोई व्यक्ति जीवन में असफल होता है तो इसका

अर्थ है कि वह असफल होना चाहता था। सफलता चाहने वाला व्यक्ति कभी असफल नहीं होता।

आजकल विदेशों में मन के वेग पर काम हो रहा है। लोग मानने लगे हैं कि मन का वेग अथवा हमारा विचार ही सफलता असफलता का कारण है। **फ्रायड** ने तो यहां तक कह दिया कि मन की दबी भावनाएं अवचेतन मन में संग्रहित रहती है। वही अवसाद बनकर शारीरिक और मानसिक बीमारी के रूप में प्रकट होता है। भारत में मन की गति को अनन्त कहा गया है। **जगतगुरु शंकराचार्य** ने भी मन की गति की विस्तार से चर्चा की है। आजकल विदेशों में भी कई विद्वान ऐसे हुए हैं जिन्होंने कहा कि मन और विचार की ऊर्जा शक्ति की फ्रीक्वेंसी 25 से 42 हर्ट्ज तक होती है। उसके वेग को समझना मुश्किल है। मनोवैज्ञानिक यह भी मानते हैं कि अपने मन के विचारों को क्रियात्मक बनाए रखना चाहिए नहीं तो वह शरीर में बहुत तोड़-फोड़ कर सकती है। एलेक्जेंडर रॉफ ने एक पुस्तक लिखी है द पावर ऑफ माइंड उन्होंने लिखा है कि विचार से बाहर की वस्तु को प्रभावित किया जा सकता है। विचार से मनुष्य कैसे प्रभावित होता है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण भी हम देख सकते हैं। जब हम किसी से मिलें अथवा किसी के घर जाएं तो यह निश्चयपूर्वक संकल्प करें कि घर वाला हमारा स्वागत करेगा, मित्रवत् व्यवहार करेगा।

आप देखेंगे कि आपके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाएगा। इसी कारण हमारे देश में विचार संप्रेषण की विधि प्रचलित हुई थी। विदेश में **साइकोट्रोमिक विज्ञान** की बात कही जा रही है। यह कोई नई बात नहीं है। भारत में विचार संप्रेषण बहुत प्राचीन विधि है। भारत में मूर्ति पूजा का विधान है। मूर्ति पूजा में हम परमात्मा से अपनी मंगलकामना करते हैं। हम भाव रूप से मूर्ति के सामने बैठकर प्रार्थना करते हैं कि मेरा कल्याण हो। हमारा विचार सूक्ष्म रूप से मूर्ति में टकराता है और वही विचार लौटकर हमारे पास आता है फल भी उतना ही मिलता है। कहते हैं यह संसार दर्पण में वैसा ही दिखेगा। शुभ और अशुभ के विचार हमारे मन से उठते हैं। भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को कहा कि तुम शुभ-अशुभ, लाभ-हानि, अच्छा-बुरा, से ऊपर उठो।

•

12

वैचारिक प्रदूषण से बचो

हम क्रोध करते हैं, और इसके वशीभूत होकर अपना अहित कर डालते हैं, लेकिन क्यों, इसका उत्तर हम नहीं दे पाते हैं। पशु के लिए तो फिर भी यह क्षम्य है, क्योंकि क्रोधित होने पर वह अपने सींग, आदि से प्रहार कर दूसरों को घायल कर देते हैं, लेकिन किसी इंसान के लिए यह क्षम्य नहीं है। हमारे बीच ऐसे कई लोग होते हैं, जो अपने कटु वचनों से दूसरों को घायल कर देते हैं। ऐसे लोगों का व्यवहार अपने परिजनों यहां तक कि खुद के लिए भी दु:खदायी और घातक होता है, दूसरों की बात तो बस छोड़ ही दीजिए। ऐसे लोग अपनी बातों से लोगों को घायल करते रहते हैं, जिसका घाव (मन का घाव) जल्दी मिटता नहीं है। किसी विद्वान ने कहा भी है कि आप दूसरे के साथ वैसा ही व्यवहार करें, जैसा आप अपने लिए उससे अपेक्षा रखते हैं। इसे प्रामाणिक मानने के लिए आप दूसरों को प्यार व सम्मान देकर देखें, आप पाएंगे कि समाज का कोई भी व्यक्ति आपको परेशान करने या नंगा करने का प्रयत्न नहीं करेगा।

आज हमारे बीच कई लोग ऐसा सोचते हैं कि जो शिष्ट न हो, आदर्श-स्वरूप न हो, उसके सम्मुख जाकर अपनी शिष्टता व आदर्श क्यों खोएं, उसे व्यर्थ क्यों गंवाएं? अपने विचारों को प्रदूषित क्यों करें? आज हमारे समाज में प्रदूषण-युग आया हुआ है। चहुं ओर वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, जल प्रदूषण, सांस्कृतिक प्रदूषण आदि की वजह से हाहाकार मचा हुआ है, लेकिन हमारी चिंता चारित्रिक व वैचारिक प्रदूषण

को लेकर ज्यादा है, क्योंकि सबसे भयंकर परिणाम यही दे रहा है। इसकी वजह से हम तो नष्ट हो ही रहे हैं और हम निश्चिंत भाव से बैठे हैं। ऐसे में हमें जब भी मौका मिले, तभी क्यों न हम केवल मीठे शब्दों का ही प्रयोग करें। जब भी किसी से मिलें, मुस्कुराते हुए ही मिलें, उनकी भावनाओं का सम्मान करें। इस दौरान ऐसी कोई बात या हरकत न करें, जिससे सामने वाले को कष्ट या पीड़ा का अनुभव हो या उसे लगे कि आप उसे नजरअंदाज कर रहे हैं। इस मामले में किताबों में तो बहुत अच्छी-अच्छी बातें लिखी होती हैं, पर उसे हम कभी अपने जीवन में उतारने का प्रयास नहीं कर पाते हैं, क्योंकि ऐसी बातों पर अमल करना बहुत कष्टकर होता है। यदि इन बातों को हम अपने जीवन में उतारने का प्रयास करेंगे, तो समझेंगे कि हमारे जीवन में भी नैतिकता का जन्म हुआ और हमारा चरित्र संस्कारी माना जाने लगा है। हमारा यही गुण हमें समाज से मर्यादा व प्रेम दिलवाएगा और हमें समाज के लोगों के बीच प्रतिष्ठा और लोकप्रियता मिल सकेगी। हालांकि इस चक्कर में आप यंत्रवत न हो जाएं। जीवन में नैतिकता को उतारें और अनैतिकता का ह्रास करें। आपके चरित्र में जब तक नैतिकता का अभाव रहेगा, आपके जीवन का कोई उद्देश्य नहीं होगा और आप बिना किसी लक्ष्य के अपने शरीर को ढोते फिरेंगे। अतः आपके सारे प्रयास इस दिशा में होने चाहिए कि लोग आपको आज भी याद करें और आपके न रहने के बाद भी सम्मान और प्रेम दें, लेकिन यह तो तभी होगा, जब आप अपने समाज में अच्छाई का वातावरण बना देंगे।

•

13

दूर रहो इन विकारों से

मनुष्य के जीवन में संशय और संदेह, ये दो ऐसी प्रवृत्तियां हैं, जिनके होने से जीवन का सारा उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है। यह एक प्रकार का मानसिक विकार है, इसे मानसिक बीमारी भी कहा जा सकता है। इससे ग्रसित हो जाने के उपरांत जब कभी भी हम सफलता की ओर बढ़ना चाहते हैं, ये हमारी टांगों को पीछे की ओर खींच लेते हैं।

संशय और संदेह ये दो शब्द जीवन की ऐसी विडंबना हैं जिसमें मनुष्य जीवन जीता तो अवश्य है, लेकिन वह अपनी घुटन को त्याग नहीं पाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है– **संशयात्मा विनश्यति**। अर्थात् *जिस आत्मा में संशय का वास हो जाए, संदेह उठ खड़ा हो जाए, उस आत्मा का विकास नहीं हो सकता।* हम और आप अपने जीवन में देखते हैं कि जब कभी भी हम कोई अच्छा काम करना चाहते हैं तो हमारे मन में दो प्रकार की बातें उठती हैं। पहली तो यह कि इस काम को करने से क्या फायदा? और दूसरा यह कि इस काम को करें या नहीं करें। तो यह जो करें अथवा नहीं करें की स्थिति है, यही हमारे जीवन के लिए सबसे घातक स्थिति होती है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा कि तुम्हारा अधिकार सिर्फ कर्म करने का है, फल की कामना करना तुम्हारे अधिकार से बाहर की चीज है। लेकिन आज के युग में हम जब कभी भी कोई काम प्रारंभ करते हैं तो प्रारंभ से पहले ही हमारे उस प्रयास का फल, उसकी परिणति क्या होगी, आदि की कल्पना कर लेते हैं और जब हम फल की कामना भी कर चुकते हैं तो कर्म हमारे हाथों से फिसलकर बाहर जा गिरता है। कोई भी व्यक्ति या तो कर्म कर सकता है अथवा फल की कामना कर सकता है, दोनों एक बार में संभव नहीं हैं।

14

मन के विकारों से मुक्ति पाएं

जितने भी संत-महात्मा हुए हैं, उनकी दृष्टि केवल यही रही है कि आप सबसे पहले अपने अन्दर के विकारों से मुक्ति प्राप्त करें। जिस दिन हमारे विकार नष्ट हो जाएंगे, उस दिन परमात्मा को स्वतः ही आना पड़ेगा। जितने भी संत हुए, सभी पर शक्तिपात हुआ।

अब यह प्रश्न उठता है कि *आखिर यह शक्तिपात है क्या?* जब आप योग और साधना के तीसरे और चौथे घर को पार करके पांचवें घर के निकट पहुंचेंगे तो आपके शरीर में भी शक्तिपात की प्रबल संभावना जागृत हो जाएगी। आठ कमलदल के सिद्धांत अनुसार, **'मूलाधार से सहस्रार'** तक के सफर में जैसे ही आप चौथे घर में प्रवेश करेंगे, वहीं से एक नई दुनिया नजर आने लगेगी।' अतः हमें अपने मूलाधार को ही जागृत करने की आवश्यकता है। आपको कम से कम मूलाधार अर्थात् शरीर के काम-केन्द्र तक पहुंचने का मार्ग स्वयं ही खोजना है। अगर आप मूलाधार अर्थात् शरीर के काम-केन्द्र को जागृत कर लेते हैं तो आपको इसके दो फायदे होंगे।

हमारे शरीर में हर समय काम ऊर्जा बहने को आतुर रहती है। जो लोग योग-साधना में बैठकर अपने मूलाधार पर काम करना आरंभ करते हैं और जब वे अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं तो परिणामस्वरूप अपने चारों ओर बाधा खड़ी कर लेते हैं, फिर उनकी काम ऊर्जा नीचे की अपेक्षा ऊपर की ओर दौड़ने लगती है। इसलिए आपको अपने मूलाधार को चारों ओर से रोकने की जरूरत है। जैसे ही आपकी काम ऊर्जा नीचे की अपेक्षा ऊपर की ओर अग्रसर होगी, तो आप एक नई दुनिया में प्रवेश करने लगेंगे। आपकी आंखों पर जो पर्दा पड़ा है, उसकी दृष्टि हिलने लगेगी। आप इस संसार को एक दूसरे ही रूप में पाएंगे।

15

मन में न रखें बदले की भावना

जब कभी भी आप अपने क्रोध का करीब से निरीक्षण करेंगे तो पाएंगे कि इसके मूल में आपके आत्मसम्मान या अभिमान में लगी ठेस, सपनों का टूटना या कोई ऐसा ही कारण रहा होगा, जिससे आप हतप्रभ रह गए होंगे। हालांकि ये कारण ऐसे हैं, जिनसे बिना क्रोध किए भी आसानी से निबटा जा सकता है। फिर आप क्रोध क्यों करते हैं? हम सभी के पास कुछ न कुछ ऐसा है, जिसे हम एक-दूसरे को जाने बिना भी दे सकते हैं। यह 'कुछ' आखिर है क्या, जिसे किसी अपरिचित को भी दिया जा सकता है। क्या नुकसान की आशंका में इससे कोई तनाव उत्पन्न नहीं होगा? आपको आश्चर्य होगा, लेकिन यह सच है कि इससे आपको कोई नुकसान नहीं होगा बल्कि आपके अंतरतम में पहले से मौजूद तनाव भी कहीं तिरोहित हो जाएगा। आज हर कोई गुस्से से पागल हुआ जा रहा है। बच्चे-बूढ़े भी इससे अछूते नहीं हैं।

दरअसल, क्रोध एक ऐसी समस्या है, जिसकी तुलना शैतान से की गई है। इसका संबंध सिर्फ बुरी भावनाओं या मनोवैज्ञानिक समस्याओं से ही नहीं बल्कि आध्यात्मिकता से भी है। हॉरेस के अनुसार क्रोध 'क्षणिक पागलपन' है, जबकि थॉमस फ्यूलर इसे 'समुद्र में उठा तूफान' मानते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि क्रोध के दुष्परिणामों से डरकर हम इसका दमन शुरू कर दें। क्रोध का दमन अक्सर गंभीर परिणामों को जन्म देता है, जिससे क्रोध करने वाला तो प्रभावित होता ही है, कई निर्दोष भी प्रभावित हो जाते हैं। हम अचानक एक ही दिन में क्रोध

करना नहीं छोड़ सकते। क्रोध पर नियंत्रण एक क्रमिक प्रक्रिया है। क्रोध पर नजर रखते हुए इसकी तीव्रता को धीरे-धीरे ही कम किया जा सकता है। अरस्तु के अनुसार क्रोध कोई भी कर सकता है। यह बहुत आसान है, लेकिन सही समय, सही कारण, सही व्यक्ति व सही दिशा में इसका प्रक्षेपण आसान नहीं है।

क्रोध से दूर रहने की पहली शर्त यह है कि आप निर्दोष व्यक्ति, समाज व राष्ट्र की निंदा से बचें। फिर भी यदि आपको गुस्सा आता है तो इसका प्रदर्शन सतही ही रखें। मन में बदले की भावना न रखें। इसके लिए अपनी उन भावनाओं और कारणों को महत्त्व न दें, जो आपको क्रोध की अग्नि में जलने को मजबूर कर दें। ये भावनाएं या कारण ऐसे हैं, जिनसे क्रोध के बगैर भी आसानी से निबटा जा सकता है। फिर आप क्रोध क्यों करते हैं? क्रोध पर नियंत्रण करना आप आसानी से सीख सकते हैं और अभ्यास के द्वारा इसमें महारत भी हासिल कर सकते हैं। यदि आप जीवन में अपराध व हिंसा से मुक्त रहने की कोशिश करें तो इस संसार में काफी कुछ बदला जा सकता है। हम और ज्यादा रचनात्मक हो सकते हैं। इसके लिए क्रोध करना जरूरी नहीं है। यदि कुछ जरूरी है तो वह है अपनी मानवीय भावनाओं को सिर्फ उजागर करना।

•

16

पहले अपने मन को साफ करें

हम अनेक सन्तों के प्रवचन सुनते हैं, उनका आशीर्वाद ग्रहण करते हैं, ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं, धार्मिक अनुष्ठान तथा अन्य पूजा-पाठ करते हैं। लेकिन इन व्रत-त्यौहारों अथवा किसी धार्मिक आयोजन से बाहर आते ही हमारे जीवन पर पुनः वही प्रभाव आ जाता है, जैसा हमारे उस आयोजन में जाने से पहले था। हम जैसे पहले थे, वैसे हो जाते हैं। यही कारण है कि सन्त-महात्माओं के प्रवचनों का प्रभाव हमारे जीवन पर स्थिर नहीं हो पाता है।

हम ज्ञान सुनकर और पढ़कर प्राप्त करते हैं। जब हम ग्रन्थों को पढ़ते हैं और प्रवचनों को सुनते हैं तो उस क्षण, उस समय तो हम उन सभी बातों को अपने जीवन में उतार लेते हैं, लेकिन जैसे ही हम उस जगह से हटते हैं, इस संसार के विकार, इसकी दुष्प्रवृत्तियां, सांसारिक मोह, ममता और अहंकार ये सभी चीजें फिर से हमारे चारों ओर खड़ी हो जाती हैं।

सन्तों के प्रवचनों का उद्देश्य सांसारिक लोगों और गृहस्थों को दुनियाभर की बुराइयां, षड्विकारों और दुष्प्रवृत्तियों से हटने का मार्ग बताना होना चाहिए। अगर आप **वेद-पुराण**, **भगवद्गीता** और **श्रीरामचरितमानस** के प्रवचन करते हैं, लेकिन अगर श्रोता या पाठक में विकार है, उसके मन में अहंकार तथा अन्य बुराइयां हैं, तो निश्चित ही ऐसी अवस्था में उस व्यक्ति पर इन अच्छी, नैतिक और धार्मिक बातों का कोई असर नहीं पड़ेगा। अब प्रश्न यह उठता है कि

इनको नष्ट कैसे किया जाए? सबसे पहले सभी श्रोता, जो प्रवचन सुनते हैं अपने शरीर को शुद्ध करें। अपने शरीर की बुराइयों को नष्ट करें, क्योंकि जब तक शरीर में बुराइयां विद्यमान रहेंगी, तब तक कोई भी प्रवचन या उद्देश्य उस पर प्रभाव नहीं डाल सकेगा। जब हमारा बर्तन ही दोषपूर्ण होगा, तो हम उसमें जो भी सुन्दर या शुद्ध वस्तु रखेंगे, वह भी गन्दी हो जाएगी। इसलिए सर्वप्रथम हमें अपना पात्र साफ करना होगा।

•

17

संशय को मन से दूर रखो

आप फल प्राप्त करने का प्रयास करते रहेंगे, तो निश्चय ही कर्म आपके हाथ से दूर जाएगा। लेकिन हमारे जीवन का जो उद्देश्य है कि हमें कर्म करते रहना है, वह तब तक पूरा नहीं होने पाएगा, जब तक कि हम कर्मशील और कर्मनिष्ठ न बन जाएं। जब हम दो और दो को जोड़ेंगे तो वह चार होगा ही। हम यहां से किसी स्थान पर पहुंचने के लिए चल दें और यदि हम सही मार्ग से होकर चलते रहें तो निश्चय ही अपनी मंजिल पर पहुंच कर रहेंगे। लेकिन यदि हम प्रस्थान से पहले ही इस बात की कामना कर लें कि हम वहां पहुंच चुके हैं, हमारे साथ ऐसा स्वागत भाव हो रहा है, मुझे इन चीजों की प्राप्ति हो रही है, इत्यादि। यदि आपमें ऐसा भाव आ जाए तो फिर यह गलत बात होगी। क्योंकि जैसे ही आपके मन में फल पाने की कामना आएगी, उसी समय कर्म की लकीर आपके हाथ से छूट जाएगी और कर्म के इस लकीर को छोड़ने में हमारे मानसिक रोग यथा संशय और संदेह बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

पहली बात तो यह होती है कि संशय करने वाला व्यक्ति कोई भी काम कर ही नहीं सकता। वह तो जीवन से हारा हुआ व्यक्ति है, वह तो हमेशा यह सोचता रहता है कि हम इस काम को करें या नहीं करें। इसे करेंगे तो क्या लाभ होगा और नहीं करेंगे तो क्या हानि होगी? एक पूर्ण व्यवसायी की तरह वह सारा हिसाब-किताब

पहले ही लगा लेता है। जब वह ऐसा कर चुका होता है तो वह फल की ओर सारा ध्यान लगा लेने की वजह से कर्म की ओर से विमुख होता चला जाता है। ऐसी परिस्थिति में वह न तो कर्म कर पाता है और न ही उसका फल प्राप्त कर पाता है। हमारे समाज में आज ऐसे लोगों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है।

•

18

संदेह है सबसे बड़ा शत्रु

आप मंदिरों में भी गए, परन्तु आपने अच्छा कर्म तो किया नहीं और अच्छे फल की कामना कर डाली। आपने हनुमान जी को भी कह दिया कि मेरा यह काम हो जाएगा तो मैं आपको प्रसाद चढ़ाऊंगा। आप इतना कहकर निश्चिंत हो गए। आपने कर्म की ओर से अपना ध्यान हटा दिया, आप हनुमान जी के भरोसे बैठ गए कि अब तो हनुमान जी स्वयं जाकर मेरा यह काम करवा देंगे। तो यही संदेह और संशय की स्थिति आपकी मानसिक विकलांगता का प्रतीक है।

जिस चीज में आपका विश्वास नहीं, जिस जीवन के प्रति आपकी आस्था नहीं, जब जीवन में आपके पास श्रद्धा और विश्वास नहीं, फिर आप तो ज्ञान को भी प्राप्त नहीं कर सकते। आप तो मंदिर में व्यापारियों की भांति व्यापार करने जाते हैं, आप अपनी कामना को भुनाने के लिए जाते हैं। इसमें आपकी श्रद्धा निहित नहीं होती है। आप तो वहां व्यापार करने के लिए पहुंचे हुए हैं। ऐसे लोगों को संदेह की स्थिति में जीना कहते हैं। आप यह जान लें कि 'संदेह' जीवन का सबसे बड़ा शत्रु है। आप मंदिर में जाएं या फिर घर में रहें, यदि पति-पत्नी के बीच में संदेह की दीवार खड़ी हो जाए तो फिर दाम्पत्य जीवन बर्बाद हो जाता है। इसी प्रकार जब पिता-पुत्र के बीच संदेह की दीवार खड़ी हो जाती है, तो न आदर और न सम्मान रह जाता है और न ही पितृ धर्म और वात्सल्य की धारा रह जाती है। दो मित्रों के बीच जब संदेह अपना घर बना ले तो फिर मित्रता टूट जाने के सिवा और कोई परिस्थिति शेष नहीं रह जाती है।

19

सद्‌विचार का संकल्प लें

हमारा जीवन भगवान की अद्‌भुत सृष्टि है। परमात्मा ने हमारे जीवन को कर्मभूमि के रूप में विकसित किया है। अतः जीवन की सफलता-असफलता कर्म पर ही निर्भर करती है। हमारे जीवन की जीवनी शक्ति हमारे विचारों से ही प्रभावित होती है। भगवान किसी को बुरा या अच्छा नहीं बनाता है न ही जन्मकाल में अच्छे-बुरे की पहचान करना संभव है। मनुष्य केवल अपने प्रारब्ध को लेकर आता है, लेकिन आगे चलकर वह जिन विचारों, वातावरण व परिवेश में पलता है, उसमें वैसा ही गुण निर्मित होने लगता है।

संस्कारी माता-पिता के घरों में पलने वाले बच्चों पर माता-पिता का सीधा प्रभाव पड़ता है, लेकिन जो गलत संस्कार में पलते हैं, उनका जीवन दुष्प्रभावित होने लगता है। अतः हमें बचपन से ही अच्छे संस्कारों, विचारों व कार्यों के बीज अंकुरित करना चाहिए। सुबह का समय बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। अतः प्रातःकाल आंखें मूंदकर यह प्रार्थना करो कि, 'हे परमात्मा! तुम मुझमें शक्ति भरो, मस्तिष्क, मुंह, ग्रीवा, लीवर, किडनी, हृदय आदि को शक्तिवान बनाओ। मेरी इंद्रियों को सबल बनाओ।' पंच तत्त्व (पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल व आकाश) मेरे शरीर को स्वस्थ रखें। यदि तुम जीवन के प्रति उत्तम विचार रखोगे तो तुम्हारा जीवन उत्तम बनेगा और यदि नकारात्मक भाव रखोगे तो नकारात्मक हो जाएगा। शरीर की जीवनी शक्ति नकारात्मक हो जाएगी।

हमारा शरीर अपने विचारों से ही प्रभावित होता है। जो लोग जीवन को आनंद के रूप में, ऐश्वर्य व सफलता के रूप में, संगीत के रूप में स्वीकार करते हैं, उनका जीवन आनंदमय हो जाता है। हालांकि ऐसे लोग भी हैं जो जीवन को निराशा, असफलता व विपत्ति के रूप में स्वीकारते हैं, उनका जीवन आंसू बनकर बह जाता है। प्रश्न यह है कि हम अपने जीवन को आनंद के रूप में स्वीकारते हैं या दु:ख के सागर के रूप में, जीवन को इससे कुछ लेना-देना नहीं है कि वह जीवन में दु:ख लेकर आए या सुख लेकर। जीवन तो सीधा जीवन है, आप उसे जिस पात्र में रखेंगे, उसका स्वरूप वैसा ही हो जाएगा। जैसे-गंगाजल को घड़े में रखेंगे तो वह घड़े का और लोटे में रखेंगे तो लोटे का रूप धर लेगा। इसी प्रकार आप जीवन को जिस पात्र में रखेंगे उसका स्वरूप वैसा ही हो जाएगा।

जीवन को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप कैसा पात्र हैं। हम एक संपूर्ण जीवन के स्वामी हैं। यदि हमारे जीवन में कोई विकृति है, कोई विकार है तो हमें यह संकल्प लेना चाहिए कि अब मेरा विकार नष्ट हो रहा है, दुर्गंध नष्ट हो रही है। मेरे जीवन में सद्‌गुण उदित हो रहा है। मैं स्वस्थ हो रहा हूं। मेरी इंद्रियां स्वस्थ हो रही हैं। मेरी ऊर्जाशक्ति बढ़ रही है। ऐसे विचारों को प्रतिदिन प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए और यह संकल्प लेना चाहिए कि मैं क्रियाशील रहूंगा। आलस्य का त्याग करूंगा। नशे का सेवन नहीं करूंगा। लोगों से मुस्कुराकर बात करूंगा। क्रोध पर विजय प्राप्त करूंगा। मन की सारी बुरी भावनाओं का त्याग कर दूंगा। अच्छे विचारों से प्रेरित होकर सुबह से शाम तक अपने काम को पूर्ण करूंगा। ऐसे विचारों के उदय होने से हमारे जीवन में आनंद के फूल खिलने लगेंगे।

•

20

मन को जगाता है मंत्र

हमारे जीवन में प्राण का सबसे अधिक महत्त्व है। प्राण के बिना शरीर का कोई अर्थ नहीं है। यह सच है कि हमारा शरीर पांच तत्त्वों से बना होता है–आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। वास्तव में, शरीर में प्राण तत्त्व सूर्य से आता है। सूर्य शक्ति पुंज है। इसलिए सूर्य को प्राणदाता माना गया है। वहीं से प्राण रूपी ऊर्जा सम्पूर्ण चल एवं अचल जगत में प्रेषित होती है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में प्राण ऊर्जा के सम्पोषण के लिए गायत्री मंत्र के जाप का महत्त्व बताया गया है। मंत्र का अर्थ है *मन का तंत्र, मन को संचालित करने की विधि।*

दरअसल, मंत्र शक्ति सोये हुए मन को जगाने की क्रिया है। हमारे संतों ने गहन अध्ययन कर जो अनुभव प्राप्त किया, उसे अपनी दिव्य शक्तियों से पोषित करके सूत्र रूप में व्यक्त किया। इसे ही मंत्र कहते हैं। मंत्र शब्द को प्रतीक के रूप में व्यक्त किया गया है। सामान्य रूप में इसका अर्थ नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि ये सभी शब्द प्रतीक रूप में लिखे गए हैं। जैसे ॐ, ह्रीं, क्लीं। यदि इसका अर्थ लगाया जाए, तो इसे समझने में कठिनाई महसूस होगी। हमारे देश में अनेक संतों ने मंत्र शक्ति का प्रयोग किया है। जैसे–विश्वामित्र ने गायत्री मंत्र का सृजन किया, तो मार्कण्डेय ऋषि ने महामृत्युंजय मंत्र का सृजन किया। इसी प्रकार वाल्मीकि ने रामायण में, वेदव्यास ने गीता में और तुलसीदास ने रामचरितमानस और विनय पत्रिका में अनेक मंत्रों का सृजन किया। मंत्र के जाप से हमारे शरीर तथा आत्मा, दोनों को लाभ मिलता है। मंत्रों के

शब्द छोटे होते हैं, लेकिन शब्दों की शक्ति अतुलनीय होती है। मंत्र पाठ करते समय एक बात का जरूर ध्यान रखना चाहिए कि हम शब्दों का उच्चारण सही-सही करें। दरअसल, मंत्रोच्चारण से हमारा मन शांत होता है और आत्मा निर्मल होता है। सच तो यह है कि मंत्र जपने के लिए मन में दृढ़ विश्वास जरूर होना चाहिए, तभी मंत्रों के प्रभाव से हम परिचित हो सकते हैं। वेदों में भी देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना के लिए मंत्र की चर्चा की गई है। प्रतिदिन मंत्रों के पाठ से हम परमात्मा से शक्ति, शांति, लम्बी आयु, यश और बुद्धि प्रदान करने की प्रार्थना कर सकते हैं।

•

21

साधने पर ही फल देता है मंत्र

कुछ घरों और परिवारों में मैंने देखा कि वहां गायत्री मंत्र का टेप बजता रहता है। मैंने एक जगह पूछ लिया कि "यह क्या बज रहा है" तो उन लोगों ने कहा कि "महाराज जी, यह तो गायत्री मंत्र का टेप बज रहा है।" मैंने कहा कि यह तो टेप में बज रहा है, जरा तुम इसे मुख से बोलकर सुनाओ तो। उन लोगों को परेशानी होने लगी। गायत्री मंत्र का टेप तो वे बहुत दिनों से सुन रहे थे, लेकिन जब मैंने कहा कि इसे तुम अपने मुख से बोलकर सुनाओ तो यह उनसे नहीं हो सका। कहीं तुम्हारी दशा भी तो ऐसी ही नहीं है कि तुम मुख से तो इन मंत्रों का पाठ कर रहे हो, लेकिन तुम्हारा ध्यान कहीं और लगा है। पहले तुम अपने मन को वश में कर लो, फिर उसके बाद महामृत्युंजय और गायत्री मंत्र की बात करना। मंत्रों को हीन भाव से मत देखो। प्राचीन काल में हमारे ऋषि-मुनियों को मंत्रद्रष्टा कहा जाता था। तुम इसे याद रखना, वे लोग किसी एक मंत्र को साध लिया करते थे। किसी ने गायत्री मंत्र को साध लिया था तो किसी ने महामृत्युंजय मंत्र को, एक ही मंत्र को साधना उनके लिए काफी था। क्योंकि वे हजारों मंत्रों को अकेले नहीं साध सकते थे। मुझे भी कोई हक नहीं है कि मैं तुम्हें कुछ गलत बताऊं, मुझे तो सबसे पहले उन मंत्रों को स्वयं ही साधना पड़ेगा, तभी तो उसका प्रभाव तुम पर भी पड़ेगा।

किसी स्थान पर मुझे एक मित्र मिले, वे इंजीनियरिंग कॉलेज के प्राध्यापक थे और उनकी पढ़ाई-लिखाई बड़े अच्छे माहौल में हुई थी।

उन्होंने कहा कि "महाराज जी, आपने अपने साथ के लोगों को कहना आरंभ किया है कि तुम आत्मद्रष्टा बनो। क्या आपने आत्मद्रष्टा होने का गौरव प्राप्त कर लिया है? क्या आपके अपने लोग आत्मद्रष्टा बन गए?" यहां उनके कहने के मंतव्य को समझते हुए मैंने कहा कि यहीं तो तुम भूल कर रहे हो, मैंने यह नहीं कहा कि मैं एक आत्मद्रष्टा हूं। मैंने यह आह्वान किया है कि तुम भी आत्मद्रष्टा बनने का प्रयास करो। तुम अपनी आत्मा को साक्षात करने का, आत्मबोध करने का प्रयास करो। क्योंकि यह तो साधना की भूमि है। यदि मैं मंत्रद्रष्टा और आत्मद्रष्टा बन जाऊं तो इससे तुम्हें कुछ मिलने वाला नहीं है। तुम्हें अपने लिए स्वयं ही मंत्रद्रष्टा और आत्मद्रष्टा बनना पड़ेगा। अगर मैंने गायत्री मंत्र को साध लिया है, यदि मैं गायत्री मंत्र का आत्मद्रष्टा बन गया हूं तो तुम्हें इससे कुछ मिलने वाला नहीं है। यदि मैं तुम्हें यह कह दूं कि गायत्री मंत्र ऐसा होता है तुम बस पाठ करते जाओ तो तुम्हारा कल्याण हो जाएगा तो यह पूर्णरूपेण गलत तथ्य होगा।

तुमने महामृत्युंजय मंत्र का नाम सुना होगा, इस मंत्र का जाप यदि किसी मरणासन्न व्यक्ति के पास कर दो तो वह व्यक्ति भी जी उठेगा। इतनी अगाध शक्ति है इस मंत्र में। लेकिन टेप बजाकर तुम किसी मरणासन्न व्यक्ति को बैठा तो नहीं सकते। क्योंकि मंत्र में प्राण का होना आवश्यक है। तुम प्राणवान बनकर अगर मंत्र शक्ति का प्रयोग करते हो, तब ही तुम्हारा वह मंत्र काम करेगा।

•

22

महामृत्युंजय मंत्र का अमोघ प्रभाव

प्राचीनकाल में **मर्कण्डु** नाम के एक ऋषि थे। उनके कोई संतान नहीं थी। मर्कण्डु ने काफी तपस्या की, इस पर भगवान शिव प्रसन्न होकर उनके सम्मुख उपस्थित हुए और उन्होंने मर्कण्डु से कहा कि "तुम्हें कोई संतान का योग है ही नहीं।" इस पर मर्कण्डु ने कहा कि प्रभु-'मैंने आपकी इतनी तपस्या की, मैंने समर्पित भाव से आपकी भक्ति की, फिर भी मुझे संतान की प्राप्ति नहीं होगी, क्या मैं निःसंतान ही मर जाऊंगा? इस संसार में तो यह कहा जाता है कि जो व्यक्ति निःसंतान मर जाता है, उसे मुक्ति नहीं मिलती।' भगवान शिव ने कहा-'ठीक है, मेरे पास दो बालक हैं, उनमें से एक तो तुम्हारा पुत्र बनकर 100 सालों तक जीवित रहेगा, लेकिन वह बड़ा उपद्रवी होगा, धर्म-कर्म को नहीं मानेगा, वेद-पुराण की बातें उसकी समझ में ही नहीं आएंगी, वह सर्वत्र तुम्हारी निन्दा करेगा और तुम्हें उचित सम्मान भी नहीं देगा और दूसरा मेरे पास एक ऐसा बालक है, जो सिर्फ 10 सालों तक के लिए जन्म लेगा। 10 सालों के उपरान्त वह मर जाएगा।' मर्कण्डु ने कहा कि प्रभु, 'मुझे यह दस साल वाला ही पुत्र के रूप में दे दीजिए।' आगे चलकर उसी बालक का नाम मार्कण्डेय पड़ा। जब मार्कण्डेय बड़े हुए और उन्हें जानकारी मिली कि 10 साल की अल्प आयु में ही उन्हें मर जाना है तो उन्होंने अपने पिता से कहा कि पिताजी, 'आप चिंता न करें, मैं भी आपका ही बेटा हूं और वह भी बैठ गए शिव की तपस्या करने।' उन्होंने शिव की इतनी सघन तपस्या की कि भगवान शिव प्रकट

हुए, भगवान शिव ने पूछा कि "बोलो तुम्हें क्या चाहिए?" तब उस बालक ने कहा कि "बस इतना ही कहना है कि मुझे 10 साल और जीना है।" तो भगवान शिव ने उसे एक मंत्र देते हुए कहा कि "तुम इस मंत्र का पाठ करो। इस मंत्र का सही जाप करने पर तुम अपनी मृत्यु से बच जाओगे और मैं तुम्हें दीर्घायु होने का आशीर्वाद दे दूंगा।" वही मंत्र आज महामृत्युंजय मंत्र के नाम से प्रख्यात है।

यहां सोचने की बात है कि जब 10 साल की आयु वाला व्यक्ति महामृत्युंजय मंत्र का जाप करते हुए 100 साल तक की सांसें पा सकता है तो फिर तुम क्यों नहीं पा सकते? लेकिन इसके लिए तुम्हें मार्कण्डेय ऋषि की भांति मंत्रद्रष्टा बनना पड़ेगा। जिस प्रकार मार्कण्डेयजी ने सिर्फ एक मंत्र की ही साधना की, उसी प्रकार तुम भी आत्मद्रष्टा बनो।

इस जीवन में कुछ भी असंभव नहीं है, यदि तुम आनन्द के भंडार को खोलोगे तो आनन्द बहने लगेगा, वैभव के भंडार को खोलोगे तो तुम्हें वैभव ही मिलेगा। तुम्हें जितना वैभव चाहिए, सब कुछ मिल जाएगा, लेकिन यह बाहर संभव नहीं है। यदि तुम प्रवचनों में बैठकर चाहने लगोगे कि मैं करोड़पति या अरबपति हो जाऊं तो यह कदापि सम्भव नहीं है। ऐसे में तुम न तो मुक्त हो सकते हो न ही परमात्मा को प्राप्त कर सकते हो। प्रवचन तो तुम्हें जगाने का माध्यम हैं।

•

23

जीवन का उद्देश्य

हमारा जीवन हमारी अद्‌भुत उपलब्धि है। मनुष्य के जीवन में अनेक ऐसी बातें होती हैं, जिनका गहरा सम्बन्ध उनकी अच्छाई या बुराई से होता है। भगवान की ऐसी कल्पना थी कि मनुष्य में ईश्वर का अंश होने के कारण वह अपने जीवन को सार्थक करे, वह अपने जीवन को सुख से भर ले, ऐसी कल्पना परमात्मा ने की और तब अनेक रहस्यों से भरा-पूरा यह हमारा जीवन बना। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा कि-

लख चौरासी भ्रमते, तब मानुस तन पाए।
भजन करो भगवान का, न तो फिर चौरासी जाए॥

अर्थात् - *चौरासी लाख योनियों का भ्रमण करते हुए, अंत में हमें मनुष्य का जीवन मिला और फिर यह जीवन यूं ही नहीं प्राप्त हो गया, इसके लिए बड़ी कठिनाई और संघर्ष, कई-कई प्रार्थनाएं हमें करनी पड़ी। जहां आपके इस जीवन में सुन्दर-सुन्दर फूल खिले हैं, तो कांटे भी इसी जीवन में आपको अनुभव करने होंगे। यहां सुख है तो साथ ही साथ दु:ख भी है, चिंता है तो प्रसन्नता भी। दोनों ही तरह से हमारा यह जीवन चल रहा है। अब यह हमारे और आपके हाथ में है कि इस जीवन को हम फूलों से भर दें अथवा कांटों से भर दें।*

इस जीवन को प्राप्त करने में जो कठिनाई आपको हुई और ईश्वर से जो आशीर्वाद और वरदान स्वरूप यह जीवन आपको मिला, अगर इस जीवन को आप फूलों से भरना चाहें, मुस्कान से भरना चाहें, तो

वह भी संभव है, अगर इस जीवन को आप अभिशाप समझकर जीना चाहें, तो वह भी संभव है। ये दोनों ही परिस्थितियां सिर्फ हमारे और आपके हाथों में हैं। हमारा जीवन बड़ा ही सरल, मधुर, सान्निध्यपूर्ण और प्रेम से भरा हुआ है। अगर हम चाहें तो इन तमाम वृत्तियों को आगे बढ़ाते हुए अपना जीवन जी सकते हैं। हमारे देश में ऐसे बड़े-बड़े संत-महात्मा, सिद्ध पुरुष हुए, जिन लोगों ने अपने जीवन को भरपूर आनन्द से जिया और बहुत लोग ऐसे भी हुए जिन्हें जीवन तो मिला, लेकिन उनका सारा जीवन दु:ख और चिंता, क्लेश और वेदना एवं मानसिक ताव से भर गया। हम इस जीवन को किस रूप से स्वीकार करें, यही तो विचारणीय है।

शास्त्रों में भी आया कि फूलों से भरा हमारा जीवन, मुस्कानों से भरा यह जीवन, ईश्वर के प्रसाद तुल्य हमारा जीवन, संभव है अगर हम कोई दुष्प्रवृत्ति को अपने पास न आने दें, अपने जीवन को नष्ट न होने दें, दुष्प्रवृत्तियों के जाल में हम न फंसें। षड्विकार का जिक्र भी हमारे शास्त्रों में आया कि छह प्रकार के दोष हमारे जीवन में हैं, जिससे बचना प्रत्येक व्यक्ति का काम होता है। काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और ईर्ष्या, ये सारी ऐसी बीमारियां हैं जिन्हें हम आमंत्रित करके बुलाते हैं, जिस प्रकार कि स्वस्थ रहना तो हमारे जीवन का मूल अधिकार है, लेकिन बीमार होना हमारा अधिकार नहीं है, बीमार होना हमारे शरीर का धर्म नहीं है, स्वस्थ रहना ही हमारे शरीर का धर्म है। लेकिन जब कभी भी हम किसी तृष्णा में फंस जाते हैं, किसी बुरी प्रवृत्ति में फंस जाते हैं, किसी गलत आचरण की ओर बढ़ चलते हैं, तो ऐसी स्थिति में हमारे शरीर में विकार उत्पन्न होने लगता है। यदि हम समय पर भोजन न करें, समय पर सोएँ नहीं, जीवन के आचार-विचार के साथ, उनके नियमों का पालन न करते हुए जीवन हम न जिएं तो उसमें विकार उत्पन्न हो जाएगा। जिस प्रकार कि कोई महंगी से महंगी गाड़ी तो हम खरीद लें और उस गाड़ी की देखभाल ठीक से न हो, तो वह गाड़ी अपना काम सही प्रकार से नहीं कर पाएगी।

ईश्वर ने हमें बनाया, यह उनका ही आदेश था कि 100 वर्षों तक कर्म करते हुए अपने जीवन को जीओ। 100 वर्षों तक, यदि हम 99वें

वर्ष भी अपने शरीर का त्याग करते हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि हमने ईश्वर के उस आदेश का पालन नहीं किया और एक वर्ष पहले ही अपने शरीर का साथ छोड़ दिया। लेकिन आज तो स्थिति ऐसी हो चली है कि हम 100 वर्ष क्या, 99 और 90 क्या, 60 और 50 में ही बूढ़े हो जाते हैं। इसका कारण हम बचपन में तो प्रवेश करते हैं, लेकिन हमें हमारी जवानी का दर्शन नहीं हो पाता है और हम बचपन से सीधे बुढ़ापे की ओर बढ़ जाते हैं। पहले तो यह कहा जाता था कि साठा तब पाठा। अर्थात् 60 वर्ष की आयु में जवानी आती है, लेकिन आज तो हम 40 वर्ष के बाद आप बुढ़ापे की ओर बढ़ रहे हैं, तो जवानी कब आएगी आपके शरीर में? फिर जवानी का जो आनन्द और मस्ती है, उसको भोग और उपयोग आप कैसे करेंगे? यही भूल होती है हम लोगों से या फिर प्रत्येक जीवन जीने वाले मनुष्यों की। हमारी इस भूल का प्रधान कारण व्यसन है। हम दुष्प्रवृत्तियों का शिकार बन जाते हैं। एक बात और ध्यान देने की होती है कि हमारी आदतों का जन्म के साथ नहीं होता। इन आदतों का तो हम अपने भीतर विकास करते हैं, अच्छी या बुरी आदतों को हम अपने पास बुलाते हैं और तब हमारे जीवन पर उसका सीधा प्रभाव पड़ने लगता है। सिगरेट और शराब पीना हम बचपन से प्रारम्भ नहीं करते हैं, जुआ खेलना, अनैतिक कार्य करना, गलत आचरण करना, यह सब बचपन से ही हमारे पास नहीं होता। हम बाद में इसका सेवन आरंभ करते हैं और मौज मस्ती के नाम पर उसका उपयोग करने लगते हैं। छोटे बच्चे सिगरेट पीते हैं बड़ों को देखकर, ड्रग्स लेते हैं बड़ों को देखकर, शराब पीते हैं, बड़ों को देखकर ही और जब ये सारी दुष्प्रवृत्तियां हमारे जीवन के गहरे तल में उतर जाती हैं तो फिर जीवन में जो जीवन रक्षक तत्त्व होते हैं, जो लाइफ सेल होते हैं वे धीरे-धीरे नष्ट होने लगते हैं और हमारी जीवनी शक्ति का ह्रास होने लगे तो फिर हमारा यह जीवन कैसे बच सकता है? इतना कीमती हमारा यह जीवन, भगवान ने यह कहकर आपको नहीं दिया कि आप इसका दुरुपयोग करें, आप इसे व्यसनों का दास बनाएं। उन्होंने आदेश दिया कि कर्म करो। **गोस्वामी** जी ने भी लिखा-

कर्म प्रधान विश्व करी राखा।

यहां उनकी इन पंक्तियों के भाव को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम एक दूसरी पंक्ति को इसमें जोड़ दे सकते हैं-

"जो जस करहीं, सो तस फल चाखा।"

अर्थात् - *हम दूसरे को सफल होते हुए देखते हैं और ईर्ष्या से जल भुन जाते हैं, लेकिन क्या कभी हमने यह सोचा कि जिस व्यक्ति ने ऊंची सफलता हासिल की, उसने कहीं-न-कहीं, कोई न कोई त्याग अवश्य ही किया होगा।* सर आइंस्टीन, रवीन्द्रनाथ टैगोर, भाभा, लाल बहादुर शास्त्री, जवाहरलाल नेहरू एवं भारत की अन्य विभूतियां, इन लोगों ने कहीं न कहीं त्याग अवश्य ही किया होगा। आज हम किसी को ऊंची कुर्सी पर बैठे हुए देखते हैं, तो हमारे मन में ईर्ष्या होने लगती है, हमारे मन में आता है कि कितना अच्छा होता जो हम भी इस कुर्सी पर बैठे होते, लेकिन कैसे? हम तो झूठा-सच्चा कुछ भी काम करते हुए हम वहां तक पहुंचे लेकिन हम यह विचार नहीं करते कि जो व्यक्ति इतनी ऊंची कुर्सी पर बैठे हैं अथवा सफल है, उसकी इस सफलता के पीछे कितना बड़ा त्याग है। हम केवल शिखर देखकर यह अंदाजा लगा लेते हैं कि यह भवन बहुत ही सुन्दर है, लेकिन हम यह विचार नहीं करते कि जो व्यक्ति इतनी ऊंची कुर्सी पर बैठा है अथवा इतना सफल हुआ है, उसकी इस सफलता के पीछे कितना बड़ा त्याग है। हम केवल शिखर देखकर अंदाजा लगा लेते हैं कि यह भवन बहुत ही सुन्दर है, लेकिन उस भवन के नीचे की नींव की ईंट है, उसे बनाने वाले कारीगरों का जो त्याग है, उसके कर्त्ता का जो परिश्रम और संकल्प है, इसकी ओर हम ध्यान नहीं देते या फिर नहीं देना चाहते हैं। यही कारण है कि हम जीवन भर दु:खी रहते हैं।

दूसरों के सुख को देखकर दु:खी होना आज हमारा धर्म बन गया है। 'दूसरे कैसे आगे बढ़ रहे हैं', 'वे कैसे धनी हो गए', 'वह कैसे बड़ा आदमी हो गया', 'कैसे इतना ऊंचा उठ गया', हम केवल यही देखते हैं। लेकिन उस ऊंचाई के नीचे जो कर्म होता है, उसे नहीं देख सकते। इसलिए तो गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम केवल कर्म करो, तुम फल की कामना मत करो, यदि तुम केवल कर्म करते

रहोगे, तो सही स्थान की प्राप्ति तुम्हें अवश्य होगी। यदि तुम स्टेशन जाकर, सही गाड़ी पर गंतव्य स्थान का टिकट लेकर बैठ जाओ, तो फिर अपने गंतव्य या फिर अपनी मंजिल पर अवश्य ही पहुंचोगे। लेकिन आप तो दूसरों को पहुंचते हुए देखते हैं और जलना शुरू कर देते हैं, उसे देखकर आपके मन में अनेक प्रकार की दुर्भावनाएं आती रहती हैं। आप दूसरों को देखकर जलते रहते हैं, तो फिर आपके जीवन में कैसे सफलता आएगी?

जीवन में सफलता बाजार से खरीद कर नहीं लाई जा सकती, सफलता तो अर्जित की जाती है और यह तभी संभव है जब आपके पास अगाध संकल्पशक्ति हो, जब आपके पास पहाड़ के समान संकल्प होगा कि मैं इस काम को कर लूंगा, जिन विभूतियों ने बड़ी-बड़ी सफलता प्राप्त की, उनके मन में निश्चय ही बहुत बड़ा मनोबल रहा होगा, बिना मनोबल के कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में सफल नहीं हो सकता। हम तो संदेह में ही घिरे हुए रहते हैं, हम घिरे रहते हैं अपनी कायरता से। लेकिन जिस दिन इस संदेह की चादर को फाड़कर बाहर निकलते हुए इस संकल्प शक्ति के साथ खड़े हो जाएं, अपने मन की कमजोरियों को दूर करते हुए अपने कार्यक्षेत्र में कूद पड़ें, तो जीवन में कोई ऐसा क्षेत्र नहीं होगा, जहां हमें सफलता नहीं मिले!

अब्राहम लिंकन, अमेरिका के राष्ट्रपति, वे अपने जीवनकाल में एक लकड़हारा थे और उसने लकड़हारे का जीवन जीते हुए एक दिन अमेरिका के राष्ट्रपति की कुर्सी को प्राप्त किया। आज यदि हमारे मन में ऐसा विचार हो कि कोई झाड़ू का काम करने वाला व्यक्ति अच्छे और ईमानदारी से झाड़ू बांधे, उसके झाड़ू में प्रेम हो, स्नेह हो, परिश्रम हो, तो लोग उसके पास झाड़ू खरीदने जा सकते हैं और उसकी दुकान अच्छी चल सकती है। प्रश्न तो यह है कि आप जो भी काम करते हैं, उसमें आपकी लगन और आपकी ईमानदारी किस हद तक निहित होती है। कितने प्यार से आप उस काम को पूरा करते हैं, आप किसी दुकान में जाएं और यदि वह दुकानदार आपको प्यार से बुलाकर, बैठकर बातें करें, यदि उसने आपके साथ अच्छा व्यवहार किया हो, तो आप उसकी दुकान पर दोबारा अवश्य ही जाएंगे।

हमारी हार का सबसे बड़ा कारण यह है कि हम जो भी काम करते हैं, एक भार समझकर हम उसको निपटा देते हैं। प्यार से हम कोई काम नहीं कर पाते हैं, हम उसमें अपनी लगन नहीं लगा सकते। चाहे वह काम शिक्षक का हो अथवा अधिकारी का, चाहे प्रधानमंत्री का काम हो, कोई भी काम छोटा नहीं होता, बल्कि छोटा तो होता है हमारा विचार, छोटी होती है हमारी सोच। हम किस विचार से उस काम को पूरा करते हैं, उसकी या हमारी सफलता इसी विचार से फलित होती है। आप जीवन में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, यश की कामना तो प्रत्येक व्यक्ति की होती है। आप यह भी चाहते हैं कि आपके सेवन में कोई ऊँचाई हो, लेकिन इस ऊंचाई को आप तभी हासिल कर सकते हैं, जब आप पहाड़ पर चढ़ने के पूर्व ही आपके मन में संदेह घर कर ले, आपके मन में विभिन्न प्रकार की नकारात्मक वृत्ति का उदय हो जाए, तो फिर आप पहाड़ पर कैसे चढ़ सकेंगे? इस दुनिया में तीन प्रकार के लोग होते हैं, एक तो वैसे जो काम करना चाहते हैं, लेकिन यह सोचकर वे काम नहीं कर पाते कि पता नहीं यह काम हमसे होगा या नहीं। नेपोलियन और हिटलर, सुभाष चन्द्र बोस, आइंस्टीन जैसे लोगों ने अपने-अपने क्षेत्रों में जो काम किया, यदि वे भी ऐसा सोचते कि पता नहीं यह काम हमसे होगा या नहीं? यदि उनके मन में ऐसे भाव आ जाते तो वे भी पिछड़ जाते, लेकिन उन लोगों ने ऐसा नहीं सोचा और अपनी पूरी संकल्प शक्ति उन्होंने लगा दी। काम छोटा या बड़ा, उन्होंने काम में अपने सम्पूर्ण जीवन को त्याग दिया।

आदमी यह सोचता है कि यह काम हमसे होगा या नहीं, फिर विचार करते-करते वह वहीं रुक जाता है। वह कभी भी प्रारम्भ नहीं कर पाता। सोचने वाले बहुत सारे लोग हैं इस दुनिया में, वे सोचते-सोचते अपने जीवन को बर्बाद कर लेते हैं और उनके जीवन में कोई भी फूल नहीं खिल पाता। दूसरे प्रकार के लोग ऐसे होते हैं जो काम शुरू करते हैं, परन्तु जब कठिनाई आने लगती है तो वह काम छोड़कर भाग जाते हैं कि यह काम हमसे नहीं होगा। ऐसे भी लोग हैं जो जीवन में काम करना तो चाहते हैं, उन्होंने प्रारम्भ भी कर दिया, लेकिन बीच रास्ते में ही उन्होंने अपने काम को छोड़ दिया। महात्मा गांधी, सुभाष चन्द्र बोस,

पटेल जैसी विभूतियां भारत देश में पैदा हुईं, इन लोगों ने इस देश को स्वतंत्र कराने का संकल्प लिया। ये सारे यदि बीच रास्ते में ब्रिटिश की मार से घबरा जाते तो क्या हमें आजादी मिलती? शायद आपको भी जानकारी हो कि वीर सावरकर 16 वर्षों तक अंडमान निकोबार की जेल में बैल के समान तेल पेरते रहे फिर भी उन्होंने हार नहीं मानी।

तीसरे प्रकार के लोग वे होते हैं, जो काम शुरू तो करते हैं, कठिनाई भी झेलते हैं और उसका निदान ढूंढ़कर अपनाते भी हैं और अन्त में हिमालय के शिखर पर ध्वज फहरा देते हैं। यह विचार करने की बात है कि हम किस प्रकार के व्यक्ति हैं। क्या हम ऐसे हैं जो काम प्रारम्भ करें और छोड़ दें, हमारा संकल्प यह नहीं होना चाहिए, लेकिन इसमें प्रधान कारण है संदेह। आप संदेहों को अपने मन से हटा दीजिए, अपनी अयोग्यता की कहानी मत कहिए, आप असफलता की बात मत स्वीकार करें। फिर आपके जीवन में जो फूल खिलेंगे, आपका जीवन जब मुस्कानों से भर जाएगा, आपका जीवन आनन्द से भर जाएगा, तब आप समझेंगे कि आपका जीवन सार्थक हो गया। आप अपने इस जीवन को नरक के समान मत बनाइए। इस जीवन को नरक और स्वर्ग बनाना आपके हाथ की बात है। इस जीवन को रोकर बिताएं या हंसकर बिताएं, यह सिर्फ आपके हाथ की बात है। यह कोई दे नहीं सकता, कहीं किसी गुरू से इस प्रकार की शिक्षा आपको नहीं मिल सकती है।

•

24

जीवन को किसी उद्देश्य से मत बांधो

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एक उद्देश्य होता है, लेकिन यदि कोई अपना उद्देश्य निश्चित न कर पाए तो उसका क्या कारण हो सकता है? इससे क्या यह समझा जाए कि इसे किसी उद्देश्य या लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती है?

ये सारे प्रश्न मनोवैज्ञानिक हैं और जब मनोविज्ञान और अध्यात्म, दोनों ही दृष्टियों से इस विषय पर सोचेंगे तो उत्तर भी स्वतः आ जाएगा।

उदाहरण स्वरूप जब बालक छोटा होता है तो उसके अभिभावक उसे किसी न किसी उद्देश्य की सीमा में बांधने का प्रयास करते हैं। बालक को जीवन का एक उद्देश्य तय करने की चेतावनी दी जाती है, उसे आई.ए.एस, डॉक्टर, इंजीनियर आदि का विकल्प भी दिया जाता है। वस्तुतः प्रारंभिक अवस्था में ही बच्चों के मन में यह बीज रख दिया जाता है कि वे अपने लिए कोई न कोई उद्देश्य निश्चित कर लें, जिससे वे उस दिशा में आगे बढ़ सकें। जैसे कि अगर किसी को यह बताया जाए कि उसे अमुक जगह पहुंचना है, तो वह व्यक्ति चलने के साथ ही अपनी मंजिल की ओर बढ़ने वाले रास्ते को ध्यान में रखेगा। शायद इसीलिए लोग कुछ न कुछ लकीर खींचते हुए एक मंजिल सुनिश्चित कर देते हैं कि यही उसका लक्ष्य है। वास्तव में उद्देश्यहीन जीवन निरर्थक होता है। जिस व्यक्ति को यह नहीं पता लगे कि उसे करना क्या है, वह उसके लिए सबसे बड़ी कठिनाई होती है। बचपन में माता-पिता या पढ़ाई के दौरान शिक्षक, व्यक्ति को जीवनोद्देश्य निश्चित करता है, लेकिन यदि किसी व्यक्ति ने अपने लिए कोई उद्देश्य नहीं निश्चित

किया, तो उसे घबराहट भी सताती है। एक शिक्षक के सम्मुख उसके विद्यार्थियों के द्वारा ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनसे उसे भी घबराहट होती है। बच्चों का शिक्षक से यही प्रश्न होता है कि वे डॉक्टर या इंजीनियर बनना चाहते हैं। उनकी यह सोच स्वाभाविक ही है, क्योंकि बचपन से ही उनके माता-पिता ने उनके कानों में यह मंत्र भरा है कि उन्हें यह बनना है या वह बनना है।

इससे सबसे पहला नुकसान तो यही होता है कि जो बच्चा एक कवि, पेंटर या क्रिकेटर बनना चाहता है, उसे उसके माता-पिता द्वारा जबरन इंजीनियर बनने का दबाव उसकी मेधा शक्ति को विपरीत दिशा मे ं ले जाता है। यही कारण है कि वे बच्चे बाद में अपनी पढ़ाई से भागने लगते हैं या फिर ऐसे दबावों की वजह से उनका अपना पूरा जीवन नष्ट हो जाता है। अभिभावक जब अपनी इच्छानुसार उन्हें बनाना चाहते हैं तो बच्चे पेंटर, कलाकार या टैगोर जैसा कवि बनने के चक्कर में दो दबावों के बीच आ जाते हैं। ऐसे में उनका भविष्य छटपटाने लगता है। परिणाम स्वरूप बच्चे न तो इधर के रहते हैं और न उधर के। उनकी रुचि से अलग बाहर की अभिरुचि आरोपित होने से ऐसे बच्चे न अपने रह पाते हैं और न किसी दूसरे के। ऐसी उधेड़बुन में वे विद्यालय छोड़कर किसी दूसरे रास्ते पर आगे बढ़ जाते हैं क्योंकि परिस्थिति में न तो वे अपने मन से पढ़ पाते हैं और फिर दूसरे के मन से पढ़ने की कोई सोच भी कैसे सकता है? किसी भी व्यक्ति को मार-पीटकर जबरन डॉक्टर या इंजीनियर नहीं बनाया जा सकता है। **रवीन्द्रनाथ टैगोर** बहुत प्रतिभावान थे, फिर भी यदि उन्हें गणित पढ़ाई जाती, यदि **भाभा** को पेंटर और कवि बनाने का प्रयास किया जाता, तो यह दुनिया ऐसी विभूतियों से वंचित रह जाती। बच्चों पर बल प्रयोग करके अपनी मान्यता को थोपने का प्रयास न किया जाए, क्योंकि वे ऐसा ही बनें ऐसा जरूरी नहीं है और अभिभावक भी तो वैसे नहीं बन सकते हैं जैसा वे बताते हैं।

जितने भी सद्गुरु और आचार्य लोग होते हैं, यदि वे लोग किसी व्यक्ति को परिवर्तन करना चाहें जिधर उसका झुकाव न हो तो वे लाखों बार चिल्लाते रहेंगे पर उन चिल्लाहटों का उस व्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। वह जो है, वही रहेगा। यहां का प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता

है कि वह अच्छा बन जाए पर सिर्फ चाहने भर से कुछ नहीं होता। चाहने का काम तो सभी करते हैं, पर जहां तक उद्देश्य की बात है उस संबंध में एक उदाहरण दृष्टव्य है।

एक बार 12वीं की परीक्षा के उपरांत जब मैंने एक बच्चे से पूछा कि अब बताओ, तुमने 12वीं तो कर ली है, अब आगे क्या करना चाहते हो? उस बच्चे ने जवाब दिया कि-सर "आपने तो हमें कई बार बताया था कि हमारे चाहने से कुछ नहीं होने वाला। मेरा काम तो सिर्फ इतना है कि मैं प्रयास करता रहूं, मैं निष्ठापूर्वक अपने काम करता रहूं, विगत परीक्षा में भी मैंने यही काम किया है। मैंने निष्ठापूर्वक पढ़ाई की है और उसी का फल है कि आज मैं सर्वोत्तम स्थान पर हूं। मेरे चाहने से तो कुछ नहीं होने वाला है।"

किसी भी वर्ग के प्रत्येक बच्चे की यही चाहत होती है कि वह अपने वर्ग की परीक्षा में टॉप करे, लेकिन क्या उसके चाहने भर से कुछ होता है? अपने लिए कुछ चाहने के बजाए होना यह चाहिए कि हम अपनी संकल्प शक्ति को दृढ़ कर लें, हम सर्वोत्तम बनने का प्रयास करें। अब हम क्या बनेंगे यह तो बाद की बात है। केवल एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि तुम्हें अच्छा बनना है। इस क्रम में यदि तुमने अच्छा बनने का प्रयास कर लिया और अपनी यात्रा में चालू रख पाए, तो रास्ते में अनेकों कुर्सियां मिलेंगी जिन पर तुम बैठ सकते हो। तुम कभी वैज्ञानिक, तो कभी प्रोफेसर बनकर बैठ जाओ, कभी किसी विभाग के मंत्री बन जाओ। मतलब सिर्फ यही है कि तुम हमेशा प्रयासरत रहो।

हम यह मानते हैं कि यदि हम प्रयास करते रहेंगे, तो कहीं न कहीं हम जरूर पहुंच जाएंगे। प्रयास करना हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए। यदि हम निष्ठापूर्वक चलते हैं। किसी कार्य के परिणाम को निर्धारित करते हुए आगे की ओर बढ़ें तो फिर उस कार्य को तो होना ही होगा। यदि हमारी पढ़ाई अच्छी है, पूरे मनोयोग से अध्ययन किया है, अपने पाठ्यक्रम को गंभीरता से पढ़ा है तो फिर हमारे अच्छे परिणाम को कौन रोक सकेगा? इस परिणाम को तो अच्छा होना ही होगा। एक और घटना का उल्लेख करने से बात समझ में आ जाएगी।

बात तब की है जब राजेन्द्र बाबू प्रेसीडेंसी कॉलेज में पढ़ रहे थे। उन दिनों किसी परीक्षा के उपरांत उसका परिणाम निकला। सारे

विद्यार्थियों के साथ राजेन्द्र बाबू भी परिणाम जानने के लिए कॉलेज पहुंचे और उन्होंने परिणाम बताने वाले क्लर्क से कहा कि 'Dear gentlleman please tell me that who stood IInd in my class?' उस क्लर्क ने सोचा कि यह कैसा पागल आदमी है जो यह पूछ रहा है कि कौन दूसरे स्थान पर आया है? उस क्लर्क ने कहा कि "तुम ऐसा क्यों पूछ रहे हो? तुम्हें तो यह पूछना चाहिए कि प्रथम कौन आया है, जबकि तुम पूछ रहे हो कि दूसरे स्थान पर कौन आया है?" तब राजेन्द्र प्रसाद जी ने कहा, "हां! मैं जानता हूं कि प्रथम कौन आया है, इसलिए मैं यह पूछ रहा हूं कि दूसरे स्थान पर कौन आया है, ताकि उस पर भी कुछ और मेहनत की जा सके।" वह क्लर्क हैरान कि रिजल्ट तो अभी मेरे पास ही है, मैंने किसी को बताया भी नहीं कि कौन प्रथम आया है, फिर यह कैसे जान गया कि प्रथम स्थान पर कौन छात्र है? जब उस क्लर्क से रहा नहीं गया, तो उसने पूछ ही लिया कि "तुम कैसे जान गए कि कौन सा छात्र तुम्हारी कक्षा में प्रथम आया है?" तब राजेन्द्र बाबू ने उत्तर दिया कि "तुम अपने रिकॉर्ड में देख लो, प्रथम स्थान पर आने वाला छात्र तो सिर्फ मैं ही होऊंगा, क्योंकि मुझे अपनी लगन और मेहनत पर पूरा भरोसा है। मैं जानता हूं कि मैंने जितनी मेहनत की है उसके आधार पर मैं दूसरे स्थान पर आ ही नहीं सकता। इसलिए मैंने पूछा है कि दूसरे स्थान पर कौन आया है? मैंने अच्छा काम किया है तो मेरा परिणाम अच्छा आया है।"

इसी प्रकार यदि हम अपने जीवन में पुण्य के काम करेंगे, तो हमारा जीवन नैतिकताओं से भर उठेगा। यदि हमने अच्छे काम किए तो उसका परिणाम अच्छा होना ही है, बुरे काम करेंगे तो परिणाम भी बुरे ही भुगतने होंगे। यदि हम आज कर्म करते हैं, तो उसके परिणाम के लिए भी तैयार रहें। आग को यदि आज छुआ जाए, तो क्या यह संभव है कि हमारे हाथ कल जलेंगे? यह तो स्पष्ट ही है कि अच्छा काम करने से परिणाम भी अच्छे आएंगे, इसी तरह इसका उल्टा भी होगा।

इस तरह उस विद्यार्थी के दिए उत्तर से ऐसा लगा जैसे किसी ने मुझे सोते से जगाया हो। उसने कहा कि "सर, आपने तो बहुत बार लोगों को समझाया कि जो चीज तुम्हारे हाथ में नहीं है, उसे तुम कैसे निश्चित कर सकते हो? प्रत्येक व्यक्ति का भविष्य उससे अलग खड़ा रहता है। मैं कैसे समझ सकता हूं कि मेरा भविष्य कैसा है?" मेरी तन्द्रा इन बातों

से टूटी और मैंने कहा कि "मैंने तुम्हें यही बताया था, क्योंकि अपने भविष्य को निश्चित करने का अधिकार तो किसी दूसरे के पास है ही नहीं और तुम्हारे जीवन का जो उद्देश्य है, वही तो तुम्हारा भविष्य है।"

भविष्य को निश्चित नहीं किया जा सकता, वह तो अनिश्चित होता है, अदृश्य होता है, यदि हम किसी को अपनी ओर आता हुआ देखें, तो क्या हम इस बात का अंदाजा लगा सकते हैं कि वह किस काम से हमारे पास आ रहा है? हो सकता है कि वह हमें सम्मान देने के लिए आ रहा हो या यह भी हो सकता है कि वह हमारा अपमान करना चाह रहा हो। उसके मन में हमारे बारे में क्या चल रहा है, यह तो हम जान नहीं पाते तो हम दूर भविष्य की बातों को पहले से कैसे सोच लेते हैं? वह भी बच्चों के भविष्य की, जो अपेक्षाकृत हमसे भी कहीं दूरी पर स्थित होता है। उसे हम देख या जान नहीं पाते हैं, तो फिर हम उसके बारे में क्या निर्णय ले सकते हैं?

मेरा भविष्य तो कल बनने वाला है। यदि मैं आज अध्ययन करूंगा तो मेरा भविष्य बनेगा, मैं अध्ययन नहीं करूंगा तो मेरा ही भविष्य खराब होगा। आज यदि मैं यह कह दूं कि मैं डॉक्टर बनूंगा, पर कैसे? मैंने डॉक्टरी तो पास ही नहीं की। किसी अनिश्चितता का क्या भविष्य हो सकता है।

यह तो हुई हमारी एक दृष्टि दूसरी दृष्टि में एक मनोवैज्ञानिक बात है कि हम कैसे किसी के उद्देश्य को बांध सकते हैं? फिर जब हम आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करते हैं तो पाते हैं कि अध्यात्म तो एक गहरा समुद्र है, कोई व्यक्ति डुबकी लगाकर उससे क्या प्राप्त कर सकेगा?

हमारा भविष्य तो सिर्फ लिखने वाला ही बता सकता है। इसलिए गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि "बीती बातों पर पंडित विचार नहीं करते और भविष्य तो तुम्हारा है ही नहीं। जो बीत गया वह भूत है और भविष्य के आने की संभावना है या नहीं, यह कौन जानता है।" हम यह कैसे जान सकते हैं कि अगले पल मेरे जीवन में क्या होने वाला है। हम अक्सर यह कहते रहते हैं कि कल मैं आपके लिए यह काम करूंगा। आपको आने वाले कल की क्या सम्पूर्ण जानकारी है?

•

25

शिक्षा का प्रकाश फैलाना ही उद्देश्य

बाल मन ईश्वर का सबसे प्रिय निवास होता है। परम पूज्य आचार्य सुदर्शन जी महाराज इसी बात को आत्मसात किए अपने पर पूरे मानव जीवन को ईश्वर के इस निर्दोष रूप की सेवा में बिता रहे हैं। मानव मात्र के मन से अज्ञान के अंधेरे को दूर करने वाले गुरुदेव बालकों के समुचित विकास में शिक्षा को सर्वोपरि मानते हैं। संसार भर में ज्ञान की जोत जगाने में अनवरत लगे पूज्य गुरुदेव उन बेघर, गरीब व उपेक्षित बालकों की शिक्षा को लेकर सतत प्रयत्नशील रहते हैं जिन्हें इस संसार में कोई आसरा नहीं है। उनके द्वारा संचालित आत्म कल्याण केंद्र के लोग गांव-गांव में निशुल्क विद्यालय चलाते हैं। शिक्षा के प्रकाश से दूर हजारों-हजारों बच्चों को शिक्षा की ओर मोड़ते हैं। उन्हें निशुल्क पैंसिल, किताब, पोशाक आदि देते हैं। गरीब बस्ती में अपेक्षित भटकते बच्चों को अज्ञान के अंधेरे से निकालने का प्रयास करते हैं ताकि वे समाज की मुख्य धारा से जुड़ सकें और बुरी आदतों से बच सकें। इस पावन प्रयास में दिल्ली, बिहार, झारखंड और हरियाणा के कई गांवों और स्लम क्षेत्रों में विद्यालय खोले गए हैं तथा और भी विद्यालय खोलने की योजना है। इन विद्यालयों का सारा खर्च आत्मकल्याण केन्द्र उठाता है। आत्मकल्याण केन्द्र की यह जन कल्याणकारी सेवा सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त कर रही है।

आत्मकल्याण केन्द्र के माध्यम से गुरुदेव का प्रयास है कि पूरे देश के स्लम एवं झुग्गी, झोपड़ी, क्षेत्रों में ऐसे निशुल्क विद्यालय खोले जाएं, ताकि गरीब व उपेक्षित बच्चे भी शिक्षा का प्रकाश पाकर इस जगत में अपनी पहचान बना सकें।

26

एक दीप जलाएं

दीपावली का पावन पर्व हमारी संस्कृति का पर्व है। यह भारतीय जनमानस और उसकी आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति है। **'तमसो मा ज्योतिर्गमय'** अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ने का आदर्श उद्घोष यह पर्व ही करता है। सुख-समृद्धि और शांति की कामना के लिए हर कोई मां लक्ष्मी का स्वागत करने के लिए दिलोजान से जुट जाता है। परन्तु आज आवश्यकता है, तो इस बात की कि हम इसके पीछे निहित व्यापक भावना को समझें। हम यह भली-भांति जान लें कि दीपावली का यह प्रकाश पर्व मनाना सार्थक तभी होगा, जब हमारा अंतर्मन शुद्ध होगा, जब हमारा चित्त निर्मल होगा।

हर बुद्धिजीवी मुख्य रूप से अपने जीवन में दो प्रकार के प्रकाश की कामना करता है। एक अध्यात्मिक प्रकाश के लिए मन और आत्मा के दीपक को जलाना पड़ता है, जबकि लौकिक जगत में जब अंधेरा छाने लगता है तो रोशनीके लिए एक दीपक की आवश्यकता होती है। अंधेरा चाहे कितनी ही पुराना क्यों न हो, दीए की एक ज्योति ही काफी है उस अंधेरे को भगाने के लिए। अंधेरे की इस महानिशा को दूर करने के लिए ही दीपावली पर्व के सुअवसर पर लाखों दीए जलाए जाते हैं और गंगा जी में भी प्रवाहित किए जाते हैं। कार्तिक मास की अमावस्या पर जो दीप हम जलाते हैं, वे हमारे अंदर की खुशियों को जाहिर व उजागर करते हैं। जलते हुए दीपक की लौ हमें जीवन में ऊंचाई की ओर बढ़ने की प्रेरणा देती है, ऊपर उठने के लिए प्रेरित करती है। उस

परमात्मा के नूर से ही यह तमाम कायनात रोशन है। उसकी कृपा हो जाए और हम थोड़ा सा प्रयास करें, तो बात बनने में देर नहीं लगेगी। हमारे अंदर का अविवेक, अंधकार, अज्ञान, असत्य सब कुछ मिट जाएगा और हमारा जीवन प्रकाश में परिवर्तित हो जाएगा।

'अंधेरे पर क्यों झल्लाएं
अच्छा हो कि एक दीप जलाएं'

जब हम अपने हृदय का अंधकार दूर करेंगे तो घर-घर में आनन्द छा जाएगा, सबके चेहरे पर मुस्कराहट होगी, हर आंगन में खुशहाली नाचेगी और जिस दिन कोई भूखा नहीं सोएगा, वही हमारी सच्ची दीवाली होगी। जो दीप 'स्व' के सीमित क्षेत्र से ऊपर उठकर मनुष्यता को, समस्त मानव जाति को समर्पित होता है, वह अंत तक जलता है, प्रलय की आंधियों में भी जलता रहता है।

दीपावली अधर्म पर धर्म की जीत का पर्व है। आज निविड़ तम में निखिल जग को ज्ञान का दीपक दिखाने की आवश्यकता है, जन-जन को शांति का पावन संदेश सुनाने की आवश्यकता है। प्रकाश पर्व हर वर्ष एक निर्माण बलों का कार्य करती है, जिसका सपना सही मायने में साकार तब होगा, जब हर एक प्राणी में विश्व बंधुत्व की भावना करे। इसका सपना साकार तब होगा, जब यह सोई चेतना को जगाकर नए युग का निर्माण करे। यह समस्त मानवता के लिए एक बोधि वृक्ष है, सबको जोड़ने वाली एक कड़ी है। दीपावली के दीए प्राची से पावन प्रकाश लेकर पश्चिम तक को जगमग कर देते हैं, यह व्योम-क्षितिज सबको ऊर्जा से भर देते हैं। वैसे कई ऐसी घटनाएं इस दिन घटित हुईं, जिनकी वजह से हम दीपार्चन करते हैं।

परंतु संक्षेप में मैं यही कहना चाहूंगा कि आज एक बार पुनः आवश्यकता है, घने तिमिर में रोशनी जलाने की, भटकते हुए लोगों को सही राह दिखाने की, तन-मन को जगाने की। चांद का क्या? आज है, कल आए न आए। किसी भी रात चांदनी धोखा दे जाए। परंतु तू तो हर रोज अपना दीया जलाकर बैठ, ताकि यदि अंधेरा आए तो वह भी चिराग बन जाए।

•

27

निज कृत कर्म भोग सुनु भ्राता

परमपूज्य आचार्य श्री सुदर्शन जी महाराज कहते हैं कि मनुष्य स्वभाव का एक सरल सुगम प्राणी है। स्वस्थ रहना, हंसना, मुस्कुराना प्रकृति की गोद में खेलना उसका मूल स्वभाव है। मनुष्य अथवा जीव-जन्तु, पेड़-पौधे और इस जगत के सम्पूर्ण प्राणी परमात्मा का अंश है। जीव को प्राणी इसलिए कहा जाता है कि उसमें प्राण है और प्राण आत्मा रूप में जीव में विराजमान है। प्राण को परमात्मा कहते हैं। परमात्मा महाप्राण है और जीव अल्पप्राण है। मात्रा के भेद है। यह सम्पूर्ण जीव जगत, आकाशगंगा, निहारिका, सूर्यमंडल ग्रह, पृथ्वी आदि सभी एक ही दिव्य आलोक, दिव्यप्राण से आच्छादित है। प्राण अंतरिक्ष के आकाश गंगाओं के ऊपर विराजमान रहता है। वहीं से प्राण का संचार कर सभी जीव जन्तुओं में प्राण प्रदान करता रहता है। छोटे-से-छोटे जीव उसी महाप्राण से प्राण ग्रहण करता है। यह इतना दिव्य होता है कि इसे न कोई पहचान सकता है और न ही कोई जान सकता है। क्योंकि यह हमारी इन्द्रियों से परे होता है। जिस प्रकार कोई चींटी समुद्र को नाप नहीं सकती, जान नहीं सकती, कोई पक्षी आकाश की सीमा बता नहीं सकता। उसी प्रकार जीव परमात्मा के संबंध में कुछ नहीं बता सकता।

जब जीव उस विराट ब्रह्म का अंश है तो जीव को स्वस्थ और दीर्घायु होने का पूरा अधिकार है। जिस प्रकार यह विराट ब्रह्मांड, ग्रह, नक्षत्र, तारे, पृथ्वी, पहाड़, झरना कभी बीमार नहीं पड़ते। उसी प्रकार मनुष्य भी ब्रह्म का अंश होने के कारण बीमार नहीं हो सकता। यह सत्य

है कि शरीर पुराना पड़ जाता है। लेकिन असमय में शरीर का गिरना, बूढ़ा अथवा बीमार होना स्वाभाविक प्रक्रिया नहीं है। हमारे बगल में जानवर रहते हैं। जानवर का अर्थ होता है जानवाला। इस तरह प्रत्येक जीव परमात्मा का ही अंश है और परमात्मा कभी बीमार नहीं पड़ता। वह तो अजर है, अमर है, अविनाशी है। मनुष्य जिसका अंश है, अगर वह कभी बूढ़ा नहीं होता, अंशी कैसे बीमार पड़ता है। पेड़-पौधे भी तभी बीमार पड़ते हैं जब उसके जीवन में कोई अव्यवस्था होती है। खाद्य-पानी की कमी होती है। तभी वृक्ष रुग्ण हो जाता है। हम प्रायः देखते हैं। पशु जब बीमार पड़ता है तो वह अपना इलाज स्वयं कर लेता है। कुत्ता जब बीमार पड़ता है तो वह हरी-हरी घास खाकर बीमारी को ठीक कर लेता है। किसी अज्ञात कारण से शरीर में कोई विकार उत्पन्न हो जाए, यह स्वाभाविक प्रक्रिया है। लेकिन असमय में बुढ़ापा आ जाए, जवानी में बीमारी आ जाए। यह स्वाभाविक प्रक्रिया नहीं है। कहा जाता है मनुष्य को कम से कम सौ वर्षों तक जीने का अधिकार है।

"कुर्वण्य वेह कर्मानी जीजिविषेत शंत समा।"

कर्म करते हुए सौ वर्षों तक जीए ऐसा विधान है। मनुष्य ने परमात्मा से सौ वर्षों तक जीने और स्वस्थ रहने का अधिकार मांगा है। अगर उससे पहले बीमार पड़ता है या बूढ़ा होता है तो निश्चित रूप से उसने अधिकार तोड़ा है। उसके लिए मनुष्य स्वयं जिम्मेदार है। किसी की बीमारी से परमात्मा को कुछ लेना-देना नहीं है।

काहु ना कोहु सुख दुःख कर दाता।
निज कृत कर्म भोग सुनु भ्राता॥

प्रत्येक व्यक्ति अपने द्वारा किए गए कार्यों का ही परिणाम भोगता है। यह तो विज्ञान का नियम है कि आग पर हाथ रखोगे तो हाथ जलेगा। तुम आग पर हाथ रखो और दूसरे का हाथ जले ऐसा नहीं होता। पानी पीओगे तो तुम्हारी प्यास बुझेगी। तुम्हारे पानी पीने से किसी और को कुछ लेना-देना नहीं है। परमात्मा ने प्रकृति में इतने फल बनाए कि तुम उसे खाकर स्वस्थ रहो। प्रकृति ने मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए सारी व्यवस्था कर दी है। अगर मनुष्य उसका पालन न करे तो इसमें प्रकृति क्या कर सकती है ?

28

उन्नति का मूल है कर्म

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करहिं, सो तस फल चाखा।।

यह सम्पूर्ण विश्व कर्म प्रधान है और यह कर्मशील व्यक्तियों के लिए ही बनाया गया है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि–**वीर भोग्या वसुन्धरा,** अर्थात् जो शक्तिवान होते हैं, वे दुनिया के सुख को भोगते हैं। जो मजबूत है वह शासन करता है। जिस प्रकार कि कोई बड़ी मछली अपने से छोटी मछली को निगल जाती है, कोई बड़ा जानवर अपने से छोटे जानवर को खाकर अपना जीवन चलाता है, तो ऐसा कहा जा सकता है कि यह पूरी पृथ्वी हमारे लिए एक कर्मभूमि है, जो चुनौतियों से भरी हुई है। पूरा का पूरा आकाश भी हमें कर्म करने हेतु मिला हुआ है। हम जितना कर्म करते जाएंगे हमारी ऊंचाई भी उतनी ही बड़ी होती जाएगी और हम जीवन में उतने ही सफल माने जाएंगे।

कर्म के आधार पर ही मनुष्यों की सफलता और असफलता का आकलन किया जाता है। जो कर्म नहीं करेगा, उसे तो पीछे रहना ही होगा और जो कर्म करेगा केवल वही आगे जा सकता है, क्योंकि यह एक कर्म प्रधान क्षेत्र है, जिसमें हम अपना जीवन जी रहे हैं। यदि हम कर्म न करें और हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें, तो क्या कोई ऐसा है जो हमारे सामने आकर हमारा कल्याण कर चला जाए। यह दुनिया आलसी लोगों के लिए नहीं बनी है। यह दुनिया कर्म करने

वालों के लिए बनी है, लेकिन उनमें से जो ऐसे हैं, जो कर्म करने से अपने को रोक लेते हैं, ऐसे व्यक्ति का हर मार्ग पर और जिन्दगी के हर दौर में पीछे रहना ही नियति-सी बन चुकी है। आज जो लोग सफल हो रहे हैं, उन्हें देखने पर अहसास होता है कि उन्हें कितना संघर्षरत जीवन जीना पड़ा होगा।

•

29

कर्म से बदलता है भाग्य

यदि आप नक्षत्र की भाषा को समझ लें तो आप भी मानने लगेंगे कि व्यक्ति या प्रत्येक जीवन पर हमारे नक्षत्रों का प्रभाव पड़ता ही है। लेकिन सड़क के किनारे अपनी पोथी लेकर बैठने वाले लोगों को सिर्फ 5 रुपए में अंगूठी बेचता हुआ देखकर आपके मन में ऐसा होता होगा कि हमें भी इस तरह से सफलता मिल जाएगी और हमारा भाग्य बदल जाएगा। तो फिर आपसे अधिक भ्रम में कोई हो ही नहीं सकता है। सड़कों के किनारे ऐसे लोग आपको मिल जाएंगे, इनसे आपका भाग्य तो बदलेगा नहीं, अपितु आपकी जेब की दशा जरूर बदल जाएगी।

अपना भाग्य बदलने के लिए आपको कर्म करना होगा। मैं आपको इतनी-सी बात विश्वासपूर्वक बता दूं कि यदि आप कर्म करेंगे तो आप अपने बिगड़े हुए भाग्य को भी बदल सकते हैं। आप ऐसी भूल क्यों कर रहे हैं? भगवान ने तो आपको दीन-हीन-गरीब-उपेक्षित पैदा नहीं किया। भगवान रूपी पिता भी क्या अपने बच्चों के साथ ऐसे बर्ताव कर सकते हैं? क्या आप अपने बच्चों के लिए ऐसी बातें सोच भी पाते हैं? लेकिन यह तो हम हैं कि अपने कर्मों से ही अपने शरीर को गलाते और जलाते चले जा रहे हैं।

भगवान ने तो तुम्हें शरीर दिया आनन्दपूर्ण जीवन को जीने के लिए, लेकिन तुमने तो अपने जीवन को रोते हुए बिता दिया, तुमने तो अपने लिए दु:ख, चिंता और क्लेश को बाजार से खरीद कर अपने घर लाकर रख लिया। इन सब चीजों का निर्माण भी तुमने स्वयं ही किया। ध्यान

दें कि किसी छोटे बच्चे को कोई चिंता क्यों नहीं होती है? तुम भी तो ऐसा कर ही सकते हो। तुम भी सारी चिंताओं को छोड़ो और खड़े हो जाओ– तभी तो कबीर दास जी कहते हैं।

कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर जारे आपने, चले हमारे साथ॥

•

30

कर्मों से बदल डालो दुर्भाग्य

जब आपने यह निश्चय कर लिया कि मुझे बड़ा बनना है, तो फिर मान लें कि आप निश्चित ही बड़े बनकर ही रहेंगे। लेकिन यदि आपने ही यह मान लिया कि आपसे कुछ नहीं होने वाला और आपको कुछ भी नहीं मिलने वाला, तो फिर क्या आपका भला हो पाएगा?

यह तो सभी जानते हैं कि जीवन में कोई व्यक्ति बड़ा बनकर पैदा नहीं होता है, वह तो अपने कर्मों से बड़ा बनता है। यह दुनिया वीर, कर्मवीरों, कर्मयोगियों के लिए है, वैसे लोगों की नहीं जो अपने सिर पर हाथ रखकर बैठे हों, जब भाग्य चाहेगा, तभी हम कुछ कर पाएंगे। ऐसी बात नहीं होनी चाहिए। क्योंकि हमें तो अपने भाग्य को बनाना पड़ता है, अपने कर्मों से उसे बदलना पड़ता है, अपने हाथ की लकीरों को बदलना पड़ता है। कहा जाता है कि नेपोलियन को जब यह पता चला कि उसके हाथ में सफलता की रेखा है ही नहीं, तब उसने अपनी हथेली में उस सफलता की रेखा को चाकू से खुरच कर बना डाला। फिर उसने कहा कि "मेरे शब्दकोश में असंभव जैसा कोई शब्द नहीं है।"

लेकिन तुम्हारे सारे के सारे शब्दकोशों में तो असंभव, हारा हुआ, नहीं होने वाले जैसे शब्द भरे पड़े हैं। तुम तो इस पृथ्वी तक को कलंकित कर रहे हो, उस परमात्मा को भी, जिसने तुम्हें वीरों की भांति जीने के लिए पैदा किया है, तुम्हें स्वाभिमानी बनने हेतु इतना अच्छा जीवन दिया, तुम तो गौरवपूर्ण व्यक्तित्व के स्वामी हो, तुम तो

शक्तिशाली हो और तुम ही तो ब्रह्मांड हो। जब तुम्हें ऋषि कहते हैं कि **अहम् ब्रह्मास्मि**। अर्थात् *मैं ब्रह्म हूं* तो फिर ब्रह्म भी क्या अपंग और अपाहिज होता है। ऐसा तो संभव ही नहीं है। कहा भी गया है कि **'खुदी को कर बुलंद इतना कि हर तकदीर से पहले, खुदा तुझसे पूछे कि बता तेरी रजा क्या है?'**

जीवन को सुखी बनाने के उपाय

प्रत्येक व्यक्ति का जीवन एक बहुत बड़ा महोत्सव है, क्योंकि जीवन बहुत ही मूल्यवान है। परमात्मा ने जब मनुष्य को जीवन दिया तो उसने सोचा कि मनुष्य अपने जीवन को सुख और शांति से बिताएगा। मनुष्य के जीवन में अनन्त संभावनाएं होती हैं। मनुष्य अगर चाहे तो वह देवता की तरह भी जी सकता है और दानव की तरह भी।

इसलिए बचपन में किसी को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि यह देवता बनेगा या दानव। हमारे संतों ने और अब तो विज्ञान ने भी यह मान लिया है कि मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही बन जाता है। बचपन में बच्चे सोच नहीं सकते इसलिए यह काम माता-पिता व शिक्षकों को करना पड़ता है। अगर शुरू में बच्चों को आशावादी बनाया जाए तो वे पनपने लगते हैं। जब मनुष्य अपने विचार से संकल्प कर लेता है कि मुझे आशावादी बनना है जीवन से प्रेम करना है तो निराशा के कीटाणु स्वत: मरने लगते हैं। जो लोग आशावादी बनने का संकल्प नहीं करते वे निराशावादी बन जाते हैं। इसलिए हमेशा आशावादी बनने का संकल्प करना चाहिए। कभी भी हताश, निराश और चिंताग्रस्त नहीं रहना चाहिए। एक तरफ आशावादी विचार जीवन शक्ति को बढ़ाता है, तो निराशावादी विचार जीवन शक्ति को नष्ट करता है। आजकल लोग चिंताग्रस्त बनकर जीवन को नष्ट कर रहे हैं। अगर मन में स्वस्थ रहने और सुन्दर जीवन जीने का विचार आ जाए तो जीवन को सुखी बनाया जा सकता है।

मेरे आश्रम में हजारों लोग आते हैं उन्हें मैं परामर्श देता हूं कि अगर आप जीवन में सुखी रहना चाहते हैं बुढ़ापे से बचना चाहते हैं, मरना नहीं चाहते तो जीवन को आनन्दपूर्वक जीने का संकल्प करें। क्योंकि आप जीना चाहते हैं, तो अवश्य जीएंगे। जो मरना चाहता है, वही मरता

है, जो बीमार होना चाहता है, वही बीमार होता है, जो दु:खी होना चाहता है, गरीब और दरिद्र होना चाहता है, वही बनता है। इसलिए अपनी सोच को हमेशा आशावादी बनाकर रखना चाहिए। मैंने अनुभव किया है कि अगर प्रात:काल का समय प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत हो, तो दिनभर मनुष्य प्रसन्न रह सकता है। अगर सुबह में मनुष्य संकल्प कर ले, कि आज दिनभर मुझे खुश रहना है, तो वह खुश रहेगा। इसलिए प्रयास यह करना चाहिए कि सुबह के 2 घंटे मौन का व्रत लें लें, तो किसी से झगड़ा नहीं होगा। किसी से झगड़ा होना, विवाद होना यह सब अहंकार की टकराहट है। जो लोग यह समझते हैं, मेरी बात वह नहीं मानता है, इसलिए मैं उसे दंड दूंगा। यहीं से तनाव और चिंता शुरू होती है। जो लोग अहंकारी होते हैं, वह समझते हैं कि दुनिया के सभी लोग गुलाम हैं, वैसे ही लोग दु:खी रहते हैं। पत्नी, बच्चे, माता-पिता जो कोई भी, वैसे लोगों से अहंकार से टकराते हैं, तो वहीं से विवाद शुरू हो जाता है। तुम्हारे जीवन में अशांति इसलिए होती है, कि तुम समझते हो कि दुनिया के सभी लोग तुम्हारे आदेश का पालन क्यों नहीं करते। यही तुम्हारे दु:ख का कारण है। अगर दु:खी नहीं बनना चाहते तो आशा करना छोड़ दो। अगर तुम्हारे आशा करने पर तुम्हारी आशा पूरी नहीं होने पर तुम स्वयं दु:खी हो जाओगे। इसलिए किसी से भी आशा नहीं करनी चाहिए। दु:खी होने का दूसरा कारण है किसी से सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयास करना। सच पूछा जाए तो किसी से सहानुभूति पाना मानसिक अपराध है। क्योंकि सहानुभूति छोटा आदमी बड़ों से पाता है। ध्यान रखो, अगर कोई दूसरा आदमी बड़ा हो तो तुम छोटे नहीं हो। तुम्हारा अपना स्वाभिमान है, अपनी प्रतिष्ठा और मर्यादा है उसकी रक्षा करो। कभी कोई ऐसा काम न करो जिसमें दूसरों की नजर में तुम्हें शर्मिंदा होना पड़े। तो आइए जीवन जीने की विधि को अपने जीवन में निष्ठापूर्वक उतारने का संकल्प लें। इसके लिए निम्न उपाय करें–

1. प्रात:काल एक घंटा मौन रहो। इस बीच पूजा-पाठ, ध्यान करो।
2. पूजाकाल में प्रसन्नतापूर्वक गीत गाओ। अपने शरीर की स्वस्थता के लिए परमात्मा से प्रार्थना करो।
3. मन में ऐसा भाव करो कि सूर्य एवं अन्य ग्रह नक्षत्रों से प्रकाश की किरण निकलकर तुम्हारे शरीर के अंग-अंग में प्रवेश कर रही है।

संभव हो तो श्वासन में लेटकर कल्पना करो कि तुम्हारे शरीर के कण-कण में परमात्म तत्त्व प्रवेश कर रहा है। तुम निष्क्रिय पड़े हुए हो। इस बोध को गहराई से शरीर में धारण करो, ऐसा करने से शरीर के सभी अंग स्वस्थ होने लगेंगे। एक सप्ताह के प्रयास से परिवर्तन दिखने लगेगा। हमारे आश्रम में ऐसा प्रयास कराया जाता है।

4. भोजन सादा और सुपाच्य करें। मांस-मदिरा का सेवन न करें क्योंकि ये वस्तुएं तुम्हारे शरीर की पाचन क्रिया के लिए उपयुक्त नहीं हैं, कठोर चीज को चबा नहीं सकती। इसलिए चावल, दाल और सब्जी को खूब गला लेते हैं, तब खाते हैं। भोजन समय पर करें। भोजन करने के आधा घंटा पश्चात् पानी पीएं। फल का प्रयोग अधिक करें, दूध का सेवन रात्रि भोजन के बाद अवश्य करें। भोजन हमेशा गर्म हो, ठंडा और बासी भोजन वर्जित है। घड़े का पानी पीएं, फ्रीज का पानी स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त नहीं है। यह वैज्ञानिक सत्य है।
5. व्यायाम शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक है। व्यायाम से शरीर में ऊर्जा बनती है और एक-एक अंग में ऊर्जा प्रवाह होने लगता है। दूसरी ओर व्यायाम से प्राण आयु बढ़ती है। प्राणायाम करने वाले की हमेशा ऊर्जा बढ़ती रहती है। यूं तो प्राणायाम अनेक प्रकार से होते हैं, जो शरीर के विभिन्न अंगों में प्राणवायु बढ़ती है। लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण है, 1. सूर्यभेदन प्राणायाम, 2. चन्द्रसेवन प्राणायाम। सूर्यभेदन प्राणायाम से सूर्य की ऊर्जा शरीर में प्रवेश करती है और शरीर स्वस्थ रहता है। चन्द्रसेवन प्राणायाम से चन्द्रमा से अमृत तत्त्व की प्राप्ति होती है जिससे शरीर में जो पांच तत्त्व हैं उसका अनुपात बना रहता है। जब कभी हमारे शरीर में इन पांच तत्त्वों की कमी हो जाती है तो हम बीमार पड़ जाते हैं। इसलिए सूर्यभेदन प्राणायाम और चन्द्रसेवन प्राणायाम का हमारे जीवन में बहुत अधिक महत्त्व है।

1. सूर्यभेदन प्राणायाम, 2. चन्द्रसेवन प्राणायाम। सूर्यभेदन प्राणायाम से सूर्य की ऊर्जा शरीर में प्रवेश करता है और शरीर स्वस्थ रहता है। चन्द्रसेवन प्राणायाम से चन्द्रमा से अमृत तत्त्व की प्राप्ति होती है जिससे शरीर में जो पाँच तत्त्व हैं उसका अनुपात बना रहता है। जब कभी हमारे

शरीर में इन पांच तत्त्वों की कमी हो जाती है तो हम बीमार पड़ जाते हैं। इसलिए **सूर्यभेदन प्राणायाम** और **चन्द्रसेवन प्राणायाम** का हमारे जीवन में बहुत अधिक महत्त्व है।

6. प्रात:काल के मौन के पश्चात् दिनभर अपना कार्य-व्यापार करना चाहिए। शाम में जब घर आए तो बाहर की सारी चिंता बाहर छोड़कर आए। घर में पत्नी, बच्चों के साथ खेले, मनोरंजन करे। घर में कभी भी तनाव का वातावरण न बनाए। परिवार के सभी सदस्य एक-दूसरे का आदर करें। भोजन साथ-साथ करें और घर की समस्याओं पर विचार करें। पत्नी और बच्चों की समस्याओं को ध्यान से सुनें और उसका निराकरण करें। क्योंकि किसी की समस्याओं को न सुनना मूर्खता है इससे परिवार में असंतोष बढ़ता है। प्रत्येक समस्या का समाधान सब मिलकर करें। ऐसा करने से परिवार में कभी कोई अशांति नहीं होती है। उन्हीं लोगों का परिवार टूटता है जिस परिवार में घमंडी लोग रहते हैं। घमंडी व्यक्ति अपने परिवार का तो नाश करते ही हैं, परिवार के अन्य लोगों को भी सुख से जीने नहीं देते, इसलिए सुखी परिवार वही है जिस परिवार में प्रेम हो, जहां एक-दूसरे की इज्जत हो। अगर तुम स्वयं सुखी रहना चाहते हो तो उसका एक रास्ता है कि एक-दूसरे की इज्जत करना सीखो, किसी को नीचा दिखाने की कोशिश करें, अपशब्द बोलना, चिल्लाकर बोलना असभ्य आचरण माना जाता है।

आजकल लोग हमेशा दूसरों के कारण दु:खी रहते हैं। वैसे ही लोगों के कारण आज घर-घर में इतनी अशांति है। माता-पिता अगर कलह करते हों तो उस घर में बच्चे भी रहना नहीं चाहते हैं। इसलिए जो विवेकशील माता-पिता हैं वे अपने बच्चों से प्रेमपूर्वक बात करते हैं, उनकी समस्याओं को सुलझाते हैं और हमेशा अच्छा व्यवहार करने की प्रेरणा देते हैं। प्राय: देखा जाता है कि समाज में वही बच्चे बिगड़ते हैं जिनके माता-पिता उनका ध्यान नहीं देते। बच्चों को घर की छोटी-बड़ी समस्याओं से अवगत करते रहते हैं तभी बच्चे परिवार से जुड़ पाते हैं।

7. अगर तुम सुखी रहना चाहते हो तो हमेशा प्रसन्न रहो, मुस्कराते रहो। उदास रहने वाला व्यक्ति कभी स्वस्थ नहीं रहता और वह अल्प

आयु वाला होता है। उदासी एक प्रकार की बीमारी है उदास व्यक्ति के साथ रहोगे तो वह तुम्हें भी उदास बना देगा। उदास रहना, कुरुप रहना, गंदी आदतों का सेवन करना मनुष्य का दुर्गुण है।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि एक तरफ मनुष्य सुखी रहना चाहता है और दूसरी तरफ बुरे नशे का सेवन भी करता है किसी भी प्रकार के नशे का सेवन सीधे मृत्यु का आमंत्रण है। अगर तुम बूढ़े होना नहीं चाहते तो नशे का सेवन बंद करो। जो व्यक्ति नशे का सेवन करता है वह हमेशा बीमार रहता है और अल्पायु होता है। आज देश में लाखों लोग ऐसे हैं जो सौ वर्षों से ऊपर की आयु भोग रहे हैं और स्वस्थ हैं।

•

31

कर्म करें, फल की न सोचें

हम सत्संगों में इसलिए जाते हैं कि हमें शक्ति मिले, हमें मोक्ष की प्राप्ति हो, हमें धर्म की प्राप्ति हो, लेकिन ऐसा कुछ हो नहीं पाता। क्योंकि सत्संग में आना एक बात होती है और शांति, मोक्ष व ईश्वर को पाना दूसरी बात। आप सत्संग में आएं, धर्म कार्यों में हिस्सा लें और पूरे मनोयोगपूर्वक आप इसमें शामिल नहीं हों तो फिर आपकी यह उपस्थिति बेकार है। मुझे एक घटना याद है। दो मित्र थे, दोनों के पास काफी खाली समय था। उन्होंने सोचा कि यह समय किसी जगह पर साथ जाकर गुजारते हैं। तो बात आई कि कहां जाएं? पहले मित्र ने कहा कि "चलो फलां जगह सत्संग हो रहा है, कुछ अच्छे सद्‌वचन सुनने को मिलेंगे, वहीं चलते हैं।" दूसरे मित्र ने कहा, "क्या करेंगे हम वहां जाकर? अपना समय ही बर्बाद होगा, चलो और कहीं चलते हैं।" इस पर पहला मित्र अड़ गया कि "नहीं, मुझे तो सत्संग में ही जाना है" और वह चला गया और दूसरे मित्र कोठे पर जाकर नाच-मुजरे से आनंदित होने लगा। कुछ पल के बाद उसके दिल में आया कि मैं कहां आ गया! मेरा वह मित्र कितना अच्छा था, जो सत्संग में अच्छे-अच्छे सद्‌वचनों से लाभान्वित हो रहा होगा। परन्तु पहला मित्र, जो सत्संग में बैठा था, सोचने लगा कि, यह मैं कहां आ गया? मेरा वह मित्र कितने आनन्द में होगा, कोठे पर बैठकर नाच-गाने के मजे लूट रहा होगा। मैं तो यहां आकर फंस गया।

इस कहानी के अन्त में जब मैंने विचार किया तो ऐसा अहसास हुआ कि वह मित्र, जिसने कोठे पर जाने के उपरांत भी सत्संग की कामना की, वह व्यक्ति सत्संग में बैठा था और जो व्यक्ति सत्संग में बैठकर भी अपने मन को कहीं अन्यत्र उलझाए हुए था, उसका जीवन तो निरर्थक हो गया। तो हमारा काम यह होना चाहिए कि हम सदैव कर्म की ओर प्रेरित हों। हम कर्म की कामना और कर्म करते रहें, हमारे कर्मों का फल क्या और कैसा होगा, हम इसकी कामना नहीं करें।

•

32

कर्त्तव्य-विमुख न हों

हमारा देश एक धर्म प्रधान देश है। यही वजह है कि यहां युगों से धर्म की धारा बहती रही है और यहां के धर्मप्राण लोग इसमें डुबकी लगाकर अपना इहलोक व परलोक सुधारते रहे हैं। यदि ध्यान से देखें तो प्राचीनकाल से लेकर अब तक यहां के धर्मप्राण लोगों ने अपने संपूर्ण जीवन को आध्यात्मिक दृष्टि से ही समझने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए आप किसी शहरी श्रमिक को श्रम करते हुए देखें या गांव में हल चलाते हुए किसी हलवाहे को और आप उनसे बात करें तो वह भी बस यही कहते हुए मिलेंगे कि इस जीवन का क्या ठिकाना? आज है, कल नहीं, फिर काहे की चिंता आदि। इस प्रकार यदि देखें तो यहां के लोगों के मन में आध्यात्मिक दृष्टि इस कदर समा चुकी है कि वह बचपन से लेकर जवानी तक और जवानी से लेकर बुढ़ापे तक केवल अध्यात्म की ही बातें करते रहते हैं। ऐसा करके वह अपना इहलोक व परलोक दोनों सुधार लेना चाहते हैं।

आगे बढ़ने से पहले एक छोटी-सी कहानी कहना चाहूंगा, यह किसी छोटे-से गांव की बात है। एक संत वहां के मंदिर में बैठकर पूजा-अर्चना कर रहे थे। वह साधना में इस कदर लीन हो गए कि शाम हो गई और अंधेरा छाने लगा, लेकिन उन्हें पता ही नहीं चला। तभी एक छोटा-सा बच्चा उस मंदिर में आया। वहां अंधेरा देख उस बच्चे ने अपनी जेब से माचिस निकालकर मंदिर में रखे दीपक को जला दिया। इस प्रकार वहां प्रकाश फैल गया और प्रकाश फैलते ही संत का ध्यान

भी भंग हो गया। मंदिर में प्रकाश देखकर संत ने वहीं मौजूद बच्चे से पूछा, "बेटा! यह बताओ कि यहां प्रकाश कहां से आ गया?" बच्चे को इस प्रश्न का कोई उत्तर समझ में नहीं आया, अतः उसने फूंक मारकर दीपक को बुझा लिया और संत से कहा, "हे महात्मन! वह प्रकाश जहां से आया था, वहीं चला गया।"

संत अवाक रह गए और उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि यह छोटा-सा बच्चा भी मानता है कि सृष्टि में उस परमात्मा की ही शक्ति है, जिसने इस सृष्टि की रचना की है और उसी के इशारे पर यह संपूर्ण सृष्टि नाच रही है। यह ब्रह्मांड नाच रहा है। हमारा सौरमंडल तो बस इसका एक छोटा-सा हिस्सा भर है। सौरमंडल के सभी ग्रह सूर्य का चक्कर लगाते हैं। इस प्रकार हमारे सौरमंडल में एक सूर्य है। वैज्ञानिकों का मानना है कि ब्रह्मांड में अभी सैकड़ों सूर्य शेष बचे हुए हैं। अब कल्पना कीजिए कि यदि एक सूर्य से संपूर्ण पृथ्वी इतनी प्रकाशमान है, तो फिर बाकी के सैकड़ों सूर्यों से इस प्रकृति की क्या लीला होगी? बहरहाल, मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि उस दीपक के प्रकाश की तरह आप सब भी वहीं वापस चले जाएंगे, जहां से आए हैं, यह तय है फिर इतनी हाय-हाय क्यों? प्रभु का स्मरण करते हुए अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करें, आपके लिए यही सत्य मार्ग है।

•

33

कर्त्तव्यशील पाता है भाग्य का साथ

एक संदर्भ आया है–रामचरित मानस के 'सुन्दरकांड' में। रावण अपने दरबार में बैठा हुआ है; ठीक उसी समय लक्ष्मण का पत्र लेकर दूत शूक आता है। पहले तो लक्ष्मण का पत्र पढ़कर रावण भयभीत होता है, फिर वह अभिमान से ये दो पंक्तियाँ कहता है–

भूमि परा कर गहत अकासा।
लघु तापस कर बाग विलासा।।

अर्थात् *जो व्यक्ति भूमि पर पड़ा हो, जो जमीन पर लेटा हुआ हो और आकाश को अपने हाथों से छूना चाहता हो, वह मूर्ख नहीं तो और क्या है?* जो कर्म नहीं करना जानता और आलसी बनकर अपना जीवन व्यतीत कर रहा है, वह तो अपने समाज और घर का भार बना हुआ है। वह सोचने का काम करता है, वह कागज और कलम पर तो बहुत बड़ी-बड़ी प्लानिंग कर लिया करता है, पर अपने कर्म से पीछे हट जाता है, ऐसा व्यक्ति कभी भी सफल नहीं हो सकता है। हमारे जीवन में या हमारे आस-पास अनेक ऐसे व्यक्ति मिल जाएंगे, जो कागज पर तो पूरी सड़क या महल बना लेंगे, पर वे अपने शरीर को जरा भी हिलाने-डुलाने का कार्य नहीं करेंगे। ऐसे लोगों के लिए ही गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं-

दैव-दैव आलसी पुकारा।।

अर्थात् *जितने भी आलसी प्रवृत्ति के लोग हैं, वे सदैव भाग्य भरोसे ही रहते हैं।* भाग्य और कर्त्तव्य, प्राचीनकाल से ही इन विषयों पर मतभेद

चला आ रहा है। कुछ लोगों की शंका होती है कि भाग्य बड़ा होता है, अथवा कर्त्तव्य? मेरे ख्याल से तो यह प्रश्न बिल्कुल ही मूर्खतापूर्ण है, क्योंकि भाग्य तो उसी का साथ देता है, जो कर्त्तव्यशील हैं और कर्त्तव्य भी उसी को सफलता दिलाता है, जिसका भाग्य साथ देता है। दोनों एक-दूसरे के सम्यक पूरक हैं।

•

34

छोड़ दूसरे की चिन्ता, पहले अपना कल्याण कर

सुनने में अटपटा लगता है कि मैं तुम्हें स्वार्थी बना रहा हूं। दरअसल लाखों वर्षों से तुम्हारे मन में यह बात बैठा दी गई है कि परोपकार करो। परोपकार करना अच्छी बात है, इसमें जो भाव है, वह उत्तम है। लेकिन हमारी अज्ञानता ने इस भाव को ही नष्ट कर दिया है। मैं तो स्वयं परोपकार के पक्ष में हूँ लेकिन परोपकार तभी अच्छा लगता है जब हम स्वयं अपना उपकार करने में समर्थ हो जाते हैं। जिस नदी का पानी सूख गया हो, उस नदी से सिंचाई कैसे हो सकती है? जो स्वयं बीमार हो, वह दूसरों की सहायता कैसे कर सकता है? कोई बीमार डॉक्टर किसी का इलाज कैसे कर सकता है? सड़क पर अगर कोई गिर गया हो तो उसकी सहायता तुम तभी कर सकते हो, जब तुम खड़े होने में समर्थ हो। इसलिए परोपकार करना मानव धर्म है, लेकिन यह तभी संभव है, जब तुम परोपकार करने में समर्थ हो।

जब मैं तुम्हें अपना कल्याण करने को कहता हूं तो मेरा मन्तव्य होता है कि पहले तुम स्वयं समर्थ बन जाओ। तुम इतना समर्थ बन जाओ कि तुम स्वयं अपना कल्याण कर सको और तुम्हारे पास जो बची हुई ऊर्जा हो, उससे दूसरे का भी कल्याण कर सको। इसलिए आत्मकल्याण की बात मैं कहता हूं। सम्भव है जो लोग रूढ़िगत विचारों में जी रहे हों, अंध परम्पराओं में भ्रमित हो रहे हों, उन्हें यह

बात ऊटपटांग लगेगी। वे कह सकते हैं कि यह कैसा संत है जो मनुष्य को स्वार्थी बनने को कह रहे हैं।

दरअसल संसार में कितने लोग हैं जो केवल दूसरों के उपकार की बात करते हैं। कहा अवश्य जाता है कि मनुष्य को परोपकार करना चाहिए लेकिन ऐसा व्यक्ति खोजने पर भी नहीं मिलता जो अपना उपकार नहीं करता हो और केवल दूसरों का उपकार करता हो। यह भी कहा जाता है कि वह व्यक्ति बहुत परोपकारी है, उसके पास अगर एक रोटी है तो वह आधी रोटी दूसरे को दे देता है। इस कारण उसे परोपकारी मान लिया जाता है। लेकिन उस परोपकारी व्यक्ति ने किसी दूसरे को आधी रोटी ही क्यों दी, पूरी क्यों नहीं दे दी? मतलब यह कि आधी रोटी देकर तुम अपने लिए आधी रोटी सुरक्षित रखना चाहते हो। होना तो यह चाहिए कि तुमने आधी रोटी दूसरे को दी और जो आधी रोटी बच गई उसे भी किसी तीसरे को दे देते, क्योंकि तीसरे को भी रोटी की आवश्यकता है। चौथा और पांचवा भी भूखा है। लेकिन तुमने केवल दूसरे को दी, शेष अपने लिए रख लिए। यहां तुम्हें अपनी चिंता भी बनी हुई है। यही तो मैं कह रहा हूं। तुम अपनी चिन्ता क्यों नहीं करते। तुम्हें भी भूख लगती है, तुम्हें भी रोटी चाहिए, जहां अनेक लोग भूखे हों, वहां किसी दूसरे को आधी रोटी देकर तुम क्या साबित करना चाहते हो? दूसरा प्रश्न है कि जिस व्यक्ति को तुमने आधी रोटी दी, उसे भी तो परोपकार करना चाहिए। होना तो यह चाहिए कि वह दूसरा व्यक्ति भी अपनी आधी रोटी में से किसी और को दे। क्योंकि उसे भी परोपकार करना है। परोपकार केवल तुम्हीं को नहीं करना है, दूसरों को भी तो परोपकार करना है। इस क्रम को कैसे रोकोगे? मान लो कि दो व्यक्ति साथ-साथ खाने के लिए बैठे हों, दोनों के सामने भोजन है, वहां भी तो परोपकार करना है। एक व्यक्ति हाथ में रोटी लेता है और दूसरे के मुंह में रख देता है, अब दूसरा भी अपनी रोटी पहले को खिला देता है। क्योंकि दोनों को परोपकार करना है। लेकिन यह तो मूर्खतापूर्ण परोपकार हुआ। अगर दोनों अपनी-अपनी रोटी खा लेते हैं तो क्या तुम उन्हें स्वार्थी कहोगे? यह जो रूढ़िगत व्याख्या है, इसी को बदलने के लिए मैं आत्मकल्याण की अवधारणा को तुम्हारे मन में बैठाना चाहता हूं।

"कल्याण" शब्द का अर्थ है–*भलाई*! यह भलाई अपनी हो या दूसरों की, भलाई की सेहत पर इसका कोई असर नहीं पड़ता। नदी के बहते पानी से पशु-पक्षी सभी जब अपनी प्यास बुझाते हैं। यह भाव तो ठीक है, नदी परोपकार कर रही है। लेकिन दूसरी ओर नदी स्वयं भी तो तृप्त हो रही है। जिस नदी में पानी न हो, वह दूसरे को पानी कैसे पिला सकती है? इसलिए दूसरों की प्यास बुझाने के लिए नदी में पानी होना आवश्यक है। अतः मैं बार-बार कहता हूं कि जब तुम्हारी नदी में पानी हो, तभी तुम दूसरों को पानी पिलाकर उपकार कर सकते हो।

•

35

जीवन का आधारभूत लक्ष्य है खुशी

आप स्वर्ग इसलिए जाना चाहते हैं क्योंकि आपसे कहा गया है कि वहां खुशियां ही खुशियां हैं। यदि आपके जीवन में अथक प्रयासों के बाद भी खुशी नहीं है, तो इसका अर्थ है कि आपने जीवन के आधार तत्त्वों की उपेक्षा की है। बात चाहे संबंधों की प्रगाढ़ता की हो या परिस्थिति विशेष से निबटने में कार्यकुशलता की, आप बेहतर तभी हो सकते हैं, जब खुश हों। खुशी के अभाव में चाहकर भी आप समृद्ध जीवन की कल्पना नहीं कर सकते। खुश रहना या नहीं रहना आप पर निर्भर है। अधिकांश लोग अपने जीवन में प्रसन्नता का ही दामन थामते हैं। उनकी धारणा होती है कि अप्रसन्न होकर ही जीवन में कुछ पाया जा सकता है। जीवन में चाहे आप जो भी पा लें, यह मायने नहीं रखता। यदि आप खुश हैं, कुछ और नहीं भी पाते हैं, तो आपका क्या बिगड़ जाता है? खुश रहना आपका स्वभाव है। अतः आप खुश रहना चाहते हैं और आपका प्रत्येक कार्य खुशियों का अनुसरण करता है। कुछ लोग अच्छा कपड़ा पहनना चाहते हैं। कुछ अपार संपत्ति अर्जित करना चाहते हैं, क्योंकि यह उन्हें खुशी प्रदान करता है।

जब आप छोटे थे तो खुश थे, लेकिन जीवन यात्रा में आपने खुशियों को कहीं खो दिया, क्योंकि आपका शरीर और मन आपकी पहचान आसपास की चीजों से जोड़कर देखने लगा। जिसे आप मन कहते हैं, वह आपकी सामाजिक परिस्थितियों से संग्रहित उपादान मात्र है। आप जैसे समाज में पले-बढ़े, आपके मन-मस्तिष्क की अवधारणा वैसी ही

होगी। आपके मन-मस्तिष्क में भी वही है, जो आपने समाज में देखा है। आप इन चीजों से इतने गहन रूप में जुड़ गए हैं कि यह आपकी परेशानियों का मूल कारण बन गया है। यह शरीर आपका नहीं है, इसे तो आपने पृथ्वी पर आकर पाया है। आप तो अपने सूक्ष्म शरीर के साथ जन्मे थे, जिसे आपके माता-पिता ने प्रदान किया था। फिर पृथ्वी पर उपलब्ध खाद्य पदार्थों न तो आपका था और न है, को खाकर आप बड़े हुए। आपको कुछ समय के लिए इसका उपभोग करना है, तो इसका उपभोग करें और खुश रहें।

यदि आप इन्हें अपना समझने लगेंगे तो आपको दु:ख तो होगा। आपके दु:खों का कारण यही है कि आपने खुद को झूठ के आधार पर स्थापित किया है। आध्यात्मिक प्रक्रियाओं का उद्देश्य आपको वास्तविकता से अवगत कराना है। यदि आप वास्तविकता की खोज सिर्फ कल्पना से करेंगे तो उजाड़-बियाबान के अलावा कुछ नहीं मिलेगा। यदि आप यह सोचना शुरू करें कि मैं कौन हूं, तो कोई आपको देव-पुत्र, दानव-पुत्र या कुछ और कहेगा। इस विषय में जितनी मुंह उतनी बातें हो सकती हैं। यदि आप कुछ करना चाहें तो खुद को उन चीजों से हटाना शुरू कर दें, जो आपका नहीं है। एक समय ऐसा आएगा जब आपके पास हटाने के लिए कुछ नहीं रहेगा। जब आप इस बिंदु पर पहुंच जाएंगे तो पाएंगे कि इस जीवन में उदासी का कोई कारण नहीं है। यदि कुछ है, तो चारों तरफ व्याप्त खुशी ही है। इस प्रकार खुशी ही जीवन का आधारभूत लक्ष्य है।

•

36

हँसो और स्वस्थ रहो

हमारे मनुष्य के स्वस्थ होने की पहली पहचान है-हंसी। हंसने वाला व्यक्ति जीवन में स्वस्थ व प्रसन्न रहते हुए अपने जीवन को सुखी बना लेता है। हंसना मानव जीवन के लिए वरदान है, क्योंकि कोई अन्य जीव हंस नहीं सकता। यह मनुष्य को ही वरदान में मिला है। ऐसा माना जाता है कि परमात्मा ने मनुष्य को हंसने की शक्ति इसलिए दी है, क्योंकि वह अपनी विकृतियों के जाल में बुरी तरह फंसा रहने वाला प्राणी है। उसका सारा जीवन उसके खुद के द्वारा निर्मित कुप्रवृत्तियों के विष से विषाक्त बना रहता है। उसके जीवन की सुख, शांति व प्रसन्नता सब नष्ट हो जाती है। मनुष्य स्वयं अपने ही हाथों अपने शरीर में विकृति पैदा करता है और फिर लहुलुहान होकर कराहने लगता है।

मानव जीवन में जो दु:ख है, उसका सृजन उसने खुद किया है, क्योंकि दु:ख कोई किसी को नहीं दे सकता। सच तो यह है कि न तो कोई किसी को दु:ख दे सकता है और न ही सुख। हम स्वयं खुद को दु:ख या सुख देते हैं। परमात्मा ने दु:खों से मुक्ति के लिए मनुष्य को हंसने की शक्ति दी है, लेकिन आश्चर्य है कि आज कोई भी हंसने की इस शक्ति का उपयोग नहीं कर रहा है। प्रत्येक व्यक्ति दु:ख, चिंता, निराशा व आंसू का उपयोग करता है। ऐसे लोग शायद यह समझते हैं कि चिंतित होने से दूसरों का ध्यान उनकी ओर खिंचेगा। ऐसे लोग आत्मपीड़क होते हैं। दूसरी ओर कुछ हंसने वाले लोग भी होते हैं, जो मुस्कुराते हुए अपना दिन शुरू करते हैं और मुस्कुराते हुए ही सो जाते

हैं। दरअसल, हंसना एक व्यायाम है। हंसने से जीवनी शक्ति बढ़ती है। मन की कुंठाएं टूटती हैं और जीवन में जो निराशा के बीज होते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। अतः हंसते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि हंसी के फव्वारे जब भी छूटें तो नाभि के निकट से ही छूटें। एकांत में यदि प्रतिदिन नाभि के निकट से हंसी के फव्वारे को ऊपर की ओर छोड़ा जाए, तो पेट के सारे विकार नष्ट हो जाते हैं। पाचन शक्ति बढ़ जाती है। पेट के सारे अंगों में स्पंदन पैदा हो जाती है, जिससे पेट में यदि कोई विकार हो तो वह नष्ट हो जाता है।

प्रतिदिन ठहाके लगाने वाले कभी पेट की बीमारी से पीड़ित नहीं होते। इसका दूसरा लाभ यह है कि यदि मन में कहीं दुःख के बादल छाए हैं, निराशा का धुआं भरा हुआ है अथवा मन संशय या काम, क्रोध, लोभ व मोह के वेग से ग्रस्त रहता है, तो हंसी के एक फव्वारे से सारे मनोविकार नष्ट हो जाते हैं और एक क्षण में ही प्रसन्नता का बोध होने लगता है। स्वाभिमान जग जाता है, हीन भावना नष्ट हो जाती है और शरीर के अंग-अंग से आशा की किरण फूटने लगती है। हंसने वाला व्यक्ति जल्दी किसी बीमारी का शिकार नहीं होता। स्वस्थ रहता है, जबकि क्रोधी व्यक्ति दुबला-पतला, पिलपिला सा दिखता है। दूसरी ओर हंसमुख व्यक्ति अपने मोहक व्यक्तित्व के कारण सबका प्रिय होता है। वह जब किसी से मिलता है तो लोग उसका अभिनंदन करते हैं। उसे आदर से बैठाते हैं। प्रसन्न रहने, मुस्कुराने और अपनी बातों से वातावरण को आनंदपूर्ण बनाने के कारण ही लोग उसे पसंद करते हैं। हंसना प्रकृति का बड़ा ही मोहक वरदान है। हमें इसका भरपूर उपयोग करना चाहिए।

•

37

जीवन आनन्दमय कैसे बने?

प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में सुख, शांति और समृद्धि चाहता है। मन में यह भाव होता है कि वह जीवन भर स्वस्थ, आनन्दित होकर दीर्घायु बनें और जीवन के सभी रसों का भोग करें। उसे इतना सुख मिले कि वह हमेशा सुखी रहकर अपने परिवार के साथ आनन्दपूर्वक धन, वैभव से युक्त होकर जीवन व्यतीत करता रहे। लेकिन ऐसा होता नहीं है। मनुष्य के समान दु:खी जीव को खोजना मुश्किल है। आज का मनुष्य इतना दु:खी, अशांत और तनाव में रह रहा है कि उसका जीवन संकटपूर्ण बन गया है। आखिर क्या कारण है कि परमात्मा की संतान होकर भी आज मनुष्य इतना दु:खी क्यों है?

इन तमाम विषयों पर मैंने समय-समय पर अपने प्रवचनों में विस्तार से चर्चा की है। देश-विदेश में लाखों लोगों ने इन प्रवचनों से अपने जीवन को रूपांतरित किया है। इसलिए मैंने सोचा कि उन बिन्दुओं की चर्चा यहां संक्षेप में कर दी जाए। ताकि लोगों को जीवन जीने की विधि का ज्ञान हो जाए। उनमें कुछ प्रमुख हैं-

1. जीवन को महोत्सव बनाने का प्रयास करें।
2. हमेशा आशावादी बने रहें। केवल अच्छी बातें ही सोचें। बुरे विचारों को मन में न आने दें। हमेशा प्रसन्न रहें और छोटी-मोटी घटनाओं से विचलित न हों।
3. प्रात:काल का एक घंटा अपने लिए जीएं। इस एक घंटे में कोई तनाव वाली बात टी.वी., अखबार और बातूनी मित्रों से बहस करने से बचें।

4. प्रात:काल किसी भी हालत में क्रोध न करें। क्रोध करने से आपका सारा दिन खराब हो जाएगा।
5. किसी की छोटी-छोटी भूल पर ध्यान न दें।
6. परिवार के सदस्यों से मीठी वाणी में बात करें। कड़े शब्दों में बोलना, चिल्लाना, डांटना, अपशब्द का प्रयोग करना आपको हृदय आघात पैदा कर सकता है।
7. प्रात:काल गीत गाएं, गुनगुनाए, हंसे, मजाक करें और मनोरंजन करे।
8. प्रात:काल व्यायाम और प्राणायाम अवश्य करें। व्यायाम से शरीर के अंग स्वस्थ होते हैं और प्राणायाम से आपकी जीवनी शक्ति बढ़ती है।
9. प्रात:काल सूर्यभेदन प्राणायाम करने से शरीर में प्राण ऊर्जा बढ़ती है और रात्रि में चन्द्रसेवन प्राणायाम करने से शरीर रोग मुक्त बन जाएगा। चन्द्रमा को देखना बहुत लाभकारी है।
10. आपका मस्तिष्क नक्षत्रों से जुड़ गया ऐसा विचार मन में पैदा करें। नक्षत्रों से एक स्वर्णिम प्रकाश आपके मस्तिष्क में प्रवेश कर रहा है। यही दिव्य आलोक जो मनुष्य को स्वस्थ और दीर्घायु बनाता है।
11. पूजा काल में आत्मप्रशंसा करें। हीन भावना को भगाएं और कल्पना करें कि आप एक दिव्य व्यक्ति बन रहे हैं, आपका विचार सात्विक हो रहा है, आप एक महान व्यक्ति हैं, आप सुखी और सम्पन्न आनन्दमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।
12. मन में कभी भी हीन भावना न आने दें। मन से डर को भगाएं, निर्भय बनें। हमेशा सोचें कि आप एक महान व्यक्तित्व हैं। परमात्मा ने आपको किसी विशिष्ट कार्य को पूरा करने के लिए बनाया है। आप सामान्य लोग नहीं हैं। आप समाज का नेतृत्व कर सकते हैं। अपने जीवन के महत्त्व को समझें।
13. दु:ख, चिन्ता, तनाव में जीना आपका कर्त्तव्य नहीं है। आप हमेशा सुखी रहने के लिए पैदा हुए हैं। दु:ख अगर आता है तो हिम्मत से मुकाबला करें। वह भाग जाएगा। दु:खी रहना, रोना, गिड़गिड़ाना

कायरों की तरह जीना आपके जीवन का उद्देश्य नहीं है।

14. हमेशा अच्छी बातें सोचें। अच्छे विचारों का संग्रह करें। गुरुजनों से हमेशा मार्ग निर्देश लें।
15. परिवार के सभी सदस्यों की भावनाओं को समझें और उनके विचारों का आदर करें।

•

38

जीवन आनन्दमय हो जाए

मनुष्य के समान दु:खी जीव को खोजना मुश्किल है। आज का मनुष्य इतना दु:खी, अशांत और तनाव में रह रहा है कि उसका जीवन संकटपूर्ण बन गया है। आखिर क्या कारण है कि परमात्मा की संतान होकर भी आज मनुष्य इतना दु:खी क्यों है?

इन तमाम विषयों पर मैंने समय-समय पर अपने प्रवचनों में विस्तार से चर्चा की है। देश-विदेश में लाखों लोगों ने इन प्रवचनों से अपने जीवन को रुपांतरित किया है। इसलिए मैंने सोचा कि उन बिन्दुओं की चर्चा यहां संक्षेप में कर दी जाए। ताकि लोगों को जीवन जीने की विधि का ज्ञान हो जाए। उनमें कुछ प्रमुख हैं-

- पत्नी और बच्चों से खूब प्यार करें। इससे आपका तनाव घटेगा।
- संगीत गाने वाले कभी भी क्रोधित नहीं होते। कभी भी संगीतकार, चित्रकार, मूर्तिकार कवि को आक्रामक होते नहीं देखा गया है। इसलिए मैं सदैव सबों को कहता हूं कि जैसे भी हो थोड़ा संगीत गाएं, कोई बाजा बजाएं और हमेशा मुस्कुराते रहें।
- मुस्कान जीवन का अमृत है। उसे खूब बिखेरिए। मुस्कुराने वाले व्यक्ति का शत्रु नहीं होता।
- दूसरों की खूब प्रशंसा करें। यहां तक कि अपनी पत्नी और बच्चों की प्रशंसा करनी चाहिए। इससे घर की कलह नष्ट होती है।
- अपने मित्रों को प्रणाम, नमस्कार करने से कंजूसी न करें। पहल

आपकी ओर से होनी चाहिए। आप देखेंगे कि थोड़े दिनों में मित्रों और प्रशंसकों की संख्या बढ़ जाएगी।

- ❑ किसी की निंदा या आलोचना भूल कर भी न करें। निंदा से आपको कुछ नहीं मिलता। दूसरे आपके शत्रु बन जाते हैं।
- ❑ किसी को कोई वस्तु न देनी हो तो उसे प्यार से भी समझाकर मना कर सकते हैं।
- ❑ किसी की भूल को क्षमा करना सीखें।
- ❑ किसी के घर जाएं तो उसके घर और बच्चों की प्रशंसा करें।
- ❑ दूसरों के सामने अपनी बड़ाई न करें।
- ❑ बात-चीत करते समय दूसरों की बात सुनें फिर, अपनी बात करें। बात-चीत में किसी को नीचा दिखाना, अपमानित करना उचित नहीं है।
- ❑ घर के नौकर भी मनुष्य हैं। कभी-कभी उनकी भी प्रशंसा करें।
- ❑ अपने मित्रों, गुरु और वैद्य से कभी झगड़ा न करें।
- ❑ ऐसे चाटुकारों से बचें जो अपने स्वार्थ के लिए आपकी बड़ाई करता हो।
- ❑ समय निकाल कर फूलों के बगीचे, नदी किनारे और पहाड़ी जगहों पर थोड़ा समय बिताएं। उसमें मन का तनाव नष्ट होगा।
- ❑ नदी में स्नान करें। इससे बहुत लाभ होगा।
- ❑ जब कभी क्रोध आए तो खुले पांव घास पर खड़े हो जाएं। इससे क्रोध के वेग का विद्युत प्रवाह पृथ्वी में निकल जाएगा और मन में शांति होगी।
- ❑ जब समय मिले तो किसी बड़े वृक्ष के नीचे थोड़ी देर बैठें। वृक्ष से जो ऊर्जा प्रवाहित हो रही है वह सीधे आपके शरीर को भर देगी।
- ❑ फ्रिज का पानी पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। वैसे तो ए. सी. में सोने वाले को भी कोई विशेष लाभ नहीं मिलता। क्योंकि ए.सी. से जो हवा आती है वह केवल हवा होती है। उसमें जीवनीशक्ति नहीं होती, मरी हुई हवा होती है।
- ❑ सोने के कमरे में टी.वी., वी.सी.आर., म्यूजिक सिस्टम, फोन, मोबाइल भूलकर भी न रखें। इसकी इलैक्ट्रॉनिक वेब आपके

मस्तिष्क को रुग्ण बना देती है। सोने का कमरा साफ सुथरा और हल्का होना चाहिए।

- ❑ एक बेड पर दो व्यक्तियों का सोना उचित नहीं है।
- ❑ अपने बच्चों को बहुत देर तक गोद में लेना बच्चों की ऊर्जा शक्ति का हरण है। अधिक उम्र के लोगों को छोटे बच्चों को गोद में नहीं लेना चाहिए।
- ❑ लोहे के पलंग अथवा खाट पर सोने से शरीर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित रहता है। इससे गहरी नींद नहीं आ सकती है।

•

39

मानव जीवन रहस्यों से भरा

मानव जीवन अनंत रहस्यों से भरा पड़ा है। जीवन के बहुत से पहलू अभी भी आम मानव के लिए एक पहेली की तरह हैं। परमपूज्य आचार्य श्री सुदर्शन जी महाराज ने इन गूढ़ रहस्यों को आमजन की समझ व जानकारी को ध्यान में रखते हुए इन पर बहुत कुछ लिखा व कहा है। ऐसे ही एक गूढ़ विषय पर महाराज श्री ने लौकिक ज्ञान को माध्यम बनाकर साधकों को समझाया है। महाराज श्री कहते हैं अंतरिक्ष ऊर्जा प्राण वायु है जो जीव में प्राण शक्ति का संचार करती है। यह एक प्रकार की गुरुत्वाकर्षण शक्ति है जिस शक्ति से वह प्रतिक्षण क्रियामान रहती है।

अब प्रश्न उठता है कि यह अंतरिक्ष है क्या? अंतरिक्ष का अर्थ है अनंत आकाश। जिसकी कोई सीमा न हो। जिसके न आदि का पता हो, न अंत का। यह अनंत शून्य है। जिस शून्य में प्रकृति विभिन्न रूपों में विचरण करती है। दरअसल अनंत की कोई परिभाषा नहीं होती, क्योंकि परिभाषा किसी रूप की होती है। भाव अथवा शून्य जैसी स्थिति को नहीं बताया जा सकता, इसलिए अनंत केवल अनंत होता है। इसी अनंत आकाश को अंतरिक्ष कहते हैं।

इधर हाल के वर्षों में अनंत की ओर वैज्ञानिकों ने काफी ध्यान दिया है। वे जानना चाहते हैं कि इस अंतरिक्ष के रहस्य को जाना जाए। अंतरिक्ष के अनेक तत्त्व हैं। जहां तक हवा का दबाव है, और फिर अनेक तल हैं, जिसे अंतरिक्ष कहते हैं। अंतरिक्ष में अनेक ग्रह अपनी

कक्षा में अपनी गुरुत्वाकर्षण शक्ति से अनादिकाल से गतिशील है। अंतरिक्ष में क्या-क्या है, यह बताना बहुत मुश्किल है। लेकिन हमारे संतों ने प्राचीन काल में अपने अनुभव से बताया कि अंतरिक्ष में अनेक सूर्यमंडल हैं। जिस एक सूर्य के नीचे हम खड़े हैं, वह अनेकों सूर्यों में से एक है। यह सूर्यमंडल नौ ग्रहों से घिरा है। इस सूर्यमंडल के नौ ग्रह एवं इन ग्रहों के अनेक उपग्रह हैं। इन सबों को मिलाकर एक सूर्यमंडल है। इस सूर्यमंडल में एक ग्रह से दूसरे ग्रहों की दूरी करोड़ों मील मानी जाती है। हमारे आत्मद्रष्टा संतों ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से इन ग्रहों की दूरी का ज्ञान प्राप्त किया और उसी के आधार पर उन संतों ने निर्णय किया कि ब्रह्माण्ड में जितने जीव हैं, वे सभी एक-दूसरे से प्रतिक्षण प्रभावित होते हैं तो सूर्य भी हमसे प्रभावित होता है। यह तो एक सूर्यमंडल की बात है। इस तरह आज के वैज्ञानिक भी मानते हैं कि लगभग कई लाख अथवा असंख्य सूर्यमंडल एवं निहारिकाओं के मेल से एक आकाशगंगा बनती है। एक आकाश गंगा में कितने सूर्यमंडल और कितनी निहारिकाएं हैं, उसकी गणना करने पर गिनती के अंक छोटे पड़ जाएंगे। इसलिए अंतरिक्ष को अनंत कहा जाता है।

भौतिक शास्त्र के महान ज्ञाता **आइन्सटीन** ने कहा था कि "इस अनन्त अंतरिक्ष के संबंध में कुछ भी बताना मुश्किल है, क्योंकि निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि इन सूर्यमंडलों अथवा संपूर्ण अंतरिक्ष को कौन संचालित कर रहा है।" दूसरी ओर अध्यात्म का मानना है कि "इन संपूर्ण सूर्यमंडलों अथवा अंतरिक्ष का नियंत्रण परमात्मा शक्ति के द्वारा होता है। संभव है, इस अनंत अंतरिक्ष के ऊपर कोई परम सत्ता है जो इस संपूर्ण ब्रह्मांड को चला रहा है।" अध्यात्म में उसी **परम सत्ता** को परमात्मा, ईश्वर भगवान आदि नामों से पुकारा जाता है।

•

40

जीवन परमात्मा का प्रसाद है

जीवन और मृत्यु परमात्मा के हाथ में होती है, जीव को न स्वयं जन्म चुनने का अधिकार होता है और न ही प्राप्त करने का अधिकार होता है। जीवन जीने के पश्चात् जब जीव मृत्यु में प्रवेश करता है तो उस अवस्था में उसे फिर जन्म लेने के लिए हजारों, लाखों वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, लेकिन जो सिद्ध पुरुष परमात्म तत्त्व में लीन हो जाता है उसे पुनः गर्भ चुनने का अधिकार रहता है, वह स्वेच्छा से गर्भ चुन सकता है। अन्य जीव ऐसा नहीं कर सकता जीव केवल जी सकता है, जीवन पर उसका कोई अधिकार नहीं है, और जब मृत्यु का काल आता है तो परमात्मा उसे अपने हाथों मृत्यृ नहीं देता। वह जीव को स्वयं ऐसी प्रेरणा दे देता है कि वह स्वयं अपने आचरण से, अपने व्यवहार से जीवन को नष्ट कर देता है बुद्धि विवेक से नियंत्रित होती है जब जीव का अन्त काल आता है तो उसकी बुद्धि भ्रमित हो जाती है, वह अच्छे-बुरे काम व विचार करना छोड़ देता है। अच्छा आचरण करना छोड़ देता है। उसके शरीर से तेज नष्ट हो जाता है। शक्ति क्षीण हो जाती है और विचार स्थिर नहीं रहते। वह स्वयं ऐसा आचरण करने लगता है कि उसका जीवन अशांत हो जाए। काम, वासना और क्रोध के कारण उसका सारा जीवन अशांत हो जाए काम वासना और क्रोध के कारण उसका सारा जीवन अस्त-व्यस्त और उलट-पुलट हो जाए, ताकि उसका जीवन स्वयं काल के गाल में प्रवेश कर जाए।

देवताओं को पराजित करने वाला, काल को पछाड़ने वाला रावण का जब अंतकाल आया तो उसने नैतिक धर्म छोड़ दिया, उसका बल नष्ट हो गया, बुद्धि और विचार क्षीण हो गए और वह काल के चंगुल में फंस गया परमात्मा किसी के नाश का भागीदार नहीं बनता। वह किसी का सिर डंडे से नहीं फोड़ता। लेकिन मनुष्य ऐसा करने लगता है। वह षड्विकारों से ग्रसित हो जाता है। भिन्न-भिन्न प्रकार का मार्ग प्रशस्त कर लेता है और मृत्यु के आने की प्रतीक्षा करने लगता है। मनुष्य स्वयं अपने कार्यों और विचारों से अनैतिक कार्य करके जीवन को नष्ट कर लेता है।

जीवन हमें ईश्वर के वरदान-स्वरूप मिला है, इस जीवन को पाने के लिए हमने ईश्वर की लाखों बार मिन्नतें कीं, तब यह जीवन इसलिए मिला कि हम अपने कार्यों और विचारों से परमात्मा की सृष्टि में कण-कण को प्यार कर सके और प्रकृति के अमृत कण को पीकर जीवन को सार्थक कर सके।

साधक जब तक जीवन को वरदान समझता है परमात्मा का आशीर्वाद समझता है तब तक परमात्मा का स्नेह उसे मिलता रहता है, लेकिन ज्योहि वह जीवन को अभिशाप समझने लगता है तो उसका सारा जीवन नरक बन जाता है जीवन को हम किस रूप में लेते हैं यह हमारे अपने हाथ की बात है इसलिए गोस्वामी जी कहते हैं-

काल दण्ड गहिं काहु न मारा।
हरहि धर्म बल बुद्धि विचारा॥

•

41

जीवन को प्रेममय बनाओ

वासना शरीर के बाहर की चीज है, जबकि प्रेम हमारे अंतर्मन की अभिव्यक्ति और अनुभूति। यदि हम प्रेम और वासना को एक साथ जोड़कर देखें तो हमारा नुकसान हो सकता है, क्योंकि तब प्रेम का अर्थ बदल जाएगा। यदि हम प्रेम की परिभाषा वासना की दृष्टि से करें तो हमारा सारा आध्यात्मिक प्रेम नष्ट हो जाएगा। प्रेम का संबंध अध्यात्म, अंतर्मन और हृदय से होता है लेकिन वासना का संबंध हमारे बाहरी शरीर से होता है।

यदि हमारे मन में किसी के प्रति वासना जगती है तो इसका प्रधान कारण यह है कि हमने सिर्फ उसका बाह्य रूप से ही प्रभाव ग्रहण किया है। हमारी आंखों ने उसके बाहरी शरीर को देखा, उसकी बनावट, सुंदरता को देखा। कई बार ऐसा होता है कि वर-वधू के विवाह के पहले कुछ लोग लड़की देखने जाते हैं। वे लोग लड़की और लड़के के बाहरी आडंबर को देखते हैं। किसी बाहरी चीज को देखकर, किसी व्यक्ति के बारे में कहना या उसके व्यक्तित्व का आंकलन करना मुश्किल है, क्योंकि जो हमें उसका बाहरी स्वरूप दिख रहा है, वह वास्तविक नहीं है। बाहर जितनी भी वस्तुएं हम देखते हैं, वे तमाम वस्तुएं और अंग, वासना की दृष्टि से ओत-प्रोत होते हैं। **फ्रॉयड** ने भी तो यही कहा। उसने कहा कि किसी व्यक्ति की पर्सनेलिटी को देखने के उपरान्त ही उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जाता है। पर्सनेलिटी यूनानी शब्द परसोना से बना है। जिस प्रकार बच्चे एक मुखौटा लगाकर

दूसरे बच्चे को डराते हैं तो उस मुखौटे को परसोन कहा जाता है। हम किसी व्यक्ति के चरित्र के बारे में यदि जानना चाहें तो उसके चेहरे मात्र को देखकर क्या जान पाएंगे? बनावटी चेहरे को देखकर उस व्यक्ति के चरित्र का मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे तो हमें क्या हासिल होगा? इसलिए बाहर के आवरण को देखकर उसकी सम्पूर्ण सुन्दरता का सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। बाहर से जो हमें दिख रहा है वह बनावटी है, एक ओढ़ा हुआ आवरण है। जैसा वस्त्र आप पहन लेंगे, वैसा ही आपका व्यक्तित्व माना जाएगा। **कबीर** ने कहा है–

मन न रंगाए, रंगाए जोगी कपड़ा।

अर्थात् *तुम प्रभु के रंग में अपने मन को रंग लो, अपने कपड़े को रंगने से क्या फायदा? कपड़े को मत रंगो, रंगना ही है तो सिर्फ अपने मन को रंगो।* मन की पहचान ही किसी व्यक्ति की असली पहचान होती है। जैसे कोई व्यक्ति सुन्दर हो लेकिन उसका मन गंदा हो तो हम उसे सुन्दर कैसे कह सकेंगे? **जायसी** हिन्दी साहित्य के बड़े योग्य कवि थे। उन्होंने एक पुस्तक **'पदमावत'** भी लिखी है। वे देखने में बहुत ही कुरुप थे। एक बार की बात है वे किसी रास्ते से होकर कहीं जा रहे थे कि रास्ते में राजा की सवारी आ गई। राजा की नजर जैसे ही जायसी पर पड़ी, उनके मुख से हंसी निकल गई। उस हंसी को सुनते हुस जायसी ने राजा से कहा–

'मोही का हंसों कि हंसो भगवान को।'

अर्थात् *तुम मुझ पर क्या हंसते हो? यदि मुझे देखकर हंसना हो तो भी तुम मुझ पर मत हंसो, मुझ पर हंसने से कहीं बेहतर होगा कि तुम मुझे बनाने वाले पर हंसो।* ऐसी ही एक घटना अष्टावक्र के साथ भी हुई। अष्टावक्र जब एक बार राजा जनक के दरबार में पहुंचे तो उन्हें देखते ही सभा में मौजूद सारे विद्वान, महापंडितों और अन्य राजाओं ने हंस दिया। अपने पर हंसने वालों पर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ, फिर उन्होंने राजा जनक से कहा कि "महाराज जनक! मैंने सुना था कि तुम्हारे दरबार में पंडितों की सभा लगी हुई है, लेकिन इन बुद्धिहीनों के बीच में सत्य की चर्चा कैसे हो रही है?" इससे यह स्पष्ट होता है कि जो शरीर को देखते हैं, वे सिवाए शरीर की सुन्दरता के कुछ और देख

ही नहीं पाते हैं। वे तो सिर्फ कपड़ों को देखते हैं। लेकिन जो व्यक्ति मन के अलंकार को देखता है, वही सत्य देख पाता है। वही मन की सुन्दरता और हमारे चरित्र को भी देख पाता है।

सुन्दरता मन की होनी चाहिए। मन के बाहर की सुन्दरता हमारे लिए कोई मायने नहीं रखती। अंग्रेजी साहित्य में एक कवि, महोदय **बैरन** हुए। वे एक सुन्दर लड़की का बहुत दिनों से पीछा कर रहे थे। उनकी हरकतें कुछ इस प्रकार की थीं कि वह लड़की परेशान हो गई। फिर वह लड़की इन परेशानियों से निजात पाने के लिए बैरन से शादी करने को तैयार हो गई। लेकिन एक शर्त रखी कि इन हरकतों की पुनरावृत्ति मत करना। बैरन ने कहा, "मैंने इतने सारे यत्न तुम्हें पाने के लिए किए थे, अब जब मैं तुम्हें पा चुका हूं तो फिर मेरे पास और कोई आशा शेष नहीं बची।" दोनों चर्च गए और पादरी के समक्ष विवाह कर लिया। जिस समय वे शादी करके चर्च की सीढ़ियां उतर रहे थे, उसी समय एक दूसरी सुन्दर सी लड़की चर्च के अन्दर जा रही थी। बैरन अपनी उस नवेली पत्नी का हाथ छोड़कर तुरन्त उस नई लड़की की ओर मुखातिब हो गए। "उनकी पत्नी ने बैरन को उनकी शपथ की याद दिलाई। बैरन ने जवाब दिया–देखो प्रेयसी! मनुष्य का मन बहुत ही चंचल होता है, उसे जो नहीं मिला रहता है उसके लिए बड़ी आशा लगी रहती है, इंतजार और पीछा करने में जो आनन्द था, उसकी सफलता यह रही कि तुम मुझे प्राप्त हो गई। अब मैं इस ओर से निश्चिंत हो गया, क्योंकि तुम अब मेरी हो चुकी हो।"

यह तो मनुष्य का गुण है कि जो चीज उसे मिल जाए उसकी ओर से बहुत निश्चिंत हो जाता है और उसका मन नहीं मिली हुई वस्तु की ओर दौड़ पड़ता है। जो वस्तु हमें मिल जाती है हम उस पर संतोष नहीं करते, लेकिन जो वस्तुएं हमारी पहुंच से दूर होती हैं, उसकी ओर हम व्यग्र हो जाते हैं। यही दौड़ हमारे जीवन की मृगतृष्णा है।

यह सर्वविदित है कि जो प्राप्त है, उससे मनुष्य कदापि संतुष्ट नहीं होता है। जो अप्राप्य और दूर है, उसी के लिए मनुष्य सारे दिन तड़पते और जोड़ते रहते हैं। इस प्रेम और परमात्मा के बीच जब कभी भी ज्ञान और विज्ञान की बातें आ जाती हैं, तो मन बड़ा विचलित हो जाता है।

प्रेमी के हृदय से जाकर पूछो, प्रेम में पिघलते हुए आदमी से जाकर पूछो कि जब उसके हृदय से प्रेम की धारा बहती है, तो उसके मन में उस समय क्या हो रहा होता है? मनुष्य हो अथवा अन्य कोई जीव, वह तो प्रेममय होकर ही जन्म लेता है। प्रेममय होना उसका आचरण है। प्रेम से बाहर हम तभी होते हैं, जब हमारे ऊपर किसी प्रकार का दुराचार होता है तभी हम प्रेम से हटते हैं और प्रेम से हमारी दूरी बढ़ती चली जाती है। इसी दूरी से हमें बचने की आवश्यकता है। हम जितना प्रेम से भागेंगे, उतना ही अप्रेम की ओर बढ़ते चले जाएंगे।

काया को मत भूल...

नाश्ते के समय एक दो कौर खाया और उठ चले। इससे तुमने साबित कर दिया कि तुम वाकई जल्दी में हो और तुम्हारे पास खाने तक का समय नहीं है। तुमने जिन व्यस्तताओं का रोना अपनी पत्नी के पास रोया, यह सब उसे प्रभावित करने मात्र के लिए है। तुम्हारी वास्तविकता तो यह है कि तुम फिर से उसी भाग-दौड़ में शामिल होना चाहते हो, जिससे तुम्हें आनन्द की प्राप्ति होती है। तुम अपने बच्चों को भी यही बताना चाहते हो कि तुम वाकई में बहुत व्यस्त रहते हो और तुम्हारे पास काम का अंबार लगा हुआ है, जहां नहीं जाने से तुम्हारे सैकड़ों-हजारों रुपए और आवश्यक कार्य का नुकसान हो सकता है।

जीवन भर प्रत्येक व्यक्ति भागता रहता है। भागकर हम कहां जा रहे हैं, यह किसी को पता नहीं? तुम भाग-दौड़ कर केवल दूसरे को प्रभावित करना चाहते हो। हमारा जीवन इसके लिए तैयार नहीं है। इस भाग-दौड़ को हमारा शरीर कहता है कि मुझे आराम दो। मुझे प्रेम से बैठने और भोजन करने दो, पर तुम क्या ऐसा होने देते हो? जो व्यक्ति प्रेम और आनन्दपूर्वक अपने भोजन तक को ग्रहण नहीं कर पाता है, उसका जीवन नरक से भी बदतर है। यदि तुम भोजन नहीं कर पाते हो, तो तुम्हारे शरीर की कोई गारन्टी नहीं कि वह कब समाप्त हो जाए। जब भी भोजन करो प्रेम और आनन्दपूर्वक करो।

प्राचीनकाल में पत्नियां अपने हाथों से भोजन परोसकर पति को सामने बिठाकर खिलाया करती थीं और साथ ही साथ पंखा झला करती थीं। पति महोदय उतने ही प्रेम से आसन लगाकर भोजन ग्रहण करते थे।

तब पति-पत्नी के बीच प्रेमालाप भी हुआ करता था। इस प्रकार किया जाने वाला भोजन ही शरीर को लाभ पहुंचाता था। आज स्थिति यह है कि तुम भोजन के टेबल पर अपने कार्यालय तक खोल लेते हो। तुम क्या ऐसा करके पत्नी और बच्चों की दुर्गति करने पर तुले हुए हो, यह कैसा जीवन हो गया है तुम्हारा?

जिस भोजन को प्यार से बनाया गया हो और जिसे तुम्हारे टेबल पर प्यार से परोसा गया हो, उसे प्यार से ही ग्रहण करो। ऐसा भोजन तुम्हें आनन्द और स्फूर्ति देगा। भले ही वह भोजन सूखी हुई रोटी और नमक ही क्यों न हो? लेकिन यदि तुम्हारे पास 56 प्रकार के व्यंजन उपलब्ध हों और तुम उसे किसी चिंता और तनाव के साथ ग्रहण करो, ऐसा भोजन शरीर के लिए किसी काम का नहीं होता। क्योंकि खाना खाते समय तुम्हारा मन शरीर के साथ नहीं होता। शरीर तो खाने के सामने था, पर मन किसी व्यापार या कार्यालय में रमा हुआ था। वैसे ही तुम अपने शरीर के साथ छेड़छाड़ आरम्भ करोगे, तुम्हारा शरीर साथ छोड़ देगा और तुम ऐसे बन जाओगे कि तुम्हें पूछने वाला कोई और नहीं मिलेगा। इसलिए आत्मकल्याण जरूरी है। पहले अपने कल्याण की बात करो, फिर तुम संसार के कल्याण की बात जितना चाहे कर लेना।

तुम लोगों ने इस भाग-दौड़ को आमंत्रित करके बुलाया है। इतनी दुष्प्रवृत्तियां तुम्हारे पास स्वयं नहीं आई हैं। इन्हें इतनी फुरसत कहां कि वह तुम्हें खोजती रहें? तुम इन दुष्प्रवृत्तियों को बुलाकर इसके जाल में स्वयं फंसते चले गए। मकड़े की एक जाति ऐसी भी होती है, जो अपने सम्पूर्ण जीवन में एक बार ही संभोग करता है क्योंकि उसे पहले और अंतिम संभोग के उपरान्त ही उसकी मौत हो जाती है। जैसे ही वह मकड़ा संभोगरत होता है, मकड़ी उसके शरीर को खाना आरम्भ कर देती है इसलिए मकड़े से कम से कम अपने शरीर को साफ करना तो सीख लो। दूसरे के साथ जो दिल हो करो, अपने शरीर को तो बचाना सीख लो। तुमने तो अपनी दुष्प्रवृत्तियों से अपने शरीर को जर्जर कर दिया, अपने को कामवासना का दास बना लिया, शराब को अपना स्वामी बना लिया, फिर क्या होगा तुम्हारा?

छोटे-छोटे 12 या 15 साल के बच्चे भी काम वासना और शराब के नशे में धुत हो जाते हैं। इसका परिणाम अमेरिका जैसा होगा।

अमेरिका का आंकड़ा बताता है कि वहां टी.वी. दृश्यों को देखते हुए 10 साल की बच्चियां भी रजस्वला हो जाती है। हमारे यहां यह उम्र 16 वर्ष है अर्थात् यह कहा जा सकता है कि हमने स्वयं इन सारी बुराइयों को निमंत्रण पत्र भेजकर आमंत्रित किया है। उसे अपने चरित्र में उतारा है। यह तो अनुकरण की बात हुई। हमारा शरीर तो इतना विकृत हो चला है कि हमने इन तमाम चीजों को ग्रहण करके अपने शरीर और अपनी पूरी जवानी को गंवा दिया। आज नशे की जितनी भी वस्तुएं बाजारों में मिल रही हैं, बच्चे, बड़े और बूढ़े सभी इसका इस्तेमाल कर रहे हैं। क्या इसके बिना जिंदा नहीं रहा जा सकता? जो लोग नशा नहीं करते हैं, वे कैसे जिन्दा हैं? क्या अन्तर है तुम दोनों में? अंतर तो यही है कि उसकी जवानी मुस्कुरा रही है और तुम्हारी जवानी ढल चुकी है, वह रो रही है। इन तमाम विकृतियों को अपनाकर अपनी जवानी को नष्ट कर लिया है।

आज तुम्हें चिन्ता हो रही है कि भाग-दौड़ की इस दुनिया में परमात्मा का चिन्तन कैसे किया जाए? यदि उस परमात्मा की थोड़ी सी कृपा मिल जाए तो तुम्हारा उपकार हो जाएगा। उसका थोड़ा सा स्पर्श मिल जाए तो जीवन धन्य हो जाएगा और अमरत्व को प्राप्त कर लोगे। तुमने जितनी बातें और उलझन मन में पैदा कर लीं, उसे छोड़कर देखो। इन सबको छोड़ते हुए जरा परमात्मा के चरणों में समर्पित होते हुए कहो कि-हे परमात्मा! मैं तुम्हारे चरणों में बिल्कुल साधारण बनकर खड़ा हो गया हूं।

जिस दिन तुम्हारे जीवन में सरलता आ जाएगी, उसी दिन से तुम्हारा शरीर सामान्य हो जाएगा। उस दिन से ही तुम समझ लेना कि तुम परमात्मा के राजमार्ग पर खड़े हो गए हो, यदि तुम केवल दो-चार कदम आगे बढ़ जाओगे, तो परमात्मा तुम्हारे सामने खड़ा मिल जाएगा, क्योंकि भगवान श्रीरामचन्द्र स्वयं कहते हैं-

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

विस्तार ऋजुता का होता है, वक्रता का नहीं। किसी सरल और सीधे लोहे के टुकड़े को ले लो, उसे थोड़ा गर्म कर पीटो, तुम देखोगे कि

उसके स्वरूप का विस्ताार हो गया है लेकिन जो लोहा थोड़ा वक्रता लिए हुए हो, उसे तुम कितना भी पीटोगे, उसका विस्तार नहीं हो पाएगा। इसलिए कहता हूं कि तुम सरल बन जाओ, संगीत में डूब जाओ, केवल इसी के द्वारा तुम्हारे जीवन में सार्थकता आ जाएगी।

जगदीशचन्द्र बोस हमारे देश के बहुत बड़े वैज्ञानिक थे। उन्होंने केवल मनुष्यों पर नहीं, वृक्षों एवं अन्य जीव-जन्तुओं पर भी प्रयोग किए। यह उनकी ही घोषणा रही कि केवल मनुष्य ही नहीं, पेड़-पौधे भी जीव हैं, वे हंसते हैं, मुस्कुराते हैं, रोते हैं एवं अन्य क्रिया-कलाप भी करते हैं। वैज्ञानिकों ने यहां तक बता दिया कि यदि किसी वृक्ष को सुनाते हुए यह कह दिया जाए कि मैं कल इस वृक्ष को काट डालूंगा तो वह कुम्हला जाएगा और उसके पत्ते मुर्झा जाएंगे।

इन वृक्षों के पास इन्द्रियां होती हैं। पहाड़ों और पत्थरों में भी इन्द्रियां हैं। अंतर सिर्फ यह है कि हमारी पांच कर्मेन्द्रियां और पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं। कुल मिलाकर 10 सजग इन्द्रियां होती हैं, पर उन पेड़ों अथवा पहाड़ों की इन्द्रियां कम सजग होती हैं। पेड़-पौधे मनुष्य की तरह हंस और रो नहीं सकते हैं। क्योंकि प्रकृति अपने नियम के अनुसार ही चलती है। तुम लाखों प्रयत्न करके रह जाओगे, आम के पेड़ पर समय के पूर्व मंजर नहीं आ सकता है। क्योंकि यह प्रकृति का नियम है जो प्रकृति का नियम मानता है, वह कभी भी कष्ट में नहीं रहता है।

•

42

जीवन को बनाए रागात्मक

जीवन में सुख भी है, दु:ख भी है, आशा भी है, निराशा भी है। जो व्यक्ति सुखी रहना चाहता है। उसे हमेशा आशावादी बनना पड़ता है। इस संसार में फूल भी हैं, कांटे भी हैं। आपको हमेशा फूल देखने हैं, कांटों को भूलना है। तुम्हें फूल के पौधे में कांटे क्यों दिखाई दे रहे हैं? फूल को देखने की आदत डालो। वही फूल तुम्हारे जीवन में सुगन्ध भर देगा। बुराई को देखना वैसा सोचना महापाप है।

अच्छी बात सोचोगे तो हमेशा अच्छे फल मिलेंगे। अच्छी बात सोचोगे तो पुण्य मिलेगा। तुम्हारे मन में बुरी बात क्यों आती है, क्योंकि तुम अच्छी बात नहीं सोचते। अच्छी बात सोचोगे तो अच्छे विचार मन में आएंगे और अच्छे विचार से अच्छा आचरण करोगे।

जीवन को रागात्मक बनाना भी सुखी रहने की कला है। जो व्यक्ति अपने जीवन से प्यार करता है, अपने बच्चों और परिवार से प्यार करने वाला हमेशा सुखी रहता है। निराश, हताश और चिन्ता में रहने वाला व्यक्ति कभी अपने जीवन से प्यार नहीं करता। हताशा और निराशा के कारण ही मनुष्य बीमार पड़ता है। जो लोग प्रसन्न रहते हैं, सबसे प्यार करते हैं, अच्छे कपड़े पहनते हैं, अपने शरीर को सुन्दर बनाए रखते हैं वैसे लोग प्राय: बीमार नहीं पड़ते।

रवीन्द्रनाथ टैगोर हमेशा कहते थे कि किसी को भी अपना कुरुप चेहरा दूसरों को दिखाकर दु:खी करने का अधिकार नहीं है। हमारे किसी भी काम से अगर कोई दु:खी होता है तो यह पाप है। हमारे

समाज में आज भी ऐसे अनेक लोग हैं जो कभी तुमसे मिलेंगे तो अपने दु:ख की कहानी कहने लगेंगे।

ऐसे लोगों को दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति से शिकायत रहती है। ऐसे लोग गली मुहल्ले में घूमकर अपनी दु:ख भरी कहानी सुनाकर दूसरों की सहानुभूति बटोरना चाहते हैं। यही बहुत बड़ी कायरता है जो व्यक्ति दूसरों की सहानुभूति बटोरने का प्रयास करता है वह महाकायर होता है। कोई व्यक्ति अगर अपने दु:ख की कहानी से तुम्हें दु:खी करने का प्रयास करे तो ऐसे लोगों से बात मत करो। यह एक प्रकार की छुआछूत की बीमारी है। मैं तो अपने लोगों को हमेशा परामर्श देता हूं कि तुम्हारा यह जीवन परमात्मा की दी हुई धरोहर है। इसे न स्वयं गंदा करो और न दूसरों को गंदा करने दो।

दूसरों को खुश करने के लिए, दूसरे की प्रसन्नता के लिए सुन्दर जीवन को क्यों गंदा कर रहे हो। एक बार अगर गंदगी तुम्हारे जीवन में लग गई तो उसे कभी धो नहीं सकोगे। प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन जीने का अधिकार है। तुम भी सुन्दर जीओ, दूसरों को भी सुन्दर जीने दो। इसलिए मनुष्य को हमेशा रागात्मक और आशावादी बने रहना चाहिए। निराशा के कीटाणु मनुष्य के सारे शरीर को खंकड़ी बना देता है। आजकल कुछ लोगों को निराश रहने की आदत हो गई है। दु:खी रहने में वैसे लोगों को मजा आता है। दु:खी रहकर किसी की सहानुभूति बटोरना बुरी आदत है।

•

43

जीवन में बनें आस्थावान

श्रीकृष्ण को भी अर्जुन से उसके संशय को तोड़ने के लिए कहना पड़ा कि "मैं तो तुम्हारे साथ बचपन में खेल चुका हूं, यमुना में मैंने तुम्हारे साथ स्नान भी किया है, लेकिन मैं वह नहीं हूं, जो तुम मुझे समझ रहे हो।" फिर श्रीकृष्ण को अपना विराट स्वरूप दिखाना पड़ा। जब अर्जुन को विश्वास हो गया, तब उसे भगवान की प्राप्ति हो पाई। इसलिए पहले विश्वास करना सीखो, तुम संदेह से परे हो जाओ।

हमारे आसपास कई ऐसे लोग होते हैं, जो घर से निकलते समय अपने घर के ताले को दस बार जोर-जोर से हिला कर देखते हैं कि मैंने ताले को ठीक प्रकार बंद किया या नहीं! क्यों वे लोग इतने अविश्वास में जी रहे हैं? अगर ऐसा ही चलता रहा तो फिर उनका जीवन तो नरक समान हो जाएगा। अपने जीवन में कहीं-न-कहीं आस्था तो रखनी ही होगी। आप इतनी दूरी से चलकर आए हैं, यदि आपके मन में आस्था नहीं होगी तो आप यहां से कंकड़-पत्थर लेकर जाएंगे। लेकिन यदि आस्था होगी तो यहां जितने मोती बिखरे पड़े हैं, उन सब पर आपकी नजर पड़ेगी और वे सारे-के-सारे मोती आपके हो सकते हैं। मैं केवल रामायण व गीता पढ़ने की बात नहीं करता, मैं तो अपने जीवन को पढ़ने की कला को सीखने की बात करता हूं। जिन वृत्तियों की वजह से आपका जीवन नर्क बनता जा रहा है, जिन बुरी आदतों की वजह से आप जीवन से पीछे छूटते

जा रहे हैं, जिन बुराइयों के कारण आपके जीवन से आनन्द व मुस्कान पीछे रह गई, क्यों रखना चाहते हैं आप उन्हें अपने साथ? क्यों आप किसी भूले हुए पथिक के समान पथभ्रष्ट हो गए हैं? आप लौटें! और अपने मन के वेग को पहचानने का प्रयास करें। अपने मन को विश्लेषण आप अपने ही शब्दों में करें।

•

44

स्वाभिमानी होकर जीएं

जीवन में मस्ती और स्वाभिमान होना चाहिए। जिस दिन आप स्वाभिमान के साथ सिर उठाकर अपने समाज में चलना आरंभ कर देंगे, आपमें जितनी बुराइयां हैं, उनका त्याग कर देंगे, तो फिर आप कल से अपना स्वरूप देखेंगे कि वह कितना परिवर्तित हो जाता है। आप सुबह में सोकर उठें ओर अपने मन में संकल्प लें कि मैं समर्थ हूं और मैं सफल हो रहा हूं। मैंने प्रयोग करके भी देखा है कि जितने भी मनोविश्लेषक हैं, उनका मानना है कि बड़ी से बड़ी बीमारी भी आसानी से ठीक हो सकती है, यदि कोई बीमार व्यक्ति संकल्पपूर्वक यह कहता हो कि मैं ठीक हो रहा हूं।

आप भी ऐसा क्यों नहीं कह सकते कि मैं ज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ रहा हूं, मैं भी सफल हो रहा हूं, मेरा जीवन कर्मशील बनता जा रहा है, मैंने इन दुष्प्रवृत्तियों का त्याग कर दिया है। आप ऐसा करके तो देखें, मेरा मानना है कि केवल चार दिनों में आप स्वयं में परिवर्तन महसूस करना आरंभ कर देंगे, आप अपने मन में ऐसा भाव रखें। केवल भाषण और प्रवचन सुनने से आपके जीवन में कोई भी परिवर्तन आने वाला नहीं है, परिवर्तन होता है संकल्प करने से। अभी जो आप यहां हैं, आप ऐसा संकल्प लें कि हम इस ब्रह्मांड का एक छोटा स्वरूप हैं, और हमारे शरीर पर सूर्य और चन्द्रमा तथा परमपिता परमात्मा का प्रकाश अन्य नक्षत्रों के प्रकाश के साथ पड़ रहा है। हमारे शरीर का रोम-रोम चार्ज हो रहा है। यह भाव जिस क्षण हमारे अंदर आ जाएगा, हम महसूस करने लगेंगे कि हमारा भीतर और बाहर दोनों ही परिवर्तित हो रहा है। यही हमारा जीवन है और इस उद्देश्य को पूरा करना ही हमारा धर्म होना चाहिए।

45

वर्तमान में जीना सीखो

तुम्हारे द्वारा जो कुछ हो रहा है या तुम जो कर रहे हो, जानते हो इसका कारण क्या है? शायद नहीं जानते तो जान लो, यह है-तुम्हारा अहंकार। तुम यह भी नहीं जानते कि तुमने इसे अपने सिर पर क्यों उठा रखा है? और यह भी नहीं कि क्या तुम्हें किसी ने ऐसा करने के लिए कहा है? क्या तुमने कभी सोचा है कि सूर्य कैसे चलता है, पृथ्वी कैसे घूमती है आदि-आदि। यदि नहीं सोचा है तो इसके बारे में सोचो। यदि नहीं सोचा है तो फिर चिंता क्यों करते हो? यदि कुछ समझ में नहीं आ रहा है तो इसका मतलब यह हुआ कि तुम अकारण चिंता करते हो। अब यह सोचो कि चिंता का अर्थ क्या है? सच पूछें तो वह चिंता ही है, जो हमारा सबसे अधिक नुकसान करता है। अब सवाल उठता है कि आखिर वह चिंता कौन-सी बला है। दरअसल, चिंता हमारे बीते जीवन की वे घटनाएं हैं, जिन्हें हम कभी भुला नहीं पाते हैं और जब हम इसे भुला नहीं पाते हैं, तो हमारा वर्तमान इससे प्रभावित होने लगता है। वर्तमान के प्रभावित होते ही, हमारा भविष्य नष्ट होने लगता है। **कवि जयशंकर प्रसाद** ने 'कामायनी' में एक बड़ी ही अच्छी बात लिखी है-

प्राणी निज भविष्य की चिंता में,
वर्तमान का सुख छोड़े।
दौड़ चला है बिखराता-सा,
अपने ही पथ में रोड़े॥

जो भविष्य है ही नहीं, हम उसके बारे में चिंता में लगे रहते हैं तथा जो बीत गया, उसके बारे में चिंता करते रहते हैं। इस प्रकार हम अपना

वर्तमान भी खराब कर लेते हैं। आज हम कितना कुछ इकट्ठा कर रहे हैं, यह सोचकर कि हमें कल सुख मिलेगा, लेकिन इसके लिए आज कष्ट झेल रहे हैं। इससे भी अधिक कोई कष्ट आने वाला है क्या? यदि आने वाला होगा तो हम सहेंगे। हम अपने ही पथ में रोड़े बिखरा रहे हैं और दौड़ते चले जाते हैं। हम ऐसा क्यों नहीं कर पा रहे हैं कि भविष्य की चिंता छोड़, वर्तमान में जीएं। इसका कारण है–अहंकार। अहंकार कहता है कि तुम भूत में जीओ और हमने तो नई पीढ़ी को भी भूत में जिलाकर नष्ट कर दिया। यह कितनी बड़ी विडंबना है कि हम अपने बच्चों को ले जाकर खंडहरों में छोड़ देते हैं और कहते हैं कि तुम अपना भविष्य खोजो। पीछे की ओर दौड़कर हम उन्हें कहते हैं कि तुम आगे बढ़ो। हमारे जीवन में निराशा और चिंताएं हैं, तो फिर इस जीवन को लेकर हम क्या करेंगे? हम तो प्रत्येक चीज में नकारात्मक होते चले जा रहे हैं। यह काम हमसे नहीं होगा, वह काम हमसे नहीं होगा, तो फिर होगा किससे? प्रयास करने में क्या बुराई है। हम प्रयास करेंगे, काम होना होगा तो होगा, नहीं होना होगा तो नहीं होगा। विज्ञान की प्रयोगशाला में भी प्रयोग होते रहते हैं। किसी प्रयोग का परिणाम जीवन भर नहीं मिलता, फिर भी काम चालू रहता है। दूसरे वैज्ञानिक इसके परिणाम को ढूंढ़ ही लेते हैं।

•

46

दिखावे से बचो

हमारे समाज में ऐसी मान्यता है कि **जैसा खावै अन्न, वैसा होवै मन**। अब सवाल यह उठता है कि जब अन्न हमारे लिए इतना महत्त्वपूर्ण है, तो उसे ग्रहण करते समय हम यह क्यों भूल जाते हैं कि हमारे शरीर का निर्माण व संवर्धन इसी से होता है। हालांकि हमारे भोजन में निरंतर बदलाव आ रहा है। प्राचीन काल के भोजन व रहन-सहन में जो बदलाव आया है, जो परिवर्तन हुए हैं, उसका परिणाम सुखद नहीं है। इसका एक ही कारण है कि पहले हम अपने शरीर की रक्षा करने, उसका पोषण करने तथा उसे ताकतवर बनाने के लिए भोजन करते थे, लेकिन आज हम स्वाद पाने और लोगों को दिखाने के लिए भोजन करते हैं। यही वजह है कि आजकल 30 वर्ष की युवावस्था में ही लोग अपने शरीर में विभिन्न विकृतियों का अनुभव करने लगते हैं। सच पूछें तो जब वह जवान होना आरम्भ करते हैं, तभी उनके शरीर में बुढ़ापा भी आने लगता है।

जिस प्रकार कई बातें इतिहास के पन्नों में छिप जाती हैं, उसी प्रकार हमारे यह विचार भी छिप जाते हैं कि हम भी कभी जवान होंगे या कभी हमारे शरीर में भी रौनकता व प्रफुल्लता आएगी? मेरा मानना है कि यदि भोजन सुरुचिपूर्ण, स्वास्थ्यकर व सुपाच्य हो, तो हमारा जीवन स्वर्ग के समान हो जाता है। आजकल यह बात केवल अखबारों व पत्र-पत्रिकाओं में ही पढ़ी जाती हैं कि अमुक देश या राज्य का कोई व्यक्ति 90, 100 या 110 वर्ष से जीवित है और अभी भी आनंद से

जी रहा है। अब सवाल यह पैदा होता है कि ऐसे लोगों के शरीर में इतनी ऊर्जा, इतनी शक्ति कैसे आ गई कि 100 या 110 वर्ष तक उनका शरीर अपना कार्य सुचारु रूप से करता रहा और अभी भी उनकी ऊर्जा शेष बची हुई है। दरअसल, इसके पीछे एक ही वजह हो सकती है और वह यह कि उन्होंने अपने जीवनकाल में ऊर्जा को संग्रहित व संपोषित किया। आगे बढ़ने से यह बताना चाहूंगा कि ऊर्जा नष्ट कैसे होती है? ऊर्जा के नष्ट होने का कारण यह है कि हम अपने शरीर का दुरुपयोग करते हैं, फलस्वरूप इसकी रक्षा नहीं कर पाते। इसे स्वस्थ रखने के उपायों की जानकारी हमें नहीं हो पाती। इस वजह से हमारी ऊर्जा का क्षय होने लगता है। केवल कैल्शियम या विटामिन की गोली लेकर शरीर को ऊर्जावान नहीं बनाया जा सकता। शरीर के प्रत्येक अंग के लिए पोषक-तत्त्व जरूरी होता है, जिसे हम भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। गरिष्ठ व अपाच्य भोजन को पचाने में शरीर को काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो भोजन के पहले, भोजन के दौरान या भोजन के बाद शीतल जल, शीतल पेय आदि का सेवन करते हैं, इससे उनका बड़ा नुकसान होता है। दरअसल, हमारा शरीर पहले शीतल जल या पेय को अपने हिसाब से गर्म करता है, फिर उसे पाचन योग्य बनाता है। इस दौरान हमारी वह ऊर्जा, जिसके द्वारा हमारी आंतरिक क्रियाएं संपन्न होती रहती हैं, का क्षय होता रहता है, जो उचित नहीं है।

•

47

प्रदर्शन से बचें वास्तविकता में जीएं

ईश्वर तो प्रकृति के कण-कण में विराजमान है। जो आपकी परवरिश करे, वही तो परमात्मा है, उसे आप खोज कहां रहे हैं? आप प्रदर्शन में विश्वास करने वाले लोग हैं। किसी ने पूछा कि आप कहां जा रहे हैं? तो आप चिल्ला कर बोलते हैं कि पूजा करने के लिए बद्रीनाथ आश्रम या रामेश्वरम् जा रहे हैं। क्या पूजा करने के लिए कहीं जाने की आवश्यकता है? आपका मन कभी भी आपके साथ नहीं जाता। आप सिर्फ अपने शरीर को ढोते हुए मन्दिरों में जाते हैं और पूजा का आडम्बर कर सबको दिखाते हुए लौट आते हैं। एक बार जयपुर के महाराजा के पास एक व्यक्ति आया। उसने कहा कि "महाराज मैं चार घंटे तक अपनी सांसें रोके रख सकता हूं।" महाराजा को यकीन नहीं हुआ। उस व्यक्ति ने कहा कि "मैं ऐसा कर सकता हूं। यदि मैंने ऐसा कर दिखाया तो मुझे ईनामस्वरूप क्या मिलेगा?" राजा ने कहा कि "जो तुम कहो, अवश्य मिलेगा।" उस व्यक्ति ने कहा कि "मुझे ईनामस्वरूप आपके अस्तबल से सबसे तेज दौड़ने वाला एक घोड़ा चाहिए।" महाराजा ने हामी भर दी। वह व्यक्ति अपनी क्रिया में जुट गया। शर्त तो केवल चार घंटे की थी, पर वह बीस घंटों तक अपनी सांसे रोके रहा। इसी प्रकार दिन, सप्ताह, माह और साल बीत गए, वह व्यक्ति वहां ज्यों-का-त्यों बैठा रहा। दिन बीतते हुए कई साल हो गए और एक दिन राजा की मृत्यु हो गई। फिर उनका पुत्र राजा बना। उसने मंत्री से कहा कि उस व्यक्ति को वहां से हटवाने की व्यवस्था करें। लेकिन मंत्री ने

राजा की सहमति से उस व्यक्ति के चारों ओर एक गह्वर बनवा दिया। समय बीतते हुए उस राजा की भी मृत्यु हो गई। फिर उनके पुत्र ने राजगद्दी संभाली। फिर उसने मंत्री से कहा कि दादा और पिताजी ने मिलकर बीच सभा में इस गह्वर का निर्माण करवा डाला, इसे तुड़वाने की व्यवस्था करें। उस गह्वर को तुड़वाया गया। गह्वर के भीतर वह व्यक्ति ज्यों-का-त्यों जड़वत् बैठा मिला। फिर राजा के आदेश पर अन्य साधु, जिन्हें सांस क्रिया और उसके नियंत्रण की सम्पूर्ण जानकारी थी, उन्होंने उस व्यक्ति के सम्मुख बैठकर मंत्रोच्चार किया, फलतः उस व्यक्ति की श्वास लौट आई। उसे जैसे ही होश आया, उसने महाराजा को प्रणाम किया और कहा - "महाराज! लाइए मेरा उपहार, मुझे वह घोड़ा दे दीजिए, जिसकी शर्त लगी थी। मैंने जो कहा था कर दिखाया।" इतना सुनते ही उस साधु ने व्यक्ति को पैर से एक जोर की ठोकर मारते हुए कहा कि "नालायक! तुमने अपनी तपस्या केवल एक घोड़े के लिए की। इतनी तपस्या यदि तुमने परमात्मा के लिए की होती तो शायद तुम्हें परमात्मा की प्राप्ति हो जाती।"

इसलिए मैं कहता हूं कि आप प्रदर्शन से बचें और वास्तविकता में जीएं। आप अपने हाथ-पांव, शरीर व अपनी वाणी परमात्मा को समर्पित कर दें, आप जो भी कार्य करें समर्पण भाव से करें। आपका अपना कुछ नहीं है, आप बस परमसत्ता की अंगुली पर नाचने वाले कठपुतले हैं। आप ऐसी भावना को अपनाएं, तभी जीवन सार्थक हो सकता है।

•

48

पहले अहंकार की दीवार को ढहाओ

आचार्य श्री सुदर्शन कहते हैं कि मैं तो इन्हीं बातों की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा कि आप इन कथाओं के माध्यम से अपने जीवन में एक नैतिक मूल्य का आवरण चढ़ाने का प्रयास करें, ताकि बुराई आपके पास तक न फटके। लेकिन यात्रा पर तो स्वयं आपको ही निकलना होगा। यह यात्रा आपकी है, इस यात्रा से सिद्धि आपको ही लेनी है, साधना आपको करनी है। यह तो सम्पूर्ण रूप से व्यक्तिगत बात होती है। कोई यदि ऐसा कहे कि मुझे जो सिद्धि मिली, उससे आपको भी कुछ मिलने वाला है, यह संभव नहीं है। मेरी साधना से आपको क्या मिलने वाला है? आपको अपने लिए अपनी साधना स्वयं ही करनी होगी और आपको अपनी यात्रा पर भी स्वयं ही निकलना होगा। इसलिए मैं कहता हूं कि कथा और आपके बीच में जो दीवार खड़ी है, पहले उसे ढहाने का प्रयत्न करें। आप पूछेंगे कि ये दीवार है क्या? तो यह दीवार है आपके षड्विकार, अभिमान और घमंड की। जो आपको आपके 'मैं' होने का बोध करा रही है, वही तो दीवार है। आप उस 'मैं' को ढहा दें ओर जब तक आपका 'मैं' ढहेगा नहीं, तब तक वह 'तू' बना रहेगा, फिर 'तू' और 'मैं' के बीच मे ंजो दीवार खड़ी है उसी दीवार को ढहाने की आवश्यकता महसूस होती है। जब तक वह दीवार नहीं ढहेगी, तब तक 'तू' और 'मैं' के बीच में झूलते रह जाएंगे, क्योंकि अहम् का विसर्जन ही तो त्याग है।

जब तक आपका 'मैं' खड़ा है, तब तक न तो कोई राम या कृष्ण कथा आप पर कारगर हो पाएगी और न ही कोई कहानी और न ही वेद-पुराण। कुछ लोग अपनी जवानी को 'मैं' कहते हैं, कुछ लोग अपने होने को मैं कहते हैं, कुछ लोग अपनी सम्पत्ति को 'मैं' कहते हैं। सम्पूर्ण रूप से यह घर 'मेरा' है। यह जमीन 'मेरी' है, बेटा 'मेरा' है, पत्नी 'मेरी' है, यह सब कुछ सिर्फ 'मेरा' है। बस! यहीं तो दीवार लग गई। जिस दिन यह दीवार ढह जाए, उस दिन आपका 'मैं' पूरी तरह से ढह जाएगा। उसके उपरान्त किसी भी राम कथा का सीधा प्रवाह आपके जीवन में होना आरम्भ हो जाएगा।

•

49

षड्विकारों से मुक्ति ही असल धर्म

हरेक जातक जन्म के समय चार मूल प्रवृत्तियों को लेकर ही जन्म लेता है। ये मूल प्रवृत्तियां हैं-आहार, निद्रा, भय और मैथुन। जो इस जीवन को चलाने के लिए आवश्यक होती हैं, लेकिन इसके अतिरिक्त जो षड्विकार हैं वे जीवन को नष्ट कर देते हैं। इन विकारों के कारण जीवन का कोई भी उद्देश्य पूरा नहीं होता और जातक कुमार्ग पर चलकर पूरी तरह अनैतिक हो जाता है। जीवन तो सरल है, लेकिन उम्र बढ़ने के साथ हम स्वयं काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और ईर्ष्या को अपने जीवन में धारण कर लेते हैं, जिससे जीवन की सरलता नष्ट हो जाती है।

शरीर जब अपना प्रकृति धर्म छोड़ देता है, तो षड्विकार जीवन को अपना दास बना देता है। इन विकारों के कारण हम अपने मूल धर्म से गिर जाते हैं और बाहर से आरोपित प्रवृत्तियों का मुखौटा लगाकर खड़े हो जाते हैं। हम वह नहीं होते, जो हमारा मौलिक गुण है। हम इन विकारों के दास बन जाते हैं और जीवन के तमाम अनैतिक आचरण को धारण कर लेते हैं। यदि हमारा जीवन इन षड्विकारों से मुक्त हो जाए, तो हम सार्थक जीवन जीने लगते हैं। आज जो लोग सत्संग में बैठते हैं, उनके जीवन में यदि किसी परिवर्तन की संभावना नहीं दिखती हो, तो उनके लिए सत्संग निरर्थक हो जाता है। इसी प्रकार 'क्रोध' शरीर का धर्म नहीं है। यह आरोपित व स्वयं द्वारा अर्जित विकार है। यदि क्रोध हमारा धर्म होता, तो दूसरे के कारण उत्पन्न नहीं होता। क्रोध हमेशा

दूसरों के कारण होता है और हमारे शरीर को क्षत-विक्षत कर देता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि गलती कोई दूसरा करता है और क्रोध करके हम अपने शरीर को सजा देने लगते हैं। कोई अकेला व्यक्ति क्रोध नहीं कर सकता, इसके लिए दूसरों का होना आवश्यक है। क्रोध के प्रभाव में ग्रस्त होते ही हमारा शरीर असंतुलित हो जाता है। आंखें लाल हो जाती हैं। नथुने फड़कने लगते हैं। शरीर कांपने लगता है। बुद्धि काम करना बंद कर देती है। ऐसी ही अवस्था में मनुष्य अनर्थ कर बैठता है। शरीर से जब विवेक नष्ट हो जाए तो मनुष्य पशु बन जाता है और वैसा ही आचरण भी करने लगता है। कभी-कभी ऐसे ही लोगों का रक्तचाप बढ़ जाता है और ब्रेन हेमरेज के कारण उसकी मृत्यु तक हो जाती है।

क्रोध साधक का सबसे बड़ा अभिशाप है। क्रोधी व्यक्ति न तो साधना कर सकता है, न हंस सकता है और न ही आनंद का अनुभव कर सकता है। वह स्वस्थ नहीं रह सकता तथा बीमारियों में फंसा रहता है। कब्ज से परेशान रहता है। क्रोध के कारण उसकी जीवनी-शक्ति नष्ट होती रहती है, अतः वह रुग्ण, बीमार व निस्तेज होकर अल्पायु ही जी पाता है। इस प्रकार क्रोध एक बीमारी है। इसलिए क्रोधी से घृणा नहीं, बल्कि सहानुभूति होनी चाहिए। ऐसे व्यक्ति के उपचार का सबसे सरल उपाय यह है कि वह एकांत सेवन करे। ध्यान के माध्यम से विकारों को नष्ट करने का प्रयास करे, क्योंकि साधक जब तक क्रोध पर विजय प्राप्त नहीं करेगा, तब तक साधना में उतर नहीं सकता।

•

50

जीवन को आध्यात्मिक कैसे बनाएं

आज के भागदौड़, तनाव-चिन्ता और अशांति की दौड़ में लोगों ने अब अपने जीवन के महत्त्व को समझना शुरू कर दिया है। अब लोगों को लग रहा है कि जीवन के अर्थ को समझना चाहिए। इधर हाल के वर्षों में लोगों ने बाहर की बनावटी चकाचौंध और छलावे को जीवन मान लिया है। जिस कारण लोगों का जीवन दु:ख और तनाव से भर गया। अब बात समझ में आई कि अभी जो जीवन जी रहे हैं वह जीवन जीने की विधि नहीं है। क्योंकि जिस विधि से जीवन में सुख पैदा हो निश्चित रूप से वह विधि गलत है। अगर आज जीवन जीने की जो विधि है वह सही है तो जीवन में इतना तनाव क्यों है इतने सारे लोग सड़कों पर क्यों भटक रहे हैं। आज तो लोगों के पास धन-वैभव है, सुख-सुविधाएं हैं। अगर यही जीवन का उद्देश्य है तो ऐसे लोग हारे हुए, मुरझाए हुए भारत के संतों के पास क्या खोज रहे हैं बरगद के पेड़ के नीचे लंगोटी पहना हुआ एक संत बैठा हो और बड़ी-बड़ी गाड़ियों वाले उद्योगपति उनके चारों ओर हाथ जोड़े खड़े हों। प्रश्न है कि इन उद्योगपतियों को इन संतों से क्या चाहिए सब कुछ तो है ही इनके पास धन, संपत्ति, गाड़ी, बंगला, सुख-सुविधा। अब किस चीज की कामना लेकर लोग संतों के पास हाथ जोड़े खड़े हैं। अवश्य ही इन्हें वैसा कुछ चाहिए जो आज की जीवन की विधि ने उन्हें दिया है।

सचमुच यह निश्चय करना पड़ता है कि जीवन में हमें क्या चाहिए? सुख चाहिए या धन चाहिए। अगर सुख चाहिए तो उसका दूसरा रास्ता

है, धन चाहिए, मार्ग अलग-अलग है। पहले उद्देश्य को निश्चित करना पड़ता है। लोगों के मन में यह भ्रम है कि धन मिल जाने पर उनमें अहंकार बढ़ता है और अहंकार से शांति नहीं मिलती। शांति मिलती है त्याग से, विसर्जन से।

भारत में लोगों ने आज तक धन के लिए जीवन का उत्सर्ग नहीं किया। जीवन के महत्त्व को सुखी बनाने का निरंतर प्रयास किया। हम जानते हैं कि सुख अर्जन से नहीं मिलता, त्याग से मिलता है। जो त्याग कर सकता है उसे सुख मिलता है। जो संग्रह करता है उसे दु:ख मिलता है। इसलिए भगवान बुद्ध और महावीर जैसे संतों ने त्याग करके सुख प्राप्त किया। जब मनुष्य त्याग करना सीख लेता है तो वह सुखी होने की विधि भी सीख लेता है।

मैंने सुना है कि एक संत थे। वे हमेशा कहते थे कि जो व्यक्ति धन को त्याग कर गरीबी प्राप्त करता है। उसे गरीबी में भी अपार सुख मिलने लगता है। क्योंकि कोई भी त्याग मन की गांठ खुलने से ही होता है। मन की गांठ खोलना महत्त्वपूर्ण है। जब तक संग्रह की गांठ पड़ी रहेगी मन में सुख नहीं आ सकता। भरत ने राज्य सिंहासन का त्याग कर जो सुख, मान-मर्यादा प्राप्त किया। वैसा किसी अन्य को सौभाग्य नहीं मिला। हमारे देश में गरीबी को दरिद्र नारायण कहा जाता है। इसका अर्थ है कि जिनके पास धन नहीं है उनके पास अहंकार भी नहीं है। अहंकारी व्यक्ति कभी भी परमात्मा से नहीं मिलता। अहंकारी व्यक्ति परमात्मा के सामने समर्पण नहीं कर सकता। वह अपने अहंकार की रक्षा के लिए हमेशा सतर्क रहता है। सतर्कता में उनकी शांति चली जाती है।

प्रश्न यह है कि **हम अपने जीवन को आध्यात्मिक कैसे बनाएं?** दरअसल, जीवन तो आध्यात्मिक है ही। उसे आध्यात्मिक बनाने की क्या आवश्यकता है। प्रश्न तो यहां है कि हमारे आध्यात्मिक जीवन में जो विकार आ गए हैं उसे कैसे नष्ट करें। तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन पर जो धूल चढ़ी है उस धूल को झाड़ने की आवश्यकता है। जीवन तो प्रत्येक व्यक्ति का आध्यात्मिक है। क्योंकि जीवन परमात्मा का आशीर्वाद है। जब मनुष्य अपने कार्यों और विचारों से स्वयं अपने जीवन में विकार

भर लेता है तो उसमें हमारे जीवन का क्या दोष है जीवन की पवित्रता मनुष्य स्वयं नष्ट करता है। जीवन तो परमात्मा का दिव्य प्रकाश है। जीवन के रोम-रोम में परमात्मा का निवास है। अगर मनुष्य स्वयं अपने सुन्दर जीवन को नष्ट कर लेता है तो इसमें जीवन का दोष नहीं है। बुराई अथवा बुरी आदतें जीवन के साथ पैदा नहीं होतीं। इसे हम अपने ऊपर आरोपित कर लेते हैं। जीवन को आध्यात्मिक बनाने के लिए केवल आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने जीवन को पहचानें और जीवन का मूल उद्देश्य है उसे पूरा करने का प्रयास करें। जीवन का मूल उद्देश्य वासना पूर्ति और कामनाओं का भंडार संग्रह नहीं है जब तक जीवन में परमात्मा का बोध नहीं होगा, जब तक हम प्रत्येक कार्य के लिए परमात्मा को साक्षी नहीं मानेंगे, तब तक जीवन में विकार बढ़ता जाएगा। हम जो भी करें यह मान कर करें कि मेरे कार्यों को परमात्मा देख रहा है, मेरा प्रत्येक कार्य परमात्मा को समर्पित है। परमात्मा की ओर से जब हम काम करेंगे तो उसमें कभी भी बुराई नहीं आ सकती।

हमारा जीवन आध्यात्मिक है। केवल बुराई से बचने की आवश्यकता है। बुराई को पहचानें, उसे नष्ट करें। बुराई के नष्ट होते ही हमारे जीवन में दिव्य प्रकाश फैल जाएगा और हमारा जीवन स्वतः आध्यात्मिक बन जाएगा।

•

51

मोह का त्याग ही है भक्ति का मार्ग

साधक के मार्ग का पांचवां अवरोधक मनोविकार है–मोह। दरअसल, मोह जड़ता का प्रतीक है, जो मनुष्य में विवेक को जागृत नहीं होने देता। कोई साधक जब तक किसी विकार से ग्रसित रहेगा, वह साधना में नहीं उतर सकता, क्योंकि साधना निर्विकार की परिणति है। जब विचार गिर जाए, मोह और ममता की दीवार ढह जाए और व्यक्ति का होना विसर्जित हो जाए, तभी साधक को साधना की अनुभूति होती है। परमात्मा ने मनुष्य को निर्विकार, सरल और सभ्य जीवन जीने के लिए अवतरित किया, लेकिन उसने स्वयं अपने चारों ओर मोह और ममता का मायाजाल निर्मित कर स्वयं को फंसा लिया।

मनुष्य ने जितना दु:ख, चिंता व भय अपने जीवन में आमंत्रण देकर बुलाया है, सब उसकी अपनी कल्पना का फल है। ईश्वर ने मनुष्य के लिए कोई जाल नहीं बनाया, उसने स्वयं अपने हाथों से उन जालों को बनाया और स्वयं उसमें फंसते चले गए। मोह का मायाजाल व्यक्ति की अपनी मानसिक रुग्णता का परिणाम है। जिस प्रकार रस्सी को सांप समझकर हम भागने लगते हैं और बाद में वस्तुस्थिति समझकर अपनी ही मूर्खता पर हंसने लगते हैं, ठीक वही स्थिति वैसे मनुष्य की होती है जो अकारण किसी वस्तु से मोह कर लेता है और फिर पछताने लगता है। मोह के कारण जिस वस्तु से उसे लगाव हो जाता है, बाद में वही उसे कांटे की तरह चुभने लगती है। वस्तुओं का संग्रह और उससे लगाव मोह की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। वस्तुओं का संग्रह कर हम तृप्त होना

चाहते हैं, संतुष्ट होना चाहते हैं और जब संग्रहकर्ता को उससे संतोष नहीं होता तथा मोह के कारण और अधिक संग्रह की लिप्सा बढ़ती जाती है। पता चलता है कि इस संग्रह की प्रवृत्ति का मायाजाल कितना बढ़ता जा रहा है। मोह के कारण जिन वस्तुओं से मन में संतोष और आनंद की अनुभूति न हो तो बड़ी निराशा होती है।

मोह अभाव से उत्पन्न होता है और अभाव का अर्थ है कि व्यक्ति भीतर से खाली है। भीतर जो खाली है, व्यक्ति के भीतर के आकाश में खोखलापन है तो वह भीतर के अभाव को भरने के लिए बाहर की वस्तुओं के संग्रह के मोह में पागल हो जाता है। भीतर का अभाव ही बाहर से भरने की उत्सुकता पैदा कर देता है। इसीलिए लोग संपत्ति अर्जन के मोह में फंसे रहते हैं और संग्रह हो जाने पर उसका कोई उपयोग नहीं करते और उस संपत्ति को सहेजकर बैंक के लॉकर में रख देते हैं। दूसरी ओर साधनापथ पर चलने वाले साधकों ने यह मान लिया है कि बाहर की वस्तु का मोह निरर्थक है। अतः यदि मोह करना भी हो तो अपनी आत्मा से करना चाहिए, वस्तुओं से नहीं। मोहशक्त व्यक्ति अपने भीतर से टूट जाता है। इसलिए वह बाहर से जोड़ना चाहता है। साधक के लिए मोह का पतन पांचवां मार्ग है। मोह के मायाजाल में फंसा मनुष्य साधना के क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकता। जब तक हम मनोयोगपूर्वक षड्विकारों से मुक्त होकर परमात्मा के अतिरिक्त को अंतर्मन में धारण करने का संकल्प नहीं लगे, तब तक सत्संग का फल हमें कैसे प्राप्त होगा?

•

52

भक्ति के लिए ईर्ष्या का शमन जरूरी

ईर्ष्या मनुष्य के चरित्र के पराभव का छठा द्वार है। यह ऐसा मनोविकार है, जिससे मनुष्य का मौलिक व्यक्तित्व बुरी तरह आहत हो जाता है। ईर्ष्या एक भयानक मनोरोग है, जो अकारण मनुष्य को दंडित करती रहती है। इसके कारण मनुष्य का सारा व्यक्तित्व विकृत हो जाता है, उसकी अपनी क्रियात्मक शक्ति नष्ट हो जाती है, जिससे उसके अपने व्यक्तित्व को कुछ लेना-देना नहीं रहता है। ईर्ष्या हमेशा दूसरों के कारण होती है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति खुद से ईर्ष्या नहीं करता, उसके लिए दूसरे का होना आवश्यक है। अकेला व्यक्ति कभी भी ईर्ष्या का शिकार नहीं बनता, उसके सामने जब दूसरा आ जाता है तब उसकी जलन बढ़ जाती है।

समाज में घर या मोहल्ले में जब आदमी रहता है तो उसके मन में न ईर्ष्या होती है, न कोई जलन होती है। आदमी अकेले वर्षों रह सकता है, लेकिन कभी भी वह ईर्ष्या का पात्र नहीं बनता, लेकिन ज्यों ही दूसरा उसके बगल में बैठ जाता है तो ईर्ष्या शुरू हो जाती है। दरअसल, कोई भी व्यक्ति दूसरे को सहन नहीं कर सकता। वह चाहे राजनीति का क्षेत्र हो, धर्म का क्षेत्र हो, समाज या परिवार का हो, कहीं भी हम दूसरे को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। सारा गड़बड़ तब शुरू होता है, जब कोई दूसरा बगल में खड़ा हो जाता है। केवल दूसरे के होने से हम ईर्ष्या के दंश को झेलने लगते हैं। साधक कभी ईर्ष्या नहीं करता, क्योंकि वह साधना के क्षेत्र में अकेला होता है। झगड़ा तो तब बढ़ता है, जब

एक ही काम दो व्यक्ति करना चाहते हैं। दुनिया के जितने भी काम हैं वे सारे एक-दूसरे के लिए किए जाते हैं। कोई धन के लिए, कोई पद के लिए, कोई अपने अस्तित्व के लिए दिन रात प्रयत्न कर रहा है, लेकिन जब कभी वह देखता है कि इस काम में कोई दूसरा आकर अर्थ या पद का दावेदार बनना चाहता है तो उसके मन में ईर्ष्या होने लगती है। ईर्ष्या का न कोई ठोस कारण होता है और न कोई औचित्य होता है, यह तो अकारण किया हुआ प्रयास है।

कभी-कभी तो हम ऐसे लोगों से ईर्ष्या करने लगते हैं, जिन्हें हम पहचानते तक नहीं। कई बार तो हम अपने बगल के मकान से ईर्ष्या करने लगते हैं, दूसरे के शानो-शौकत से ईर्ष्या करने लगते हैं, दूसरे की पत्नी और बेटे से ईर्ष्या करने लगते हैं और सबसे बुरी बात तो यह है कि हम दूसरे की उन्नति देखकर ईर्ष्या करने लगते हैं। ईर्ष्या करने वाला व्यक्ति अध्यवसायी नहीं होता, परिश्रम नहीं करता, हमेशा आग में जलता रहता है। दूसरे की उन्नति और प्रगति देखकर जलने वाला कभी जीवन में यशस्वी नहीं हो सकता। यश, मन, मर्यादा, पद, प्रतिष्ठा आदि मनुष्य को अपने कर्मों से मिलता है। ईर्ष्यालु व्यक्ति बिना परिश्रम के फल खाना चाहता है और उसी लालसा में उसका जीवन नष्ट हो जाता है। इसलिए भक्त कभी दूसरे की ओर नहीं देखता, हमेशा अपनी ओर देखता है। हमेशा दूसरे के बारे में सोचने वाला कभी आत्मचेतना को विकसित कर बुद्ध, महावीर व ईसा मसीह नहीं बन सकता। इसलिए बाहर भागने के बजाए भीतर जाओ।

•

53

साधना की अतल गहराई

अपने काम को जब हम नीचे की ओर गहरे तल सुपर अनकांशियसनेस (सुपर अवचेतन) की तरफ उतारते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि इस तल में अचेतन का कितना प्रभाव मौजूद है। जब हम अचेतन और उसके प्रभाव को समझ लेते हैं तो हमारे लिए ऊपर सुपर अनकांशियसनेस का दरवाजा खुल जाता है। जब हम थोड़ा और नीचे कलेक्टिव अनकांशियसनेस की ओर बढ़ते हैं तो हमारे लिए ऊपर का कलेक्टिव अनकांशियसनेस का दरवाजा खुल जाता है। हम थोड़ा और नीचे उतरते हैं कॉस्मिक अनकांशियसनेस की ओर तो हमारे लिए सबसे ऊपर का कॉस्मिक कांशियसनेस का दरवाजा खुल जाता है। इसी को ब्रह्मचेतन द्वार कहते हैं। जब हम इन दरवाजों के माध्यम से गहरे पानी में उतरते हुए अचेतन के पास पहुंच जाते हैं तो सिद्ध पुरुष ब्रह्म बन जाते हैं।

जब कोई साधक साधना के क्षेत्र में प्रवेश करता है तो उसकी सारी इंद्रियां अंतर्मुखी हो जाती हैं, क्योंकि इंद्रियों के माध्यम से हमारा मन बाहर की ओर दौड़ने लगता है। कभी काम के क्षेत्र में, कभी लोभ और कभी क्रोध के क्षेत्र में। वह कभी भी, किसी भी दिशा में भागने लगता है और उसका वेग काफी तीव्र होता है। जब हम अपने बाहर के सभी दरवाजों को बंद कर लेते हैं तथा अपनी इंद्रियों को भीतर की ओर मोड़ लेते हैं तो फिर उसके आगे का सारा रास्ता बंद हो जाता है। बाहर जाने का रास्ता बंद होने पर स्वाभाविक रूप से हमारी सारी इंद्रियों का वेग अंतर्मुखी हो जाता है। उस वेग के अंतर्मुखी होते ही जब वह चेतना के

स्तर पर पहुंचेगा, तो फिर हम अवचेतन की ओर बढ़ेंगे। इसी प्रकार एक-एक पायदान नीचे की ओर उतरते चले जाएंगे और पाएंगे कि इसी रफ्तार से हमारा विस्तार ऊपर की ओर होता जा रहा है। हम तो केवल यही चाहेंगे कि हम चेतन क्षेत्र में प्रवेश करें, लेकिन बिना नीचे की ओर गए यह कैसे संभव है। ऐसा कर पाना किसी भी साधक के लिए असंभव सी बात होगी क्योंकि प्रकृति ने तो सुख-दुःख, भोग-विलास, स्त्री-पुरुष सभी कुछ बना दिया है। यदि कोई पूछे कि क्या आप पुरुष को पहचानते हैं तो आपका जवाब होगा कि जो स्त्री नहीं है, वही पुरुष है। फिर हम स्त्री किसे कहते हैं? इसका जवाब है, जो पुरुष नहीं है या जिसमें पुरुषों वाले गुण नहीं हैं, वह स्त्री है। यहां एक को समझने के लिए दूसरे को जानने की आवश्यकता है। यदि हम पूछेंगे कि स्वस्थ किसे कहते हैं तो आप कहेंगे कि जो निरोगी है, वही स्वस्थ है। अब स्वस्थ को समझने के लिए रोग को कहां से लेकर आ गए। यह सब तो केवल समझ का फेर है लेकिन ब्रह्म अचेतन को समझने के लिए हमें सबसे पहले ब्रह्म चेतन को समझना पड़ेगा।

जब हमारी गहराई वहां तक पहुंचने लगती है तो हम समझ जाते हैं कि हमारे जीवन में आनंद का फूल खिल गया है। अमृत का घूंट और स्राव जब हमारे जीवन में उतर गया तो फिर हमें अन्य किन चीजों की आवश्यकता होगी? यह संभव है लेकिन यह प्रयास कितने लोगों ने किया है। इतनी गहराई प्राप्त कर लेने के बाद भी यदि कोई व्यक्ति मोती के कलश को समुद्र तल से डुबकी लगाकर बटोरता है और उन मोतियों को आपके सामने बिखेरता है तो महसूस करें कि उस व्यक्ति ने कुछ हासिल किया है तो मैं भी कुछ हासिल करूं। साधना दूसरे के लिए और दूसरे के द्वारा कभी भी नहीं की जा सकती है। साधना में तो साधक को स्वयं उतरना पड़ता है। साधना तो करने की चीज है और जब आप उस क्षेत्र में प्रवेश कर जाएंगे तो ही आपकी साधना होगी।

•

54

अहंकार का त्याग ही भक्ति है

परमपूज्य आचार्य श्री सुदर्शन जी महाराज कहते हैं कि आज दुनिया में कई देशों के लोग इस विधि को जानने-समझने लगे हैं। टी.वी. चैनलों के माध्यम से नियमित इन विधियों की चर्चा हो रही है। प्रारंभ में मैं उन्हें बताता हूं कि तुम अपने सुबह के समय को आनन्ददायक बनाओ। सुबह जगते ही संसार की सारी कुराफातें हमारे दिमाग में दौड़ने लगती हैं। एक तो देर से उठते हैं। टी.वी., अखबार की खबरों को पढ़कर अपने मन को अशांत बना लेते हैं और सुबह में जब मन अशांत हो जाता है तो दिन भर ऑफिस अथवा व्यापार में अशांत बने रहते हैं। इसलिए मैं लोगों को कहता हूं कि प्रात:काल जगो, लाल सूर्य का दर्शन करो। संभव हो तो किसी से बातचीत मत करो। स्नान आदि से निवृत्त होकर अपने घर के मंदिर में शान्त भाव से बैठो और परमात्मा से अपनी कुशलता के लिए याचना करो। यह भी याचना करो कि हे परमात्मा तुम दयालु हो, मेरे शरीर को स्वस्थ रखो। मन और विचार को विवेकपूर्ण बनाओ। तुमने बड़ी कृपा की है कि इतना सुंदर शरीर दिया, धन-वैभव और सुखी परिवार दिया। यह सब कुछ तुम्हारा दिया हुआ है। मेरा कुछ नहीं है। मेरे मन के अहंकार और बुरे विचारों को नष्ट करो। मुझे सुख दो। ऐसी प्रार्थना परमात्मा से प्रतिदिन करो। वह तुम्हें हमेशा संकटों से मुक्त रखेगा। क्योंकि संसार में कोई भी संकट ऐसा नहीं है जो परमात्मा से भी बड़ा हो। अपना सारा संकट, अपनी चिंता, अपनी बीमारी, धन वैभव, अहंकार, क्रोध, दुर्गुण सब परमात्मा को समर्पित कर दो। क्योंकि

भगवान ने स्वयं गीता में कहा कि जब तुम अपना सुख-दु:ख, हानि-लाभ मुझे समर्पित कर दोगे तो तुम्हारी पूरी जवाबदेही मेरी होगी। मनुष्य प्रतिदिन अहंकार के घोड़े पर बैठकर अपना सर्वनाश करता है। अहंकार का त्याग ही भक्ति है। मेरा यह व्यक्तिगत अनुभव है कि मनुष्य अपनी हानि और लाभ के लिए स्वयं जिम्मेदार हैं। आश्रम में आज जो भी लोग अपनी शान्ति के लिए आते हैं, मैं उन्हें परामर्श देता हूं कि तुम अपना नैतिक जीवन जीना शुरू करो। अपने जीवन से प्रदर्शन को बंद करो। यह प्रदर्शन और अपने बारे में झूठ बोलना तुम्हारे जीवन में अनेक दु:ख पैदा कर देगा, जैसे तुम हो वैसा ही तुम दिखते भी। झूठ के पांव नहीं होते, तुम्हारा एक झूठ तुम्हें हमेशा परेशान करता रहेगा। इसलिए अपने जीवन को सरल बनाओ। प्रदर्शन से बचो। यही सहज और सरल जीवन का मार्ग है। ध्यान रखो कि प्रात:काल का समय हर हालत में शान्तिपूर्ण ढंग से बीते। अगर प्रात:काल तुमने अपने क्रोध पर नियंत्रण कर लिया तो दिनभर तुम हंसते-मुस्कुराते रहोगे। प्रतिदिन प्रात:काल परमात्मा के सामने नए संकल्प के साथ अपना दिन प्रारंभ करो। दो-चार दिन में ही तुम्हें शान्ति मिलने लगेगी। एक बात और ध्यान रखना चाहिए कि रात में सोते समय परमात्मा को धन्यवाद देना न भूलें। प्रार्थना करें कि हे परमात्मा तुम्हारी कृपा से आज का दिन शान्ति से बीत गया। मुझे आशीर्वाद दो कि अगला दिन शान्तिपूर्ण ढंग से बीते। इस तरह की मौन प्रार्थना करने का अभ्यास डालो। परमात्मा सर्वविध तुम्हारा कल्याण करेगा।

•

55

अहं बाधक है ईश्वर की प्राप्ति में

अगर कोई व्यक्ति बचपन में ही बैरागी बन जाए और जीवन भर बैरागी ही बना रहे तो क्या वह व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर लेगा? नहीं! ऐसा करने का सिद्धि से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। उसने बैराग ओढ़ लिया, ओढ़ा हुआ तो अपना नहीं बनता। कोई भी ओढ़ी हुई वस्तु या खाल या चादर आपकी तो हो ही नहीं सकती है, उसे तो आपको उतारकर रख देना ही होगा। जिस प्रकार **भगवान श्रीकृष्ण** गीता में कहते हैं कि *यह शरीर एक वस्त्र की तरह है, जब आत्मा का वस्त्र यानी हमारा शरीर पुराना हो जाता है तो फिर आत्मा इस वस्त्र रूपी शरीर को बदल लेती है।* जब यह शरीर भी हमारा नहीं है तो फिर 'मैं' क्या हुआ? तो 'मैं' तो आत्म तत्त्व हूं, जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में भी कहा कि 'मैं' ही तो आत्मा हूं, उसके सिवा और क्या हो सकती है आत्मा? इसके अलावा एक और आत्मा हो सकती है, जिसे हम परम तत्त्व की आत्मा कहते हैं। जिसका प्रकाश हम सारी सृष्टि में देख रहे हैं और सम्पूर्ण सृष्टि में उस प्रकाश को अनुभव कर रहे हैं, वही तो परमात्मा है। इसलिए यह जरूरी है कि आप इन कथाओं में आएं या सत्संगों में, आप अपने 'मैं' को बाहर ही छोड़कर आएं।

अगर कोई यह पूछता हो कि कौन आया है तो आप कहेंगे 'मैं'। तो फिर यह 'मैं' का अर्थ क्या हुआ? क्या 'मैं' का अर्थ आपके सिर से लगाया जाए, आपकी छाती से लगाया जाए, आपके पांव या फिर आपके वस्त्र से। 'मैं' अर्थात् क्या? जिस 'मैं' का अनुभव आपको भी

नहीं है, आप तो सिर्फ शब्दों से खेल रहे हैं, उसी 'मैं' से तो अहम् बना है और उसी अहम् को ढहाने की जरूरत है। जब तक आपका यह अहम् नहीं ढहेगा, तब तक आप परमात्मा के क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकते हैं। क्योंकि –

प्रेम गली अति सांकरी, जा में दो न समाय।

'मैं' और 'परमात्मा' दोनों एक साथ किसी प्रदेश में प्रवेश नहीं कर सकते, जब तक कि आपका अहम् न ढह जाए, आपका 'मैं' होना बन्द न हो जाए।

•

56

मोह का क्षय हो जाना ही मोक्ष है

मोक्ष की चिंता तो लगभग प्रत्येक साधक को होती है, प्रत्येक गृहस्थ को होती है, प्रत्येक व्यापारी और अन्य लोगों को भी रहती है कि हमें मोक्ष कैसे मिले? सबसे पहले तो हमें इस बात को समझना है कि मोक्ष का अर्थ क्या होता है? मोक्ष का अर्थ होता है कि जब जीवन से मोह का क्षय हो जाए। जब जीवन से मोह का नाश हो जाए, उसे हम मोक्ष कहते हैं। मोक्ष अर्थात् हमारे मोह का क्षय हो जाना। जब उपनिषद पढ़ोगे तो उसमें लिखा पाओगे **अक्षरः ब्रह्म।** अर्थात् *ब्रह्मा तो एक अक्षर* है। यहां अक्षर का अर्थ हुआ *'वह जिसका कभी क्षरण न हो सके, जिसका नाश न हो, स्थायी है, जो सत्य हो'।* जैसे सत्य का नाश नहीं हो सकता है, उसी प्रकार अक्षर का भी कभी नाश नहीं होता है। जितने भी शब्द हम लोग प्रवचनों में उछालते हैं, जितने भजन कीर्तन हो रहे हैं, नृत्य और संगीत होते हैं, नेताओं के भाषण हो रहे हैं, ये सब के सब वातावरण में एकत्रित होते रहते हैं, उन शब्दों का कभी भी नाश नहीं होता है, क्योंकि ये शब्द अक्षर से बने हुए हैं।

क्या तुम मोह को छोड़ सकते हो? माया-मोह के बंधन से आदमी मरने वाले दिन तक भी मुक्त नहीं होता है। उसे तो क्षण-प्रतिक्षण चिंता लगी रहती है कि इस मोह-बंधन में हम और अधिक-से-अधिक लिपट कर कैसे रहें?

हमारे शास्त्रों ने चार प्रकार के आश्रम बताए हैं, ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम। जब तुम वानप्रस्थ में प्रवेश

करने लगोगे, तब तुम्हारी अवस्था 50 साल की हो जाएगी, क्योंकि 50 के बाद 51 आता है और इस 51 का अर्थ होता है कि अब आपके पास एक वन बाकी है। अर्थात् आप वन की ओर प्रस्थान करिए।

हमारे देश में तो ऐसे संत हैं, जिनसे मिलने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ है। मैंने उनसे मिलकर महसूस किया कि उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन में कभी भी धन को अपने हाथों से स्पर्श तक नहीं किया। आज भी जगतगुरु शंकराचार्य और अखंडानंदजी सरस्वती जैसे संत लोग हुए, वे कभी भी अपने हाथों से पैसों को छूते नहीं थे। वे कहा करते थे कि तुम इन वैभवों और रुपए-पैसे से जितना सटोगे, तुम उतने ही मोहासक्त हो जाओगे। इसलिए तुम मुक्त होने का प्रयास करो। रामतीर्थ जैसे महान् संत भी अपने ही देश में हुए हैं। वे एक महान गणितज्ञ थे। उन्होंने गणित विषय से एम.एस.सी. की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। हम सबों को, जिनके मन में यह इच्छा है कि हमें मोक्ष की प्राप्ति हो और हम अपने जीवन से मोह को त्याग दें, तो फिर इसके लिए हमें कम-से-कम एक बार स्वामी रामतीर्थ के जीवन में अवश्य ही झांक कर देखना चाहिए।

•

57

भक्ति भाव से कथा सुनने पर ही लाभ

हम लोग तो आकार लेने वाले लोग हैं, हम लोग कभी मनुष्य, कभी पशु या अन्य कोई जीव-जन्तु बन जाते हैं, कभी कुछ होते हैं तो कभी कुछ। हम लोगों का केवल स्वरूप बदल जाता है। हमारे जीवन की यही भूल है, जिसे हम और भी भूलते जा रहे हैं। हम प्रत्येक चीजों में 'मैं' और 'मेरा' लगाते चले जा रहे हैं। हर चीज में कहते हैं कि यह 'मैं' हूं और यह 'मेरा' है। अगर आपकी दुनिया है तो फिर यह तो स्थायी होनी चाहिए। आपकी कोई दुनिया नहीं है, तो फिर आपका कुछ भी नहीं है। आप तो स्वयं एक मुसाफिर हैं, तो इस दुनिया की सराय में दो चार दिन के लिए आकर टिके हुए हैं। कल आप नहीं रहेंगे तो फिर आपकी नेम प्लेट बदल जाएगी। आज आपकी नेम प्लेट के बदले आपके बेटे की नेम प्लेट लग जाएगी। आप ध्यान दें, आज जो आपके पास जमीन है, सृष्टि के आदिकाल से लेकर कल तक उस जमीन पर किन-किन की नेम प्लेट लगी रही होगी।

जब सब कुछ सराय की भांति चल रहा है, जब सब कुछ क्षणभंगुर है तो फिर इसके बीच आप जो 'मैं' का डंडा लेकर खड़े हैं, यही आपको कथा सुनने से रोक रहा है। क्योंकि 'मैं' के पास तर्कबुद्धि होती है और आपका तर्क आपको कभी किसी निर्णय पर नहीं पहुंचने देगा। आप तर्क-वितर्क करते रह जाएंगे। आपकी कोई सीमा, उसका कोई

अन्त नहीं है, उसकी कोई व्यवस्था या नियम कानून नहीं है। जहां कहीं भी अन्त होता है, वह अंत तो समर्पण का होता है। यदि आप कथा में जाएं तो समर्पण करने को जाएं, अपने तर्क और बुद्धि को लेकर कदापि न जाएं। आप वहां विवेचना करने न जाएं, क्योंकि केवल इसी माध्यम से आप उस कथा का लाभ उठा पाएंगे। आपके पास जो षड् विकार हैं, उन्हें आप अपने घर पर ही छोड़कर जाएं। आप अपने अहम् का विसर्जन करके जाएं, तभी आप कथा के सम्पूर्ण लाभ को प्राप्त कर सकेंगे और उस कथा के तार से स्वयं को जोड़ पाएंगे।

•

58

प्रभु चिंतन पर छोड़ें सब

शुभ और अशुभ के विचार हमारे मन से उठते हैं। **भगवान श्री कृष्ण** ने **अर्जुन** को कहा कि तुम शुभ-अशुभ, लाभ-हानि, अच्छा-बुरा, से ऊपर उठो। मतलब यह कि "तुम केवल मेरा चिन्तन करो, स्वयं शुभ और अशुभ का विचार छोड़ दो। शुभ और अशुभ का निर्णय भगवान का काम है।" इन बातों से स्पष्ट होता है कि अगर अच्छे विचारों को पिचकारी की तरह केन्द्रित करके किसी भी बिन्दु पर लगाया जाए तो चमत्कारी फल मिलता है।

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए उसी तरह अपने ऊपर अच्छे विचारों को केन्द्रित करना चाहिए। इसलिए कि विचार सूक्ष्म हैं, हमें विचार को भाव रूप में अपने बारे में हमेशा अच्छे विचारों को मन में आने दें, बुरी बातें, आशंका, भय, नकारात्मक सोच को कभी भी निकट न आने दें। यह आपके पूरे जीवन को खा जाएगा। यह पूरी तरह वैज्ञानिक तथ्य है कि विचार से मनुष्य का चरित्र बनता है। **पतंजलि** जैसे महान दार्शनिक ने स्पष्ट कहा है कि ऊर्जा हमारे विचारों को प्रभावित करती है। इसलिए ऊर्जा का संग्रह अनिवार्य है। भौतिक वस्तुओं के सेवन से बाहर के शरीर को लाभ होता है और सूक्ष्म वस्तुओं के सेवन से सूक्ष्म शरीर अथवा अंतर्मन को लाभ होता है।

जैसे हमारा शरीर अणु और विभु से बना है। हमारा प्राण विभु है। जैसे हम गायत्री मंत्र का पाठ करते हैं। मंत्र मन का तंत्र है। प्राण पूर्णतः भाव रूप से शरीर में विद्यमान रहता है।

गायत्री प्राणः इति गांयत्री।

इसलिए जब कभी भी हम ध्यान में बैठते हैं तो कल्पना करते हैं, अपने मन में भाव करते हैं कि हमारा शरीर ब्रह्मांड से जुड़ गया है। और ब्रह्मांड से अपार शक्ति की वर्षा हो रही है। जो हमारे शरीर पर प्रवेश कर रही है। एक दिव्य आलोक अंतरिक्ष से प्रकाश किरण बनकर हमारे शरीर में प्रवेश कर रही है।

इस किरण की रश्मि से हमारे मस्तिष्क का एक-एक न्यूरोन, एक-एक कोशिका अणुप्राणित हो रही है। पूरे मस्तिष्क में प्रकाश किरण भर गई है फिर धीरे-धीरे इस किरण को मुखमंडल, आंख कान के एक-एक अणु पर उतारें। फिर गर्दन से होते हुए छाती में किरण को प्रवेश कराएं।

कल्पना करते रहें और परमात्मा शक्ति पर विश्वास करें कि यह किरण शरीर के लंग्स में प्रवेश कर रही है। फिर हृदय, किडनी, लीवर, पाचन क्रिया में किरण को प्रवेश कराते रहें। कल्पना करें कि प्रकाश को प्रवेश करवाते रहें। अगर सम्भव हो सके तो प्रकाश किरण को मूलाधार और सुषुमना नाड़ियों के माध्यम से ऊपर की ओर उठाएं। भाव करें कि मूलाधार से रीढ़ के माध्यम से ऊपर की ओर उठाएं भाव करें कि मूलाधार से रीढ़ के माध्यम से ऊपर की ओर बढ़ रही है और सहस्रार तक पहुंचने की कोशिश कर रही है।

विज्ञान भी कहता है कि रीढ़ के माध्यम से हार्मोन मस्तिष्क तक पहुंचता है। हार्मोन भी दो प्रकार के होते हैं एक पुरुष का हार्मोन जिसे एस्ट्रोजोन कहते हैं और स्त्री की हार्मोन को प्रोजिस्ट्रोन कहते हैं। मनुष्य के जीवन में भाव महत्त्वपूर्ण होता है संसार में मनुष्य जैसा भाव करता है वैसा ही उसका जीवन बनता है अगर मनुष्य के जीवन में प्रेम का भाव है तो प्रत्येक व्यक्ति उससे प्रेम करता दिखता है जब मनुष्य स्वयं दूसरों से घृणा करता है तो संसार के लोग घृणा करने लगते हैं।

•

59

होइहि सोइ जो राम रचि राखा

यदि तुम्हें मंत्र की शक्ति को परखना है, तो उसकी पूजा करके देखो। तुम्हारे व्यक्तित्व पर उसके उच्चारण का जो और जैसा प्रभाव पड़ेगा, उसे तुम स्पष्ट महसूस कर सकते हो, लेकिन इसके लिए तुम्हें परमात्मा के क्षेत्र में जाना होगा। यदि तुम्हें परमात्मा के क्षेत्र में जाना है तथा उसे प्राप्त करना है, तो कर्म करो। ऐसा करते समय इसमें रंचमात्र भी पीछे नहीं हटना है और यदि तुम पीछे हट गए तो समझ लो कि तुम्हारा काम खराब हुआ। इसीलिए कहा भी गया है-**करसे कर्म करौ विधिनाना। मन राखौ जहँ कृपा निधाना।**

अर्थात् *कर्म करते समय कभी भी विघ्न-बाधाएं नहीं आएंगी, यदि तुम उस कृपानिधान को याद रखोगे।* हालांकि यह सच भी है कि यदि तुम अपने हाथों से कर्म नहीं करोगे, पुरुषार्थ नहीं करोगे तो फिर यह दुनिया नहीं चलेगी। गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि "वही हाथ, हाथ है जो परमात्मा की सेवा में लगा हुआ है। वही पांव, पांव है जो परमात्मा की सेवा में लगा हुआ है। वही वाणी, वाणी है जो परमात्मा का गुणगान करती हो। वही मानव, मानव है जो प्राणिमात्र के काम आए।" इस प्रकार संत-महात्माओं ने तुम्हें जो इतनी सारी बातें कही हैं, उसे अपने जीवन में उतारो। साथ ही यह भी जान लो कि तुम्हारा यह शरीर नश्वर है, अतः इससे सत्य की ओर बढ़ते हुए कर्म करके दिखा दो, तभी तुम्हारे जीवन की सार्थकता होगी। हालांकि यह बात भी स्पष्ट रूप से जान लेनी चाहिए कि-

होइहि सोई जो राम रचि राखा। कोकरि तर्क बढ़ावै साखा॥

अर्थात् *तुम्हारे चाहने या न चाहने से कुछ होने वाला नहीं है। इससे किसी पर कोई फर्क नहीं पड़ने वाला, फर्क तो तब पड़ेगा जब परमात्मा चाहेगा और होगा वही जो परमात्मा ने तुम्हारे लिए निर्धारित कर दिया है।* वह भी काफी पहले, शायद तुम्हारे जन्म से भी पहले। यदि ऐसा नहीं होता तो तुम ही सब कुछ करने वाले हो जाते और तुम जो चाहते वही होता। यदि ऐसा होता तो हरेक व्यक्ति जगत पिता बन जाता। ऐसा होने पर तुम अकेले ही तमाम चीजें बन जाते। क्योंकि तुम चाहने में तो कमजोर हो नहीं, लेकिन यह संभव नहीं है। मैं तो यही कहना चाहूंगा और सही सलाह भी दूंगा कि चाहने वाले तो तुम ही हो, इसलिए तुम अपने दिमाग में यह बात डाल लो कि इस सृष्टि का संचरण और इसकी गतिशीलता परमात्मा के ही हाथ में है। फिर तुम भी तो इसी सृष्टि में हो, तुम परमात्मा और इस सृष्टि से अलग कहां हो। फिर तुम कैसे खड़े हो गए कि इसे मैं करूँ? वह तो संपूर्ण सृष्टि के जनक हैं। यहां के सारे लोग एक इकाई हैं और फिर सभी के सभी अपने चक्र पर घूमते चले जा रहे हैं। उदाहरण के लिए–पृथ्वी घूमती है तो क्या तुम इसके बगल में खड़े होकर बच सकते हो?

•

60

जीवन में आशा का दीप जला

आचार्य श्रीसुदर्शन जी महाराज का जीवन उन जीवन मूल्यों को समर्पित है, जो उन्हें जीवन सागर को मथकर उस अमृत की तरह पाया है जो सिंधु मंथन के पश्चात् देवताओं को प्राप्त हुआ था। जीवन को कड़ी साधना मानने वाले आचार्य श्री ने मानव-जीवन में फैली आशा-निराशा, सफलता-असफलता के कारणों पर आम जन का उनके स्तर पर जाकर अपने पावन सानिध्य में जो मार्गदर्शन प्रदान किया है उससे हजारों हजार लोगों ने न केवल अपने जीवन को सुधारा है बल्कि वे वास्तविक अर्थों में जीवन जीने लगे हैं।

आचार्य श्री कहते हैं कि 'प्रत्येक मनुष्य असंख्य संभावनाओं से भरा होता है। अगर हमने उन संभावनाओं को क्रियात्मक बना दिया, तो हम सफलता के शिखर पर पहुंच जाते हैं, और अगर हमारे जीवन में नकारात्मक भाव उत्पन्न हो गया, तो हमारा जीवन नरक बन जाता है।

वे समझाते हुए कहते हैं कि सफलता समृद्धि की शुरुआत मस्तिष्क से होती है। जब भी हम निराशा ओढ़ते हैं, अपनी क्षमता पर शक करने लगते हैं, खिन्नता को अपने अन्दर प्रवेश करने का रास्ता दे देते हैं और अपने लक्ष्य से भटक जाते हैं।

हमारा शक, भय, हमारी उत्साहविहीनता, निराशा, हमारी महत्त्वाकांक्षाओं को उदासीन बना देती है, वह उत्साह और ताकत से, आशा और स्पष्ट दृष्टिकोणों से किसी कार्य को शुरुआत तो करते हैं, लेकिन जब हमारा सोचा हुआ नहीं होता, तब हम ईश्वर प्रदत्त अपनी शक्तियों पर से

विश्वास खो बैठते हैं। हमारा ऐसा करना उचित नहीं है। अमृत है, उसे वास्तविक अर्थों में पाने के लिए उत्साहहीनता जैसे कीटाणु को अपने मस्तिष्क में प्रवेश न करने दें। आशा एक दीप है, उसके जलाते ही समस्त अंधेरा भाग जाता है। वे कहते हैं कि आशा एक कप्तान की तरह है, जो जहाज को छोड़ने वाला अंतिम व्यक्ति होता है। जब कप्तान जहाज छोड़ता है, वह जहाज डूब जाता है। आशा एक शक्तिशाली रचनात्मक बल है। वे व्यक्ति जो बड़ी आशा रखते हैं, सफलता प्राप्त करते हैं और जो कमजोर उम्मीदें रखते हैं, वे वही पाते हैं जिनका उन्हें भय होता है।

नकारात्मक विचार, दुर्भाग्यपूर्ण मनोभाव, सभी प्रकार की मानसिक और चारित्रिक क्षमताओं और स्वास्थ्य के लिए विध्वंसक हैं।

•

61

समर्पण की पूर्व भूमिका है भरोसा

आस्था मन की गति की अगली व्यवस्था है। आस्था और विश्वास में कोई खास अंतर नहीं है। हम किसी पर आस्था कर भी सकते हैं और अपनी आस्था से पीछे भी हट सकते हैं। यदि आस्था जग गई तो हम पूरी तरह समर्पण की ओर बढ़ जाते हैं और यदि नहीं जगी तो पीछे भी हट सकते हैं। आस्था बदली जा सकती है और उसके बदलने की संभावना भी रहती है। वह मन का स्थायी भाव नहीं हो सकता, क्योंकि स्थायी भाव होने के लिए मन में ऐसे भाव चाहिए, जिसमें किसी प्रकार का परिवर्तन न हो।

भरोसा मन की अनुभूति की गहरी अवस्था का बोध है। भरोसे के बिना समर्पण संभव नहीं है। पूर्ण समर्पण के लिए भरोसा आवश्यक है। एक बार जब हम किसी पर भरोसा कर लेते हैं, तो पीछे हटने की कोई संभावना नहीं रहती। हम जब कुछ पीछे छोड़कर ही कहीं भरोसा करते हैं।

भरोसे में तर्क-वितर्क नहीं होता, केवल समर्पण होता है। भरोसा यह संकेत देता है कि अब मनुष्य समर्पण के लिए पूरी तरह तैयार है। इस प्रकार यह समर्पण की पूर्व भूमिका है। यदि कोई कहता है कि मैं परमात्मा पर विश्वास करता हूं तो उसके कहने का अर्थ यह है कि वह अपने विश्वास से पीछे हट भी सकता है, लेकिन जब कोई कहता है कि मैं परमात्मा पर भरोसा करता हूं, तो इसका अर्थ हुआ कि भक्त परमात्मा को स्वीकार करने के लिए पूरी तरह तैयार है, इसलिए विश्वास और भरोसे में अंतर है।

विश्वास में पीछे हटने की गुंजाइश है, भरोसे में ऐसी कोई गुंजाइश नहीं है। सागर में कूद गए तो कूद गए, यह भरोसा है। समर्पण मनुष्य के मन के वेग और अनुभूति की अंतिम अवस्था है। समर्पण में कहीं कुछ शेष नहीं बचता। समर्पण में न कोई तर्क होता है, न सोचने की कोई गुंजाइश रहती है। यहां विश्वास करूं या न करूं ऐसा सोचने का मौका नहीं मिलता। समर्पण में परमात्मा के प्रति सब कुछ सारूप्य हो जाने की कामना रहती है।

भक्ति में सारूप्य जीवन की अंतिम अवस्था है, जिसमें वह परमात्मा में विलीन हो जाता है। समर्पण और सारूप्य एक ही तरह की होती है। कृष्ण ने गीता में कहा भी है कि तुम समर्पित हो जाओ, मतलब यह कि तुम्हारा होना पूरी तरह नष्ट हो जाए। जब तक द्वैत भाव रहेगा, तब तक समर्पण नहीं हो सकता।

समर्पण के लिए द्वैत का भाव मिटाना आवश्यक है, क्योंकि एक बार जब जीव परमात्मा को समर्पित हो जाता है तो संसार में कहीं कुछ नहीं बचता। इसलिए भक्त के समर्पण को ही परमात्मा की सारूप्य भक्ति कहते हैं और यही भक्ति की अन्यतम स्थिति है।

•

62

आस्था और विश्वास

आस्था एक ऐसा भाव है, जिससे मनुष्य किसी के साथ जुड़ता है और विश्वास मन का ऐसा भाव है, जो किसी व्यक्ति या परमात्मा के साथ उस व्यक्ति के संबंध निर्धारित करता है। आस्था और विश्वास में तर्क की जगह नहीं होनी चाहिए। कहा जाता है कि जिस व्यक्ति के पास आस्था, श्रद्धा, विश्वास और निष्ठा हो उसे ही ज्ञान और परमात्मा की प्राप्ति होती है। आज हम न तो परमात्मा के प्रति आस्था और विश्वास का पालन करते हैं और न ही अपने से बड़ों के प्रति। यहां तक कि हम अपने परिवार और उसके सदस्यों के प्रति भी आस्था और विश्वास खोते जा रहे हैं। परिणाम स्वरूप हम भी दूसरों के विश्वासपात्र नहीं बन पाते हैं। आज विश्वास की इतनी कमी हो गई है कि हमारा चरित्र एकांगी और छोटा बन गया। हम इतने संकुचित हो गए हैं कि हमारा विकास नहीं हो पा रहा है और जब विकास की कमी होगी तो हम सफलता की ओर कैसे बढ़ पाएंगे।

आज सफलता की चाहत सभी को होती है। सभी चाहते हैं कि हम धनवान, विद्वान, गौरवशाली और समाज में प्रतिष्ठित व्यक्ति हो जाएं। लेकिन समस्या यह है कि इसके लिए हम कुछ करने से बचना चाहते हैं और चाहते हैं कि सब कुछ बिना किसी प्रयत्न के प्राप्त हो जाए। परंतु ऐसा तो हो ही नहीं सकता। आज जितने भी प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं, क्या वह रातों-रात उस बुलंदी को छूने लगे हैं? इसके लिए उन्होंने कठिन परिश्रम किए, परमात्मा पर विश्वास किया, मन को स्थिर किया तभी आज वह इस बुलंदी पर पहुंच पाया।

जेहि पर जाकर सत्य सनेहु,
सो तेही मिलैं, न कुछ संदेहु।

हम तो सत्य स्नेही हैं। हम लोग तो करना ही भूल गए हैं। परिणाम स्वरूप जहां हमें पहुंचना होता है हम पहुंच नहीं पाते हैं और बाद में कहते हैं कि न जाने हमसे कहां भूल हो गई, जो हम वहां तक नहीं पहुंच पाए। आपकी कमी यही रही कि आपने विश्वास करना छोड़ दिया। आपने निष्ठा और आस्था का दामन छोड़ दिया। आप खुद को निरीह प्राणी मानने लगे। जबकि इस ब्रह्मांड और परमात्मा का अंश आपमें मौजूद है। जब आपमें परमात्मा का अंश मौजूद है तब आप असफल कैसे हो सकते हैं? इसके बावजूद भी आप असफल हैं, तो इसके दो कारण हो सकते हैं-या तो आपने विश्वास करना छोड़ दिया। आपने विश्वास की कमी के कारण परिश्रम करना छोड़ दिया। आपने मान लिया कि यह काम आपसे नहीं होगा और आप अपंग के समान बैठ गए। दूसरे केवल उसी को हरा सकते हैं जो स्वयं से ही हार जाता है। जिस व्यक्ति के पास हार, असफलता नाम की वस्तु न हो, उस व्यक्ति को कोई कैसे हरा सकता है? **नेपोलियन** कहा करता था कि *"मेरे शब्दकोश में असंभव नाम का शब्द नहीं है।"* जिस व्यक्ति ने आस्था और विश्वास के साथ अपने मन को स्थिर कर कोई मंजिल बनाई है, वह वहां तक अवश्य पहुंचा है। हजारों लोग हिमालय की चोटी पर चढ़ने के लिए निकलते हैं, कुछ परिश्रम कर थोड़ा आगे बढ़ते हैं और अगर कोई बाधा आ जाती है तो लौटकर घर आ जाते हैं, गिने चुने ही सफल हो पाते हैं। **अंबेडकर साहब**, **जगजीवन राम** परिश्रम करके ही शीर्ष पर पहुंचे। क्या परमात्मा ने उन्हें ऐसा ही पैदा किया था? **मोहनदास करमचंद गांधी**, साधारण विद्यालय के अति साधारण विद्यार्थी थे, एक दिन वह राष्ट्रपिता बन गए। इन महापुरुषों ने अपने मन में निश्चय किया कि मुझे जीवन को सफल बनाना है और इसके लिए अनवरत प्रयास करते रहे। लोग कहते हैं कि हमने तो काफी प्रयास किया परंतु सफलता नहीं मिली। यह कैसे संभव है कि आग जले और उसकी गर्मी महसूस न हो। ठीक उसी प्रकार यह भी असंभव है कि कोई परिश्रम करे और उसे सफलता नहीं मिले। अगर असफल लोगों

की कहानी आपको सुनाई जाए तो पता चलेगा कि उन्होंने पूरे मन से परिश्रम और सफलता के लिए प्रयास किया। ऐसे में उसे सफलता कैसे मिलेगी? हम धनी या विद्वान या नेता बनना चाहते तो हैं परंतु क्या कभी ऐसा विचार किया कि क्या गूढ़ है वहां तक पहुंचने के लिए? परीक्षा कोई भी हो, प्रत्याशी तो हजारों की संख्या में सम्मिलित होते हैं पर सिर्फ कुछ ही सफल हो पाते हैं। असफल परीक्षार्थी की असफलता का मुख्य कारण आस्था और विश्वास की कमी का होना।

यदि आपके पास विश्वास की कमी है तो आपको मंदिर जाने से भी कोई लाभ नहीं मिलेगा। मंदिर जाकर भी आप केवल पत्थर की मूर्ति ही देख पाएंगे। कहा जाता है

जाकि रही भावना जैसी,
प्रभु मूरत देखीं तिन तैसी।

अर्थात् *जिस प्रकार की आपकी भावना होगी आपको दुनिया वैसी ही दिखेगी।* गांव के किसी खेत को देखकर किसान की भावना और किसी व्यापारी या किसी कवि की भावना कैसी हो सकती है, आप इसका अंदाजा लगा सकते हैं। क्या सबों की सोच का एक ही परिणाम निकलेगा? नहीं। किसी फूल को देखकर कोई विद्यार्थी उसके गुणों को पहचान कर उसकी व्याख्या करता है तो कोई कवि उसकी सुंदरता पर मोहित होकर कुछ पंक्तियां रच डालता है तो इसका मतलब यह हुआ कि हम हारे हुए व्यक्ति हैं। परंतु ईश्वर ने हमारा जीवन इसलिए नहीं बनाया कि हम इसे हताशा और निराशा में ही गंवा दें।

•

63

मार्ग की चिंता मत करो

वेद को लोग **श्रुति** भी कहते हैं। इसका नाम 'श्रुति' इसलिए पड़ा, क्योंकि वाणी को सुनकर ही उसे लिखित रूप में रखा गया है। वेद की वाणी किसी एक व्यक्ति की बनाई या लिखी हुई नहीं है। इन्हें लिपिबद्ध करने के पहले, मंत्ररूपी शब्दों को सुना गया और फिर उन्हें लिपिबद्ध किया गया। दरअसल, यदि हम किसी मंजिल पर पहुंचना चाहते हैं, तो उसके लिए अनेक मार्ग हो सकते हैं। यदि कोई यह कहता हो कि मैंने उस मार्ग को अपनाया और मंजिल पा लूंगा, यह सत्य नहीं हो सकता। मंजिल पर पहुंचने के लिए प्रयास करना पड़ता है। केवल मार्ग पकड़ लेने भर से कोई मंजिल तक नहीं पहुंच जाता है।

प्रार्थना परमात्मा के सम्मुख आत्मसमर्पण का माध्यम है। आत्मसमर्पण करने वाले के मन में अहंकार नहीं होना चाहिए। उदाहरण के लिए शबरी को लें। शबरी ने सोचा कि वह प्रभु (राम) को बेर खिलाएगी, वह भी ऐसे जो खट्टे न हों। अब भला उसे कैसे पता होता कि वह बेर खट्टा है या मीठा, अतः वह पहले बेर चखती है और मीठे होने पर उसे प्रभु को खिलाती है। कुछ लोगों ने रामचरितमानस के बारे में कहा कि यह सामंतवादी प्रथा का द्योतक है। शबरी द्वारा प्रभु राम को जूठा बेर खिलाना, कौन सा सामंतवाद है? केवट को गले लगाने वाले राम, सामंतवादी कैसे हो गए? सुग्रीव से मैत्री करके व वानर सेना बनाकर उस सेना के साथ लंका पर आक्रमण करना, कौन-सा सामंतवाद है? अयोध्या के राजकुमार आते हैं, शबरी के जूठे बेर खाते हैं। इसके बाद

भी यह भ्रम कि रामचरितमानस सामंतवादी प्रथा का प्रतीक है, गलत है। राजघराने में पैदा होना, कोई पाप नहीं है। भगवान बुद्ध व महावीर के रूप में जो कमल खिला, जो आज विश्वशांति का संदेश दे रहा है, वह भी राजघराने में पैदा हुए, तो क्या वह भी सामंतवादी हो गए?

तुम इन परंपराओं पर मत जाओ, तुम्हें जिस मार्ग से होकर जाना है, उस पर बढ़ते चलो। अपने उद्देश्य को अपनी मंजिल पर ही रखो। एक दृष्टि परमात्मा की तरफ लगी होनी चाहिए, चाहे जिस मार्ग और सवारी से जाओ। साधना में परमात्मा को पाया जाता है। साधना में उसे अनुभव किया जाता है, लेकिन हमारे-तुम्हारे जैसे लोग जो कुछ नहीं जानते, वे अज्ञानी हैं। तुम्हारे प्रत्येक कार्य में पूजा होनी चाहिए। तुम्हें परमात्मा के साक्षात् दर्शन तभी हो सकते हैं, जब तुम्हारे जीवन के जितने भी कार्य हैं, सभी के सभी पूजा बन जाएं। इस मामले में तुम मार्ग की चिंता मत करना। मार्ग तो भ्रमित करते हैं। तुम पक्की सड़क से जाओ या कच्ची सड़क से, तुम्हें जाना तो है ही। उद्देश्य तो एक ही है, लेकिन उसके कई मार्ग हो सकते हैं। तुम उनकी चिंता मत करो। साधकों को साधना करने दो। साधना के द्वारा उन्हें परमात्मा का अनुभव प्राप्त करने दो। यही तुम्हारे जीवन की सिद्धि होगी।

•

64

सच्ची राह

पैगम्बर मोहम्मद साहब ने अपने पात्र को बनाया, **क्राईस्ट** ने बनाया, **श्रीकृष्ण** और **राम** ने भी बनाया और **भगवती दुर्गा** के अवतरण के समय भी ऐसी ही परिस्थितियां बनीं। आप इस परमात्मामय सृष्टि में अपने को इस तरह से तैयार कर लें कि उस जगह पर परमात्मा का शक्तिपात हो जाए। **स्वामी रामकृष्ण परमहंस** के साथ भी इसी प्रकार का शक्तिपात हुआ था।

हमारे जितने भी उच्च कोटि के संत-महात्मा हुए, उन सभी पर शक्तिपात हुआ। हमारे शास्त्रों में तो शक्तिपात का वर्णन भी मिलता है। **भगवान बुद्ध** ने कठोर तप किया था। वर्षों की तपस्या के बाद उन्होंने अपने शरीर में वैसी ही परिस्थितियां पैदा कर लीं, जिससे उनके शरीर पर शक्तिपात होने लगा। इस शक्तिपात के बाद उनके शरीर का एक-एक कण शक्ति से पूर्ण हो गया। यह तो सर्वविदित है कि माँ भगवती दुर्गा का आविर्भाव तो हिमालय के खंडहरों में हुआ था। यदि हम अपने में भी वही और वैसी ही परिस्थितियां पैदा कर लें, तो हमारे अनेक ऐसे संत हुए हैं जिन्होंने अपने शरीर में ऐसी परिस्थितियां पैदा कर लीं। उन्होंने अपनी साधना को इतनी गहराई तक पहुंचा दिया कि प्रकृति की तमाम शक्तियां उनमें एकीकृत हो गईं और इसी के साथ परमात्मा प्रकट हो गए। इसलिए आप साधना में बैठकर इस तरह की परिस्थितियां पैदा करें, जिससे कि आपके शरीर की स्थिति कुछ इस तरह की बन जाए कि परमात्मा का आविर्भाव स्वतः ही आप पर या

आपके लिए हो जाए कि हम मंदिर में जाकर पूजा-अर्चना करते हैं और उस जगह पर जाकर देवी-देवताओं का आह्वान करते हैं। आह्वान का विज्ञान यह हुआ कि हम वैसी परिस्थितियां पैदा करने का प्रयास करते हैं, जिससे परमात्मा का प्रकटीकरण हो सके। जब इस तरह की परिस्थितियां पैदा हो जाती हैं, तो वहां पर परमात्मा प्रकट हो ही जाते हैं।

हमारे शास्त्रों के अनुसार किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् तेरह दिनों का हिसाब रखकर उसकी आत्मा की शांति के लिए यज्ञ, तर्पण और श्राद्ध करवाते हैं, क्योंकि यह एक मान्यता है कि मृत्यु के पश्चात् जब शरीर से प्राण निकलते हैं तो प्राण निकलने में समय लगता है, मानव शरीर को तुरन्त ही प्रमाण पत्र दे दिया जाता है कि वह व्यक्ति मर गया है। लेकिन वास्तव में वह व्यक्ति तुरन्त ही नहीं मरता। बल्कि कई बार तो यह प्रयोग भी हुआ है कि एक सांप काटे व्यक्ति को एक वैद्य ने केले की कुक प्रायोगिक विधि से जिन्दा कर दिया।

वास्तव में सांप काटने के बाद व्यक्ति का कंठ अवरुद्ध हो जाता है और वह सांस नहीं ले पाता है, लेकिन उस व्यक्ति की मृत्यु नहीं होती है। पुराणों के अनुसार जब शरीर से प्राण निकलता है, तो वह प्राण उस शरीर के आस-पास घूमता रहता है, तथा एक खतरा भी मंडराता रहता है कि जब कोई आत्मा किसी शरीर से निकल जाती है और वह पुनः उसी शरीर पर अथवा किसी अन्य शरीर में प्रवेश करने में सफल हो जाती है तो वह अत्यधिक आक्रामक हो जाती है। इसलिए लोगों ने यह व्यवस्था बनाई कि जैसे ही आत्मा शरीर से निकली, उस शरीर को तुरन्त ही भस्म कर दो। इस तरह से उस आत्मा को दोबारा शरीर में प्रवेश करने से रोक दिया जाता है।

यदि आपके मन में अपने से बड़ों या फिर अपने माता-पिता के लिए स्नेह व सम्मान है, अपने गुरुजन और देवताओं के प्रति आदर सम्मान है, तो निश्चय ही उस आदर-सम्मान का फल आपको अपने जीवन में प्राप्त होगा। इसलिए यदि कोई व्यक्ति अपने माता-पिता और गुरु, इन तीनों का आशीर्वाद प्राप्त करके किसी काम के लिए निकलता है, तो वह निश्चित रूप से ही अपने काम में सफल हो सकेगा। लेकिन यदि आप अपने काम में असफल हुए तो निश्चय ही आपके इन तीनों

विभूतियों का आशीर्वाद पूरी श्रद्धा के साथ नहीं लिया। मेरा मानना है कि हर आशीर्वाद का एक फल होता है। आप कभी संकट में फंस जाएं, तो आप कुछ देर के लिए आंख बंद करके परमात्मा का स्मरण करें, अपने माता-पिता और गुरु का स्मरण करें, निश्चय ही आपको इस संकट से निकलने का रास्ता नजर आ जाएगा। आपके माता-पिता में हजारों अवगुण हो सकते हैं लेकिन उनके प्रति आपके भाव में कोई अविश्वास नहीं होना चाहिए। आपका प्रेम निश्छल होना चाहिए। कहा भी जाता है कि जो गुरु करे वह नहीं करना चाहिए, बल्कि जो गुरु कहे, सिर्फ वही करना चाहिए।

•

65

सत्य की खोज

एक समय वह भी था, जब पहले हम सत्य को खोजकर उसकी ओर बढ़ते थे, लेकिन अब हम असत्य को अपनाकर असत्य से ही अपने जीवन की शुरुआत करते हैं। पहले हम सुंदर की परिभाषा करते थे, कि सुंदर और शिव कौन है, इसकी खोज करें। हमारे ऋषि-महर्षियों ने तो सत्य, शिव और सुंदर की खोज में अपना संपूर्ण जीवन ही लगा दिया, लेकिन इसके बावजूद भी जब वे सफल न हुए, तो 'नेती-नेती' कहते हुए हाथ जोड़कर परमात्मा के समक्ष खड़े हो गए। ऋषि-महर्षियों ने उनसे कहा, 'हे परमात्मा! तुम्हें पाना हमारे वश में नहीं है, अतः हम तुम्हें नहीं पा सकते।' पहले सत्य की खोज होती थी, लेकिन अब असत्य की खोज हो रही है। हमने सत्य की ओर से अपना रास्ता बदल लिया है।

सुंदर शब्द को जानना हो, तो सबसे पहले यह सुनिश्चित करें कि आप किस सुंदरता को पाना चाहते हैं? खुली आंखों से देखी जाने वाली सुंदरता या आंखें बंद करके देखी जाने वाली सुंदरता में से आप किस सुंदरता की बात कर रहे हैं? सबसे पहले हमें यह तय करना है कि हम दुनिया की बाहरी सुंदरता को पाना चाहते हैं या हम अपनी तमाम इंद्रियों को वश में करके जिस प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, उसे पाना चाहते हैं। बाहर की सुंदरता बहुत ही मोहक होती है, जो क्षण भर के लिए मन पर अपना प्रभाव छोड़ जाती है।

हम जिस चीज को बाहर से देखते हैं, वह देखने में तो बहुत सुंदर होती है, लेकिन उसका आधार बहुत कमजोर होता है। हम अपने

आपको सुंदर दिखाने के लिए, अपने चेहरे पर निखार लाने के लिए तरह-तरह की क्रीम और अन्य सौंदर्य सामग्री का प्रयोग करते हैं। सुंदरता और सुंदर दिखने का यह प्रयास लोगों को अच्छा ही लगेगा, लेकिन जब हम उस सुंदरता से थोड़ा पीछे हटकर अपना असली चेहरा देखते हैं, तो पाते हैं कि हमारा स्वरूप काम, क्रोध, अहंकार तथा न जाने अन्य कितने विकारों से ग्रस्त है। तो फिर बताइए-यह बाहरी सुंदरता किस काम की है?

आजकल पुत्र या अपने किसी पुरुष रिश्तेदार के विवाह के लिए लड़की देखना महज औपचारिकता भर रह गई है। लोगों को पुत्रवधू के रूप में ऐसी लड़की की जरूरत होती है, जो आदर्शवादी व सुसंस्कारी हो और अपने पति के घर को सहेज कर रख सके। ऐसी लड़की की तलाश क्या एक दिन में हो सकती है? एक दिन में तो केवल लड़की की बाहरी सुंदरता ही देखी जा सकती है, जिसे उसने मेकअप द्वारा सुंदर बनाया होगा, लेकिन उसके आंतरिक गुण एक दिन में नहीं देखे जा सकते।

•

66

अशांत मनुष्य की शान्ति की खोज

संसार में आज हर तरफ भय, दु:ख, अशांति दिखाई पड़ रही है। इस सब से ग्रस्त मानव जीवन के असली रस से वंचित हो जीवन को ही कोस रहा है। ऐसे लोगों को राह दिखाते हुए परमपूज्य आचार्य श्री सुदर्शन जी महाराज कहते हैं कि प्रश्न यह नहीं है कि मनुष्य इतना अशान्त, दु:खी और चिन्ताग्रस्त क्यों हो गया? बल्कि प्रश्न है कि यह जो स्वनिर्मित चिन्ता है, तनाव और डिप्रेशन है, उसके निराकरण के लिए कोई भी व्यक्ति प्रयास क्यों नहीं करता? क्योंकि मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है। वह जब चाहे अपने विवेक से अपने जीवन को स्वस्थ और दीर्घायु बना सकता है। दीर्घायु होना कोई देव कृपा नहीं है, यह सामान्य विज्ञान है, जिसकी थोड़ी-सी समझ से मनुष्य कम-से-कम शतायु तो हो ही सकता है। प्रयास किया जाए तो उससे अधिक भी जिया जा सकता है। लेकिन किसी महान वस्तु की प्राप्ति के लिए जिस प्रकार सघन प्रयास किया जाता है, उसी प्रकार जीवन को स्वस्थ एवं दीर्घायु बनाने के लिए भी प्रयास किया जा सकता है। मनुष्य कितनी निष्ठा से प्रयास करता है। उसी पर यह निर्भर करता है कि उसने जीवन में क्या-क्या प्राप्त किया। जीवन जीने की विधि में थोड़ी-सी दृष्टि बदलने की जरूरत है।

आज बड़ी तेजी से समय बदल रहा है समय के साथ मनुष्य का परिवेश और जीवन जीने की विधि में परिवर्तन हो रहा है। यही परिवर्तन है। आज के युग को भौतिकवादी युग कहा जाता है। भौतिकता का अर्थ है अपने साधनों का विस्तार और अधिक से अधिक उपलब्धि।

अधिक-से-अधिक वस्तुओं का संग्रह करना भौतिकवादी दृष्टिकोण है और बड़े आश्चर्य की बात है कि मनुष्य प्रतिरक्षण भौतिक वस्तुओं का संग्रह कर सुखी होना चाहता है। भौतिक वस्तुओं का संबंध, बाहर के संसार से है और सुख अंदर के संसार से उपजता है यही दृष्टिभेद है। बाहर की वस्तुओं से धन-वैभव बढ़ता है और धन मनुष्य के अहंकार को तृप्त करता है। अपार धन संपदा भी मनुष्य के आंतरिक गुणों को विकसित नहीं कर पाता।

भारतीय संस्कृति का चिंतन है कि मनुष्य को जीवन में सुख और शान्ति प्राप्त करना चाहिए। इसलिए कि सुख अंतर्मन की अनुभूति है, उसे बाहर की वस्तुओं में ढूंढ़ना उचित नहीं है। इसलिए पहले यह निर्णय करो कि तुम्हें बाहर का सुख चाहिए कि भीतर का। बाहर का सुख चाहिए तो उस धन-वैभव के संग्रह से क्षणिक सुख प्राप्त कर सकते हो। तुम्हारे पास इतने मकान हैं। इतनी गाड़ियां हैं, इतने बड़े बैंक बैलेंस हैं, यह सब सुखी बना सकता है। पहले तुम्हें तय करना है कि बाहर का सुख चाहिए या भीतर का।

आज तक जितने भी पूर्व अथवा पश्चिम के विचारक हुए हैं, उनका मानना है कि बाहर की वस्तुओं से अंतर्मन को सुखी नहीं किया जा सकता। महान विचारक **वर्टन रसल, हेनरी डेविड थोरियो, विल डुरेन्ट** जैसे विद्वानों ने स्पष्ट रूप से बताया है कि मनुष्य के जीवन का एक निश्चित उद्देश्य होता है, जिसे वह अपने विवेक को जागृत कर प्राप्त कर सकता है। लेकिन मनुष्य भ्रम वश रेलवे स्टेशन पर जाकर हवाई जहाज के आने-जाने का समय पूछने लगता है। जिन लोगों ने जीवन भर अथक परिश्रम कर काफी धन-वैभव प्राप्त किया, इससे उनके अहंकार की तृप्ति तो हुई लेकिन वे सुखी नहीं बन सके। यही कारण है कि बड़े-बड़े उद्योगपति संत-महात्माओं की टूटी हुई झोंपड़ी के सामने बड़ी-बड़ी गाड़ियां लेकर खड़े मिलते हैं। क्योंकि अब उन्हें पता चल गया है कि जिस धन-वैभव को प्राप्त करने के लिए उन्होंने जीवन भर संघर्ष किया उससे तो उनके जीवन में और अशान्ति बढ़ गई और फिर वे शान्ति की खोज में धर्म स्थलों की यात्रा पर निकल पड़ते हैं। इसका अर्थ है कि संसार की उपलब्धि में सुख नहीं है।

•

67

सुख की खोज

भारत के विचारक कहते हैं कि जीवन में सुख और शान्ति चाहते हो तो आत्म चिंतन करो और अधिक सुख प्राप्त करने का प्रयास करो। क्योंकि धन-वैभव और सुख तुम एक साथ नहीं प्राप्त कर सकते हो। भारत ऋषि और कृषि प्रधान देश है। इसलिए आज तक भारत के गांवों में उद्योगों का विस्तार नहीं हुआ। भारत के लोग थोड़े में ही शान्ति से जीना चाहते हैं। यहां अधिक-से-अधिक संग्रह की प्रवृत्ति नहीं है। पश्चिम के देशों में उद्योगों का विस्तार हुआ। भारत में विचार का विस्तार हुआ।

इधर हाल के वर्षों में भारत में समृद्धि के लिए धन-वैभव को मूल्यांकन का आधार बनाया गया। फलतः आदर्श, नैतिकता, मर्यादा, बड़ों के प्रति आदर का भाव धीरे-धीरे कम होने लगा। इनके कम होने की अतिशय भौतिकता के कारण मनुष्य अशांत हो गया। जिस भारत में पश्चिम के बड़े-बड़े घरानों के युवक-युवतियां शांति प्राप्त करने आते थे। वह भारत भी अशांत हो गया। हम सभी जानते हैं कि अगर धन-वैभव से शान्ति मिलती तो पश्चिम के लोग शांति की खोज में भारत नहीं आते, क्योंकि उनके पास अपार संपदा थी। आज पश्चिम के हजार-हजार उद्योगपति भारत के अनेक आश्रमों में बैठकर साधना कर रहे हैं। इसलिए हमें मान लेना चाहिए कि सुख की प्राप्ति आत्म-चिंतन, स्वभाव, प्रेम, करुणा और दया से संभव है। ईर्ष्या, विद्वेष, हिंसा से शांति नहीं अशांति मिलती है।

मनुष्य अशांत क्यों बनता है : अशांति स्वनिर्मित है। अशांति कहीं से आती नहीं है। हम बड़े परिश्रम से उसका निर्माण करते हैं। प्रत्येक

मनुष्य का स्वभाव शांत, सरल और सुगम होता है। स्वस्थ रहना, प्रसन्न रहकर मुस्कुराते रहना मनुष्य का स्वभाव होता है। अगर कोई बीमार पड़ता है तो निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि उसने बड़े आदर से बीमारी को बुलाया है। क्योंकि किसी भी बीमारी अथवा अशांति को तुम्हारा पता मालूम नहीं है और न तुम्हारा टेलीफोन नम्बर पता है। तुमने काफी खर्च करके अपना पता और फोन नम्बर विभिन्न प्रकार की बीमारी और चिंताओं को दिया है। तभी वे तुम्हारे पास आते हैं। यह सब स्वस्थ मनुष्य का लक्षण नहीं है। यह लक्षण तो बीमार व्यक्ति का है। एक तरफ तुम महंगे फल खाते हो, विटामिन के कैप्सूल खाते हो और दूसरी ओर अपनी बुरी आदतों के कारण अपनी जीवनदायिनी शक्ति को नष्ट कर देते हो। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे कोई मजदूर दिन भर परिश्रम कर सौ रुपए कमाए और संध्या होते ही उस रुपए को गड्ढे में फेंक दे और फिर दूसरे दिन कमाने का प्रयास करने लगे। ऐसी मूढ़ता हम सभी करते हैं। हम भूल जाते हैं कि हमारा जीवन कितना कीमती है। उसे नष्ट करने का हमें कोई अधिकार नहीं है। अगर थोड़ी-सी सतर्कता बरत ली जाए तो हमारे जीवन में हजारों फूल खिल सकते हैं। जिन लोगों ने जीवन के इस महत्त्व को समझा है, उनकी आज समाज में पूजा होती है और जो लोग विलासपूर्ण जीवन जीते हैं, उन्हें समाज में कभी आदर नहीं मिलता। फिर वे अपने ही द्वारा अर्जित धन संपत्ति केा कोसने लगते हैं। ऐसे हजारों उदाहरण हमारे सामने हैं।

मैं तो आशावादी व्यक्ति हूं। हमेशा मनुष्य के अच्छा बनने की कामना करता हूं। मेरे आश्रम में आज दूर-दूर से लोग आते हैं और मुझसे शांति का मार्ग पूछते हैं। मैं उन्हें बताता हूं कि अगर तुम शांति चाहते हो तो अपने जीवन से प्यार करना शुरू करो। यह जीवन नष्ट करने के लिए नहीं है। इससे तो अनेक अच्छे-अच्छे काम कराए जा सकते हैं। लेकिन तुम्हें जीवन जीने की विधि सीखनी पड़ेगी। मैंने ही जीवन जीने की विधि का एक आंदोलन प्रारंभ किया।

•

68

दु:खी दिखने की आदत छोड़ें

आजकल दु:खी दिखना भी एक फैशन हो गया है। जिस प्रकार हम वैभव का प्रदर्शन करते हैं, अपना मकान, अपनी गाड़ी, नए-नए कपड़े लोगों को दिखाकर अपने अहंकार को तुष्ट करते हैं, ठीक इसी प्रकार हमारे समाज में कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो दु:खी दिखकर तृप्ति का अनुभव करते हैं। इस तृप्ति का कारण जब हम पता लगाते हैं तो लगता है यह दु:खी दिखने वाला आदमी जरूर हीन भावना से ग्रसित होगा और अपने दु:ख का प्रदर्शन कर वह लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है तथा दूसरे की सहानुभूति पाना चाहता है। यह एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक रोग है।

प्रदर्शन प्रत्येक व्यक्ति को प्रिय होता है। कुछ लोग अपने धन का प्रदर्शन करते हैं, कुछ लोग अपनी ऊंची कुर्सी का प्रदर्शन करते हैं, कुछ लोग अपनी जवानी और रूप का प्रदर्शन करते हैं और कुछ लोग अपनी गरीबी और अपने दु:ख का प्रदर्शन करते हैं। इन दोनों प्रदर्शनों में आत्म-तुष्टि की बात ही रहती है। मनुष्य इन प्रदर्शनों से अपने को संतुष्ट करना चाहता है, क्योंकि अभाव तो प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में है। इस अभाव की पूर्ति के लिए मनुष्य अनेक प्रकार का प्रयास करता है। कुछ लोग अपने अच्छे कार्यों से समाज में प्रसिद्धि पाते हैं, यह भी एक प्रकार की मानसिक संतुष्टि ही है। जो लोग क्रियात्मक हैं, जिन्हें निर्माण पसंद है, वे अपने प्रत्येक अच्छे कार्यों से सुख प्राप्त करते हैं और जो लोग नेगेटिव हैं, जिन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में हारना स्वीकार

कर लिया है, वैसे ही लोग अपने दु:ख, अपनी निराशा और हताशा का प्रदर्शन कर संतुष्ट होना चाहते हैं, क्योंकि ऐसे लोगों को भी संतुष्ट होने के लिए कुछ चाहिए ही। ऐसे ही लोग दूसरे की सहानुभूति प्राप्त कर गौरवान्वित होते हैं। वे लोग यह नहीं समझते कि किसी की सहानुभूति पाना सबसे बड़ा मानसिक अपराध है।

यह सत्य है कि सहानुभूति देने वाला, लेने वाले पर अपने अहंकार को थोपता है। अगर कोई किसी को सहानुभूति देता है तो वह यह मानकर देता है कि मैंने उसकी सहायता की है। इससे उसका मनोबल बढ़ता है, और लेने वाले का मनोबल घटता है, उसमें हीनभावना बढ़ती है। इसीलिए जो लोग दु:खी रहना, हताशा और निराशा में रहना स्वीकार कर लेते हैं, वे जीवन में कभी कोई विकास नहीं कर सकते। हमेशा वे अपनी ही हीनभावना के पहाड़ के नीचे दबे कराहते रहते हैं। सच पूछिए, दु:ख और सुख मन की अनुभूति हैं। जो लोग इस संसार को सुख रूप में स्वीकार कर लेते हैं, इस संसार के प्रत्येक कार्य में सुख का अनुभव करते हैं, वैसे ही लोग जीवनभर सुखी रहते हैं। क्योंकि ऐसे विवेकशील लोग यह मान लेते हैं कि संसार जैसा है वैसा है। किसी के चाहने से संसार में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। हम संसार को नहीं बदल सकते। हमारे चाहने से ठंड, गर्मी, बरसात नहीं हो सकती। हमारे चाहने से जब कुछ नहीं हो सकता तो वैसी हालत में हमें संसार के अनुरूप बदल जाना चाहिए। जब तक इस संसार का विरोध करते रहेंगे, अपने होने के अहंकार को सिर पर लेकर घूमते रहेंगे, तब तक हम दु:खी रहेंगे। इसके लिए हमें आध्यात्मिक आंखें चाहिए, समझ और विवेक चाहिए।

•

69

मनुष्य है प्रसन्नता का प्रतीक

जो लोग विवेक पुरुष हैं, वे संसार के सुख-दु:ख को देखते रहते हैं और मुस्कुराते रहते हैं। उनकी सेहत पर इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। वे मान लेते हैं कि इस संसार में सब कुछ ठीक-ठीक चल रहा है। हमारे दु:खी रहने से संसार की गति में कोई अन्तर पड़ने वाला नहीं है। दु:खी रहना कई लोगों का स्वभाव बन जाता है। ऐसे लोग अपने छोटे दु:ख को भी बहुत बढ़ा-चढ़ा कर कहते हैं, ताकि लोगों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो सके। कई बार हम छोटे बच्चे को गिरते हुए देखते हैं, गिरते समय अगर उस पर किसी की नजर नहीं पड़ी तो उसे चोट भी लगती है तो भी उठकर खड़ा हो जाता है और फिर खेलने लगता है। लेकिन गिरते समय अगर किसी ने देख लिया और उसे सहलाने के लिए दौड़ा तो बच्चा जोर-जोर से रोने लगता है। चोट दोनों हालात में बच्चे को एक ही तरह से लगती है, लेकिन किसी ने नहीं देखा तो वह नहीं रोता, किसी ने देख लिया तो वह रोने लगता है। यहां भी अपने दु:ख के प्रदर्शन की बात है।

सच पूछिए, तो जो लोग जीवन में अच्छे कार्यों का प्रदर्शन नहीं कर पाते, जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर पाते, वैसे ही लोग दु:खी रहकर यह बताना चाहते हैं कि अगर मैंने सफलता नहीं प्राप्त की, सुख नहीं प्राप्त किया तो मेरे पास भी काफी दु:ख है। क्योंकि वे किसी की नजर में नीचे गिरना नहीं चाहते। परमात्मा ने कभी किसी को दु:खी नहीं पैदा किया, क्योंकि परमात्मा के यहां कोई दु:ख है ही नहीं। परमात्मा तो सुख

स्वरूप है, आनन्द स्वरूप है, उनके पास दु:ख तो है ही नहीं तो वह किसी जीव को दु:ख कहां से दे सकते हैं। लेकिन जब मनुष्य अपने कार्यों और विचारों तथा अहंकारों के कारण स्वयं दु:ख का निर्माण कर लेता है, तो यह मनुष्य की भूल है। हमारी भूल के लिए परमात्मा कैसे दोषी हो सकते हैं। हमने तो रात-रात भर जागकर दु:ख को आमन्त्रित किया है। हम तो प्रतिक्षण इस प्रतीक्षा में खड़े हैं कि कहीं से दु:ख आ जाए, हम तो हमेशा दु:ख के आगमन की प्रतीक्षा में खड़े रहते हैं और यह बड़े आश्चर्य की बात है कि कई बार तो हम दु:ख के आने की प्रतीक्षा करते रह जाते हैं और दु:ख नहीं आता। इस प्रतीक्षा के लिए हम किसे दोषी मानेंगे?

दु:खी व्यक्ति जब इसे अपना स्वभाव बना लेता है, तो इस दु:ख के जहर से उसके जीवन की ऊर्जा, जीवनी-शक्ति नष्ट होने लगती है और वह धीरे-धीरे विभिन्न प्रकार की बीमारियों का शिकार होने लगता है। दु:खी व्यक्ति की आयु कम हो जाती है। जीने की शक्ति समाप्त हो जाने के कारण दु:खी व्यक्ति दीर्घायु नहीं बन सकता। ऐसे लोगों के संपर्क में रहने वाला व्यक्ति भी दु:खी हो जाता है, वह भी दु:ख की बीमारी से बीमार हो जाता है। दु:ख तो एक संक्रमण की बीमारी है। इसीलिए संत पुरुष कहते हैं कि दु:खी और निराश व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति रखो।

दरअसल दु:खी रहना मनुष्य का स्वभाव नहीं है। मनुष्य तो प्रसन्नता का प्रतीक है। इस संसार के सुख का प्रतिबिंब है। अगर कोई दु:खी रहने का नाटक करता है तो वह सामाजिक अपराध करता है। अगर हम मुस्करा सकते हैं तो अपनी मुस्कान से लोगों को प्रसन्न करें, तभी जीवन में आनन्द की प्राप्ति हो सकती है।

•

70

बीमारी निराशा की कोख से जन्मा पौधा

परमपूज्य आचार्य श्री सुदर्शन जी महाराज के अनुसार जीवन बहुत सुन्दर है। वे कहते हैं, मानव को ईश्वर ने यह अनुपम भेंट दी है। उसे चाहिए कि वह इसका भरपूर सदुपयोग करते हुए इसे उत्कर्ष की ओर ले जाए। उनके अनुसार मनुष्य की पहचान उसके कार्यों, विचारों और संस्कारों से है। विचार मनुष्य के निर्माण की दिशा तय करता है। मनुष्य का व्यक्तित्व उसके चिन्तन पर ही आधारित होता है। आचार्य श्री समझाते हुए कहते हैं कि व्यक्तित्व वास्तव में मनुष्य के बाहरी एवं भीतरी संस्कारों और कार्यों का प्रतिफल होता है। यह बाहर से ओढ़ा नहीं जा सकता। साधारण समाज में हट्ठे-कट्ठे, लम्बे-चौड़े, सुडौल शरीर वाले को अच्छा व्यक्तित्व वाला माना जाता है, जो गलत है। हमारी यह धारणा अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव के कारण है। क्योंकि अंग्रेजी में व्यक्तित्व का पर्याय पर्सनेलिटी शब्द है जो लैटिन के शब्द "पेरासोना" से बना है जिसका अर्थ है "मुखौटा"। 'पर्सनेलिटी' शब्द व्यक्तित्व की वास्तविक परिभाषा के साथ न्याय नहीं करता। व्यक्तित्व का अर्थ है मनुष्य में आंतरिक और बाह्य गुणों का विकास। यह कोई जरूरी नहीं है कि जो बहुत हट्ठा-कट्ठा हो, उसका व्यक्तित्व अच्छा हो। दुबले-पतले आदमी का व्यक्तित्व भी अच्छा हो सकता है इस दृष्टि

से 'फिजिक' एक अलग चीज है और अंदर का गुण 'लेटेन्ट पावर' 'सूक्ष्म शक्ति' एक अलग चीज है।

विचार एक भाव है 'अब्स्ट्रेक्ट' है। इससे मनुष्य का सर्वप्रथम आंतरिक गुण बढ़ता है। जो विचारशील होते हैं, चिंतन करते हैं उनके आंतरिक गुण बढ़ते हैं, उनकी मानसिक रूढ़ियां टूटती हैं। वे चिंतन के प्रकाश से अपने अंतर्मन के अंधकार को तोड़ते हैं। जब अंतर्मन का अंधकार टूट जाता है तो उनमें क्रियात्मक वृद्धि बढ़ जाती है। दरअसल अंधकार निषेध है, और शरीर में नेगेटिव और पोजेटिव दोनों ऊर्जा रहती हैं। हम जिस तरह का चिंतन करते हैं, उसी तरह की ऊर्जा शरीर में बढ़ने लगती है। हमारे रक्तकण में अनेक प्रकार की बीमारियों के विषाणु रहते हैं, लेकिन हम अपने शरीर के रक्तकण में शरीर के पोषण करने वाले जीवाणु को विभिन्न उपायों से बढ़ाते रहते हैं जिस कारण अन्य बीमारियों के विषाणु दबे रहते हैं, कभी-कभी मनुष्य का शरीर पीला पड़ जाता है, कमजोरी हो जाती है इसका अर्थ है कि हमारे शरीर में जो लाल रक्तकण हैं, वह कमजोर पड़ गये हैं, ठीक उसी प्रकार जब हम क्रियात्मक चिंतन छोड़ देते हैं, अच्छी-अच्छी बातें सोचना छोड़ देते हैं, तो नेगेटिव ऊर्जा बढ़ने लगती है। बीमारी और कुछ नहीं है यह निराशा की कोख से जन्मा हुआ जहरीला पौधा है। इसी कारण यदि मनुष्य को अगर बीमारी से बचाना हो, स्वस्थ और दीर्घायु बनाना हो तो पहले उसके जीवन में सद्विचार पैदा करें, आकर्षण और संगीत पैदा करें। क्योंकि संगीत गाने वाला, मुस्कराने वाला, प्रसन्न रहने वाला व हंसोड़ प्रकृति का आदमी प्रायः बीमार नहीं पड़ता और वह दीर्घायु भी बनता है। भारतीय जीवन दर्शन की ये सच्चाई आज दुनिया का हर वैज्ञानिक मानता है।

•

71

आशा ही कारण है दु:ख का

एक आम मनुष्य का सारा जीवन अनंत आशाओं के भंवरजाल में ही फंसा रहता है। हालांकि यह भी सच है कि यह आशा उसे जीवनीशक्ति तो प्रदान करती ही है, बहुत कुछ करने को भी प्रेरित करती है। इसके सहारे वह अपना काफी समय भी व्यतीत कर लेता है। लेकिन उसका दूसरा पक्ष यह भी है कि आशा और कामना की एकाध कड़ी पार करते ही वह अनंत आशाओं के चक्रव्यूह में फंसता चला जाता है। इसके बाद उसके मन में एक के बाद एक आशाएं बलवती हो उठती हैं और वह उसी की पूर्ति में लगा रहता है।

हर कोई यदि अपने जीवन में क्रियात्मक आशाएं करे तो सफलताएं अवश्य मिलती हैं, लेकिन जब समुद्र की लहरों की तरह मन में आशा की अनंत लहरें उठने लगती हैं तो उसे पूरा करना संभव नहीं होता है। अधिकांश मामलों में ऐसा होता है कि जब एक-दो आशाएं पूर्ण हो जाती हैं तो मनुष्य स्वभावत: अहंकारी हो जाता है। अपने मन में उठते मनोवेग की तरह वह हमेशा सब कुछ पा लेना चाहता है। वह जो भी कल्पना करता है, उसे साकार कर लेना चाहता है। जबकि आशा का प्रवाह अनंत होता है। एक आशा पूरी होती है तो दूसरी सामने आ जाती है और दूसरी के पूर्ण होते ही तीसरी...। इस प्रकार यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। दरअसल, यह मन की निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।

हर कोई धन कमाना चाहता है। इसके लिए वह उल्टा-पुल्टा प्रयत्न भी करता है। एक बार जब धन की प्राप्ति हो जाती है तो वह और धन

प्राप्त करना चाहता है। मनुष्य की चाह का कोई अंत नहीं है। कामना व वासना दो ऐसे मनोवेग हैं जो कभी पूरे नहीं होते। आज तक कोई भी धन की कामना व वासना की पूर्ति से कभी संतुष्ट नहीं हुआ। मनुष्य अपना सारा जीवन कामना और वासना की पूर्ति में नष्ट कर देता है और उसे सुख कभी नहीं मिलता। सुख की खोज में भटकते-भटकते अंत में वह दु:ख को प्राप्त करके घर लौटता है। आज समाज में इतने दु:खी, अशांत, चिंताग्रस्त और बीमार लोग इसलिए हो रहे हैं कि वे अपनी कामनाओं को पूरा नहीं कर पाए।

पहली सफलता मिलते ही मनुष्य अहंकारी हो जाता है और चाहता है कि जो वह चाहता है। वह अपने अहंकार के पैर तले सबको रौंद देना चाहता है और जब उसे कोई सफलता नहीं मिलती या उसकी कामना की पूर्ति नहीं होती तो वह आक्रामक हो जाता है, आहत हो जाता है और हीन भावना से ग्रस्त हो जाता है। हीन भावना से ग्रस्त लोग विध्वंसक होते हैं, क्योंकि जब उन्हें कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती तो वे उसे नष्ट कर देना चाहता है। पशुओं में भी यह प्रवृत्ति देखी गई है कि जब कभी उसे इच्छित वस्तु प्राप्त नहीं होती तो वह आक्रामक हो जाता है।

•

72

सहानुभूति लेना कायरता

आजकल हम जिस प्रकार की सहानुभूति का प्रदर्शन देख रहे हैं वह सब नकली सहानुभूति है। यह मौखिक सहानुभूति है, जिसे हम अंग्रेजी में **'लीप सिम्पैथी'** कहते हैं।

बचपन में मेरी मां ने मुझे सहलाया। मां के आंचल में मुझे बहुत सारा दुलार मिला। वह एक सच्ची सहानुभूति हुई, उससे जिस ऊर्जा का स्राव हमारे शरीर में हुआ, उसी के चलते हमारा जीवन आज इस लक्ष्य तक पहुंच गया है। लेकिन यदि झूठी और बाजारू सहानुभूति हमें मिले तो हमारा पूरा चरित्र ही प्रभावित हो जाएगा और हम उसके प्रति आसक्त हो जाएंगे, हम उसके प्रति कृतज्ञ हो जाएंगे। कृतज्ञता का अर्थ होता है कि हम अपने सम्पूर्ण चरित्र को आपके समक्ष झुका रहे हैं और इसी वजह से उसका अहम बढ़ रहा है। ऐसा करके आप उस व्यक्ति का नुकसान कर रहे हैं, क्योंकि आपकी तरह हजारों लोग अपना सिर झुकाकर खड़े हैं और सामने वाले का अहम बढ़ता जा रहा है। वह सोच रहा है कि मैं इतना बड़ा हो गया हूं। वह गलतफहमी की दीवार पर चढ़कर उछल-कूद मचा रहा है कि मेरे सामने हजारों लोग अपना सिर झुका रहे हैं, वे मेरा सम्मान कर रहे हैं और मुझसे डरते हैं, वे मेरे सामने नतमस्तक हैं। लेकिन इससे जिस व्यक्ति का नुकसान हो रहा है, वह व्यक्ति तो इसे अनुभव ही नहीं कर पा रहा है। आप इतने कायर, इतने हारे हुए या इतने बुझे हुए क्यों हैं कि कोई अन्य आपके पास आकर आपको सहलाए। वह आपकी पीठ ठोके और आपकी मरहम पट्टी करे।

यह तो मानसिक आघात हुआ। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें, तो चरित्र पर इतना बड़ा कुठाराघात एवं उसका अपहरण कहीं और देखने को नहीं मिलेगा। जब भी आप किसी व्यक्ति से कोई काम करवाना चाहें अथवा उससे कोई लाभ लेना चाहें, तो आप उसके पास जाकर उसे सहलाएं। उसकी, उसके परिवार तथा बच्चों के बारे में आप झूठी तारीफ करते चले जाएं, तो वह व्यक्ति गुब्बारे की तरह फूल जाएगा तथा आप उससे अपने मन का लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

सहानुभूति दो प्रकार की होती है–'पॉजिटिव' और 'नेगेटिव'। सहानुभूति हमारे जीवन के लिए लाभदायक होती है। यदि हमें कोई पीड़ा हो और 'पॉजिटिव' सहानुभूति मिले, तो हमें आराम की अनुभूति होगी लेकिन यदि हमें केवल 'नेगेटिव' सहानुभूति मिलती रहे, तो फिर से हमारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व खोखला हो जाएगा। इसलिए सहानुभूति से डरने की आवश्यकता है। सहानुभूति यदि 'पॉजिटिव' हो, तो आपका दर्द अवश्य कम होगा, लेकिन यदि आपको मिलने वाली सहानुभूति में गलत दृष्टि मिली है, तो फिर ऐसी सहानुभूति किस काम की? इसलिए दूसरे की सहानुभूति ग्रहण करने की बजाए अपनी सहानुभूति स्वयं ग्रहण करें। लेकिन आप अपनी सहानुभूति तभी ग्रहण कर पाएंगे, जब आप भीतर की ओर मुड़ेंगे। आप तो स्वयं शक्तिपुंज हैं, आपको कोई क्या समझा पाएगा? आप केवल इसी दृष्टि को अपने जीवन में उतारें कि आपको किसी की सहानुभूति लेने की जरूरत नहीं है। आप केवल अपनी सहानुभूति स्वीकार करें, तभी आपका अस्तित्व और आपका जीवन आनंदमय हो सकता है।

•

73

सहानुभूति पाना पाप है

सहानुभूति का अर्थ है कोई दूसरा हमारे दु:खों के प्रति समान अनुभूति प्रकट करे। हम जब दु:खी हों, तो हमें सांत्वना दे, हमें सहलाए। सहानुभूति को अंग्रेजी में 'सिम्पैथी' और समानुभूति को 'इम्पैथी' कहते हैं। दोनों शब्दों में थोड़ा भेद है, लेकिन पाने वाले पर इसका एक ही प्रभाव पड़ता है। सहानुभूति पाने वाला याचक होता है व देने वाला दाता। जिस क्षण हम याचक बनकर खड़े हो जाते हैं, तभी हमारा स्वाभिमान, व्यक्तित्व, प्रतिष्ठा व सम्मान गिर जाता है। याचक कभी आदरणीय नहीं बनता। जिस प्रकार कायर मनुष्य विकलांग हो जाता है, उसी प्रकार सहानुभूति पाने वाला बीमार बन जाता है। वह हमेशा इसी ताक में रहता है कि वह कोई काम ऐसा करे, ताकि लोग उसे सहानुभूति देने आएं। सहानुभूति पाना कभी भी प्रतिष्ठा की बात नहीं होती। इससे मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में बाधा पड़ती है और वह अपने चरित्र, अपनी अस्मिता व अपने आदर्श को भुलाकर दया का पात्र बने रहने में गौरव महसूस करता है। परमात्मा के प्रति समर्पित व्यक्ति परमात्मा के सिवा किसी और की सहानुभूति नहीं लेना चाहता। आज हर गली-मुहल्ले में 'लीप सिम्पैथी' देने वालों की कमी नहीं है, लेकिन वैसी सहानुभूति से न देने वाले को कुछ अंतर पड़ता है, न लेने वाले को। सहानुभूति यदि हृदय से दी जाए, तो उसका प्रभाव पड़ता है, उसका कोई अर्थ होता है, क्योंकि देने वाले के शब्दों में अपनत्व होता है। अपनत्व भरे शब्दों से यदि किसी को थोड़ी-मीठी अनुभूति हो जाए,

तो कुछ अर्थों में इसे प्रभावशाली माना जा सकता है। लेकिन इससे भी पाने वाले के व्यक्तित्व पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। ऐसे ही लोग जीवन भर पराश्रित रहकर दूसरे की सहानुभूति पाने का अपराध करते रहते हैं।

एक साधक के लिए यह आवश्यक है कि वह नींद के वश में न रहे, क्योंकि नींद साधना की विरोधी है। साधना के समय यदि साधक को आलस्य आ जाए, नींद आने लगे तो उसका साधना में उतरना संभव नहीं है। हमारा जीवन किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए है, उसे उद्देश्यहीन बनाकर अपनी मूल प्रवृत्तियों के वश में होकर नष्ट करना उचित नहीं है। जीवन की सार्थक भूमिका यही है कि हम आत्मिक चिंतन करें और सारी ऊर्जा-शक्ति को संग्रहित कर जीवन में विवेक-शक्ति को जागृत करें। जो शरीर साधना के मार्ग से बुद्धि व विवेक से नियंत्रित होकर परमात्मा के प्रदेश में प्रवेश नहीं करता, उसका जीवन निरर्थक हो जाता है। मूल प्रवृत्तियां शरीर को स्थिर करने में सहायक मात्र होती हैं और जब शरीर सही ढंग से काम करता रहता है, तभी आत्म-तत्त्व को परमात्मा-तत्त्व में मिलने का सहज मार्ग बन पाता है। अतः भक्तों को आलस्य व निद्रा के वशीभूत होने से बचना चाहिए। यह साधक के मन में हमेशा विषाद पैदा करता रहता है। मानव जीवन बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसे हम जैसा चाहें, बना सकते हैं। यदि हमारा जीवन कर्मशील है, तो हम जीवन में यशस्वी बन सकते हैं और यदि आलसी है, तो समाज में निंदा के पात्र भी बन सकते हैं।

•

74

ऐसे कम होती है पीड़ा

सहानुभूति का मनोवैज्ञानिक आधार क्या होता है? यह एक मनोवैज्ञानिक विषय है। सहानुभूति दो शब्दों से मिलकर बना है–सह+अनुभूति। अर्थात् एक ऐसा अनुभव जो समान रूप से सभी के बीच हो, वह सहानुभूति कहलाती है। जिस प्रकार का अनुभव मैं कर रहा हूं, वही अनुभव आपको तथा दूसरों को भी हो, इसे ही सहानुभूति कहते हैं। सहानुभूति एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। जब कभी भी हमें किसी व्यक्ति का मानसिक सहयोग चाहिए होता है, तो हम एक–दूसरे के प्रति सहानुभूति या सामान्य रूप से एक दूसरे के भाव और अनुभव में लय हो जाते हैं। उदाहरण के लिए जब किसी व्यक्ति को पीड़ा हो रही हो और हम यहां पहुंचकर व्यक्ति की पीड़ा को महसूस करें, तो इसी अनुभव के आधार पर जो अनुभूति हो रही है, इसी अनुभव का प्रभाव उस पीड़ित व्यक्ति पर भी पड़ता है।

हमारा संपूर्ण शरीर ऊर्जा का खेल है। यदि आपको कहीं चोट लग जाए अथवा कहीं कटने–फटने पर पीड़ा का अनुभव हो रहा है और कोई अन्य व्यक्ति आपके पास आकर आपकी पीड़ा पर अपना हाथ रख देता है, तो आपकी पीड़ा कुछ कम हो जाती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उस पीड़ित व्यक्ति के साथ उसका हालचाल जानने आए व्यक्ति का मानसिक रूप से जुड़ाव हो जाता है। जब दो व्यक्तियों का आंतरिक रूप में जुड़ाव हो जाए, तो हम ऐसा अनुभव करते हैं कि अमुक ने हमारे प्रति सहानुभूति व्यक्त की है।

यदि दस-बीस लोग आपको प्रणाम करें और कहें कि आप प्रखर विद्वान हैं, आप अमुक विषय पर गहरी पकड़ रखते हैं तथा आपकी तरह-तरह से तारीफों के पुल बांधें, तो आप जैसे भी होंगे, उसी क्षण से बदलने लगेंगे। आपके प्रति लोगों को जो गलत विश्वास है, वह तो बढ़ता ही चला जा रहा है। आज के लोगों में इसी प्रकार के विचार अपनी जड़ें जमाते जा रहे हैं। इसके विपरीत, यदि दस-बीस लोग आपके पास आकर कहें कि आप बीमार लग रहे हैं, आपका चेहरा बुझा-बुझा सा दिख रहा है, आपकी आंखें अंदर की ओर धंस गई हैं, लगता है आपको पीलिया रोग हो गया है। यह सब सुनते ही वह व्यक्ति अपने स्वास्थ्य को भुला देगा, वह तुरंत ही कहेगा कि हां, उसके शरीर में दर्द है, सिर में भी दर्द है और वह दुर्बल हो गया है। ऐसी परिस्थिति में बहुत से लोग दूसरों की सहानुभूति पाने के लिए अपने चरित्र को भी बेच देते हैं। आप विचार करें कि यदि आज आप किसी व्यक्ति पर सहानुभूति व्यक्त करते हैं, तो उस व्यक्ति पर मानसिक रूप से आपका दबाव पड़ता है। उसके विचारों और चरित्र का आप अपहरण करते हैं। आप उसकी मानसिकता का अपहरण करते हैं, क्योंकि वह व्यक्ति जो होता है, उसे आप तोड़ देते हैं तथा अपने विचारों को उसके ऊपर लाद देते हैं। यदि कोई व्यक्ति बीमार है और आप उसके पास जाएं तथा उसे थोड़ा सहलाएं, पुचकारें-आप देखेंगे उस व्यक्ति की मानसिकता पर आपके व्यक्तित्व का कैसा अद्‌भुत प्रभाव पड़ेगा। लेकिन मेरा मानना है कि कोई भी व्यक्ति किसी के प्रति सहानुभूति प्रकट करे, इससे बड़ा अपराध कोई दूसरा हो ही नहीं सकता है।

जिस व्यक्ति ने यह समझ लिया कि कौन सी सहानुभूति सही है, तो उसके जीवन का विकास हो जाएगा। यदि सहानुभूति गलत है, तो जीवन का नाश हो जाएगा। वह कभी भी किसी गलत धारणा में नहीं पड़ेगा। इसलिए क्यों न यह नियम बना लिया जाए कि मुझे किसी झूठी सहानुभूति या फिर सहानुभूति ही नहीं चाहिए।

•

75

गुरु अंधकार से उबारता है

यह देश योग दर्शन के महान आचार्य पतंजलि का देश है, जिन्होंने पतंजलि योगसूत्र रचा। हमारे देश के महापुरुषों ने बाहर से आए अतिथियों का भी उदारता से सम्मान किया। हमने हर संस्कृति से सीखा, हर संस्कृति को सिखाया।

परंतु अफसोस है कि आज हमें अपनी अंतस्प्रज्ञा का ज्ञान स्वयं नहीं रह गया है। आज हम भी मूर्छित अवस्था में हैं। न देखने के लिए आंख, न सुनने के लिए कान और न ही अनुभव करने के लिए हृदय है। आज फिर से आवश्यकता है, हमें उठ खड़े होने की, ताकि समाज के लोग जागृत हो सकें, निर्भय हो सकें और जो जीवन का उद्देश्य है उसे प्राप्त कर सकें।

आज के दौर में गुरुओं के प्रति भी समाज में कहीं न कहीं श्रद्धा, आस्था है। परंतु यहां हमें यह जरूर देखना होगा कि परमात्मा की राह पर चलते समय वह मात्र एक निर्देशक का कार्य करता है, क्योंकि वह स्वयं भी इसी राह का निकला एक ऐसा पथिक होता है, जो कुछ पड़ाव पार कर पहले ही हमसे आगे बढ़ चुका होता है, प्रभावित करता है और अंततः परिवर्तित करने का प्रयास करता है। वह शिष्य में सेवा और प्रेम को दया और करुणा को, ध्यान और योग की भावना को प्रदीप्त करता है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने गुरु की महत्ता में कहा है:

बंदऊं गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महामोह मत पुंज, जासु वचन रविकर निकर॥

मैं उन गुरु के कमलवत श्री चरणों की वंदना करता हूं, जो कृपा के सागर हैं, मानव देह में भगवान हैं और जिनके वचन माया-मोह के गहन अंधकार को नष्ट करने के लिए सूर्य की किरणों के समान हैं। परंतु मैं तो कहूंगा कि ऊंचे पद पर आसीन गुरु की जिम्मेदारी तब और बहुत ज्यादा बढ़ जाती है जब वह आदर्श रूप में पूजा जाने लगता है। तब ऐसे में समाज के प्रति उनका उत्तरदायित्व होता है - शांति की अखंड धारा को बहाना, विश्व बन्धुत्व की भावना को जागृत करना।

गुरु शब्द में **गु** का अर्थ है - *अंधकार* और **रु** का अर्थ है **दूर करना।**

अर्थात् *गुरु वह है जो समस्त मानवता को अंधकार से उबारकर उजाले की ओर ले जाए।*

वस्तुतः भक्त और भगवान के बीच गुरु सेतु का कार्य करता है। वह द्वार है दीवार नहीं। यदि ऐसा न होता तो कबीर को गुरु रामानंद नहीं मिलते, चंद्रगुप्त को कोई चाणक्य नहीं मिलता। मीराबाई, सहजोबाई, दयाबाई, कर्माबाई सबको गुरु मिले। गुरु को मानने से ज्यादा, जानना जरूरी होता है। तभी तो कहावत है कि **गुरु करें जानकर, पानी पीएं छानकर।** एक सद्गुरु का लक्षण ही होता है वह शिष्य के जीवन को सफल बनाने के लिए आध्यात्मिक वैभव को लुटाते रहे। गुरु आध्यात्म का जीवित स्मारक है। इसीलिए गुरु में ही एक गुरुत्वाकर्षण बल होना चाहिए। उसे शिष्य को अपनी अनुभूतियों के आंगन में बैठाकर गुरुता को धन्य करने का प्रयास करना चाहिए। शिष्य रोगी है, तो गुरु उसका चिकित्सक। शायद यही कारण है कि भारतवर्ष में आज भी वर्ष में कम से कम एक बार शिष्य, गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर अपने गुरु के धाम पहुंचकर अपनी की गई अच्छाइयों एवं बुराइयों का आत्म विश्लेषण जरूर करना चाहता है।

यहां गुरु की जिम्मेदारी और बढ़ जाती है, जबकि उसे आवश्यकता होती है, अपने शिष्य के अंदर ऐसे विचार को आत्मसात् कराने की, ताकि उसका जीवन अच्छी तरह से निर्मित हो सके। ऐसे में शिष्य को भी चाहिए कि वह प्रयत्नपूर्वक गुरु की आराधना करे। सनातन धर्म के सफल संवाहक आदि गुरु शंकराचार्य जी ने भी कहा है कि मंत्र केवल वही नहीं होते जो वेदादि ग्रंथों में लिखे गए हैं।

•

76

वाणी का संयम है मौन

हमारे बीच भी ऐसे लोग हैं, जिन्हें दु:खी होना अच्छा लगता है। आपको भी ऐसे लोग मिल ही जाते होंगे, जिन्हें अपने दु:ख का प्रदर्शन करने में गौरव महसूस होता है। आज के युग में दु:खी होना प्रतिष्ठित होने का प्रमाण-पत्र बन गया है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिस व्यक्ति पर समाज ध्यान नहीं देता, जिसे कोई पूछता नहीं, जिसे समाज में लोग स्वीकारते नहीं, उसे कोई प्रतिष्ठा नहीं देता। वैसे ही लोग दु:खी होकर समाज का ध्यान अपनी ओर खींचना चाहते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक रोग है। ऐसे मानसिक विकलांग हर गली-मुहल्ले में घूमते हुए मिल जाते हैं। उनसे सावधान रहने की जरूरत है।

ऐसे लोग किसी हंसते हुए को भी अकारण दो मिनट में उदास बना देते हैं। जैसे खिले हुए झूमते फूलों पर तुषारापात हो जाए। कई लोग तो ऐसे भी होते हैं, जो राह चलते लोगों को पुकारकर अपनी व्यथा सुनाने लगते हैं। संभव है कि इससे सुनाने वाले का मन हल्का हो जाता हो, लेकिन सुनने वाले को भी सिरदर्द तो हो ही जाता है। पता नहीं क्यों लोग अपने दु:ख की चर्चा दूसरे से करने में आनंद महसूस करते हैं, जबकि सुनने वालों को उनकी व्यथा से कोई लेना-देना नहीं होता। कई लोगों का चरित्र ऐसा होता है कि उनका दु:ख भले ही बनावट हो, लेकिन उसे दूसरे से कहे बिना उन्हें चैन नहीं मिलता। ऐसे लोग जब बीमार पड़ते हैं, तो जो लोग उन्हें देखने जाते हैं, वे अपने दु:ख को कई गुना अधिक बताते हैं, ताकि उन्हें अधिक से अधिक सहानुभूति मिल

सके। ऐसे लोगों की मानसिकता दु:ख को सहने में भी यह होती है कि समाज ने हमें स्वीकार तो नहीं किया, लेकिन हम अपने दु:ख के कारण वीरपुरुष होने का गौरव प्राप्त कर रहे हैं। ऐसे लोग अकारण दु:खी होकर दूसरों की नजर में आना चाहते हैं। उनके लिए मौन अमृत समान हो सकता है। मौन वाणी का संयम है। वाणी जब शब्दों के माध्यम से प्रकट होती है, तो गहरा प्रभाव छोड़ती है। अक्षर ब्रह्म है। अक्षर से शब्द बनता है। शब्द ही वाणी का विन्यास है। मनुष्य का एक-एक शब्द उसके व्यक्तित्व का प्रत्यक्षीकरण है। जीभ वाणी का माध्यम है। जीभ यदि सम्यक संभाषण करे, तो अमृत की वर्षा हो सकती है। सुनने वाला आनंद-विभोर हो सकता है। यदि जीभ के माध्यम से गलत शब्द निकल जाए तो व्यक्ति बुरी तरह आहत हो सकता है। सारे खेल शब्दों के हैं।

हम यदि बिना विचारे शब्दों का प्रयोग करते हैं तो किसी को अकारण दु:खी करने का दोष लेते हैं। जीभ पर यदि विवेक का नियंत्रण न हो, जीभ यदि मर्यादा में न रहे तो अकारण हम सैकड़ों दुश्मन पैदा कर लेते हैं। द्रौपदी ने एक बार दुर्योधन को शब्दों से घायल किया था और दूसरी बार अपने स्वयंवर में कर्ण को क्षत-विक्षत कर दिया था, जिसका परिणाम कौरवों व पांडवों के नाश का कारण बना। अपने जीवन में सुंदर शब्दों के प्रयोग से हम मित्रों की संख्या बढ़ा सकते हैं और कड़े शब्दों के प्रयोग से दुश्मन भी पैदा कर सकते हैं। **महावीर** कहते हैं "सम्यक वाणी बोलो" और **नानक** कहते हैं कि "यदि मधुर नहीं बोल सकते, तो मौन रहो, क्योंकि मौन में वाणी का दुरुपयोग नहीं होता और कंटीले शब्दों से कोई घायल भी नहीं होता। हमारा धर्म यही है कि हम अपने कार्यों व वाणी से किसी को दु:खी न करें।"

•

77

बातन हाथी पाइए, बातन

बातचीत एक अद्‌भुत कला है जिस कला का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को होना चाहिए। इसके अभाव में मनुष्य प्रभावहीन हो जाता है। उसकी बात का कोई महत्त्व नहीं होता। बात से ही आप हाथी पा सकते हैं और बात से ही आप हाथी के पैर के नीचे भी आ सकते हैं। आज भी लोग सफलता के शिखर पर बैठे हुए हैं, उनमें कुछ न कुछ ऐसी विशिष्टता रही, जिसके कारण वे जीवन में सफल हो सके। उनका आचरण, उनका चरित्र, उनके काम करने, बोलने और जीवन जीने का तरीका अलग है। वे लोग ऐसा आचरण नहीं कर सकते, जैसा अन्य लोग करते हैं। वे फालतू बकवास नहीं करते, इनका चरित्र और विचार मर्यादाशील होता है। वे कभी भी अपनी बातों से किसी को चोट नहीं पहुंचाते, अपशब्द नहीं बोलते और दूसरों को नीचा दिखाने, दूसरों की निंदा करने का वे कभी प्रयास नहीं करते।

जबकि कुछ लोगों के संबंध में कहा जाता है कि उसे बोलना नहीं आता। इसका अर्थ है कि उसकी बोली में नैतिकता और मर्यादा का अभाव होता है। वे इस तरह बात-बात में अपनी झूठी शान-शौकत और अहंकार का प्रदर्शन करते हैं कि लोग उनके व्यवहार से दु:खी हो जाते हैं।

इसलिए बोलते समय सरल भाषा में बोलने की कोशिश करो। ऐसा बोलो कि तुम्हारी बात दूसरे सुन सकें। दूसरे जब बोलने लगें तो ध्यान

से सुनो, फिर विचार करो, अपने तर्क से उसे काटो अथवा समर्थन करो। लेकिन चिल्लाकर बात मत करो।

परमात्मा ने तुम्हें इतना सुंदर शरीर, इतना सुंदर चेहरा दिया है, उसे गंदा मत करो। एक कहावत है–**'यही मुंह पान खिलाता है और यही मुंह लात खिलाता है।'** इसी मुंह से अगर अच्छे शब्दों का उच्चारण करोगे तो लोग तुम्हें प्यार करेंगे और अपशब्द बोलोगे तो तुमसे घृणा करेंगे, कोई तुमसे बात करना भी नहीं चाहेगा।

•

78

बोलने की अनमोल कला

हम मनुष्यों को ईश्वर ने एक अनमोल उपहार प्रदान किया है–वह है एक–दूसरे से अपनी बात कहने और समझने की कला। समाज में यदि किसी व्यक्ति से संबंध स्थापित करना है, तो संवाद या बातचीत सर्वोत्तम साधन है।

दरअसल, जब आप किसी से बातचीत करते हैं तो सामने वाले को यह पता चल जाता है कि आपकी बातों में कितनी गहराई है, कितना तथ्य है और अपनी बातों को आप दूसरों के सामने कैसे प्रस्तुत करते हैं। कहा जा सकता है कि शब्दों के माध्यम से आप अपने व्यक्तित्व को दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। सच तो यही है कि **बातचीत एक अद्‌भुत कला है और इस कला का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को होना चाहिए।** इसके अभाव में मनुष्य प्रभावहीन हो जाता है। यहां तक कि उनकी बातों का कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता है। यदि हम सफलता के दृष्टिकोण से भी देखें, तो बातचीत में निपुण होना बेहद जरूरी है। कुछ लोगों के लिए दिन भर बोलते रहना, बकवास और अनर्गल प्रलाप करना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। लेकिन हमें हमेशा इन बातों का ध्यान रखना चाहिए कि जो भी हम बोलें, उन शब्दों का कुछ अर्थ निकले। हमारा बोलना तभी सार्थक हो सकता है जब हमारी बातों का सामने वाले व्यक्ति पर सकारात्मक प्रभाव पड़े। बातचीत करते समय हमें एक और बात ध्यान में रखनी चाहिए। कई बार जब हम किसी से बात करते हैं,

तो दूसरे पक्ष को बोलने का अवसर ही नहीं देते हैं। इसलिए जब हम किसी से बात करते हैं, तो उसकी पूरी बात सुन लेनी चाहिए, तभी उसका सार्थक उत्तर देना चाहिए।

वास्तव में, बातचीत की सुंदर कला को ही पूरी दुनिया में लोग सराहते हैं। प्रसिद्ध लेखक **रसेल** ने एक पुस्तक लिखी है **'आर्ट ऑफ लाइफ'** । इस पुस्तक में उन्होंने जीवन जीने की विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। रसेल के अनुसार, जीवन प्रत्येक व्यक्ति जीता है, लेकिन जो व्यक्ति प्रभाव-शून्य जीवन जीता हो अर्थात् जिसका कोई उद्देश्य ही नहीं हो, उसका जीवन बेकार है। हम मनुष्यों के पास विवेकशील दिमाग है और यदि किसी व्यक्ति ने अपने विवेक का सदुपयोग किया है, तो वास्तव में, वही सार्थक जीवन जीता है। इसलिए जीवन जीने की कला बातचीत की शैली, आचार-व्यवहार और विचार का ज्ञान जरूरी है। जो लोग जीवन में सफलता, यश, मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा चाहते हैं, उन्हें अपनी वाणी पर नियंत्रण रखकर जीवन के विज्ञान को समझने की कोशिश करनी चाहिए।

दूसरी ओर, जो लोग केवल योजनाएं बनाते रहते हैं कि आज से मैं कभी ज्यादा नहीं बोलूंगा, तो उन्हें सफलता कैसे मिल सकती है? वास्तव में, उन्हें जीवन जीना ही नहीं आता, उनके लिए जीवन को सफल बनाना 'दूर की कौड़ी' के समान है। इसके लिए हमें प्रयास करना पड़ता है और तैयारी करनी पड़ती है, तभी जीवन में सफलता मिलती है। सच तो यह है कि केवल सोचने वाले लोग इस संसार में बहुत हैं, लेकिन करने वाले बहुत कम हैं। इसलिए जीवन में कर्म का महत्त्व होता है, सोचने का नहीं। जीवन सुव्यवस्थित करने के लिए प्लानिंग करना अच्छी बात है, लेकिन प्लानिंग करते रहना और उसे कार्यरूप में परिणत न करना कायर व्यक्ति का लक्षण है। हमारा जीवन बहुत ही महत्त्वपूर्ण और सुंदर है। उसे अपने एक निश्चित लक्ष्य से भटकना नहीं चाहिए। यदि हमें जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करनी है, तो जीवन में अधिक अंक लाना ही होगा। पढ़ाई में अधिक अंक ले आना एक अच्छी बात हो सकती है, लेकिन जीवन में अधिक अंक ले आना

सबसे महत्त्वपूर्ण बात है। सच तो यह है कि हमें ऐसी डिग्री नहीं चाहिए, जो परीक्षा में प्रथम श्रेणी दिलवा दे और जीवन की परीक्षा में फेल कर दे। बच्चों के संबंध में कहा जाता है कि वे पढ़ाई में होशियार हैं, लेकिन उन्हें बोलना नहीं आता, बड़ों के साथ व्यवहार करना नहीं आता और नशा भी करते हैं। यदि आपमें इस तरह की बुराइयां हैं तो फिर पढ़ाई का क्या महत्त्व है? यदि आपको अपना जीवन सफल और समृद्ध बनाना है, तो कुछ गंदी आदतों का त्याग करना ही होगा।

•

79

पहले तौलो फिर बोलो

कहा जाता है, कि यदि किसी के व्यक्तित्व या चरित्र के बारे में जानना हो, तो उसके साथ कुछ पल बातचीत करते हुए बिताना चाहिए। इससे उसके पूरे चरित्र का आभास हो जाता है। कोई व्यक्ति जब किसी शब्द का उच्चारण करता है, तो उसके हृदय के भाव उसके शब्दों के साथ निकलते हैं। हमारे पूर्वजों ने कहा भी है कि यदि बोलना न आता हो, तो मुंह बंद रखो। यदि कोई व्यक्ति कुछ प्रश्न करता है तो उसका उत्तर हम जिस रूप व शब्दों में देते हैं, हमारे चरित्र व विचारों का आकलन करने के लिए उसके लिए यही माध्यम होता है। जो विवेकशील होते हैं, अपना मुंह सोच-समझकर खोलते हैं एवं अपने मुंह से शब्दों को तोल-परखकर ही निकालते हैं। हमारे पूर्वजों ने भी कहा है कि पहले तोलो फिर बोलो और जो बोलो गहराई के साथ बोलो। मुंह से केवल ऐसे शब्द निकालो, जिनका अर्थ सिर्फ सकारात्मक हो। निरर्थक शब्दों का प्रयोग औचित्यहीन होता है।

हमें इसका ध्यान रखना चाहिए कि हमारे मुंह से जो कुछ भी निकले, वह मर्यादापूर्ण, अर्थपूर्ण व प्रभावपूर्ण हो। आप संतों के साथ बैठते हैं, उनकी बातें सुनते हैं, सत्संगों में जाते हैं, जो अपनी मृदुभाषित, मुस्कान व हाव-भाव से हमारे दिल में स्थान बना लेते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो एक मिनट भी हमसे बात कर लें, तो हमारा दिल दु:खी हो जाता है। यह तो सामान्य आचार-विचार की बात है कि जब कभी हम किसी दूसरे से या कोई दूसरा हमारे पास आकर हमसे बात करना

चाहता है तो हमें आह्लादपूर्वक एक-दूसरे का स्वागत करना चाहिए, ध्यानपूर्वक एक-दूसरे की बातें सुननी चाहिए। उनके हाव-भाव भी ऐसे हों, जो एक-दूसरे को प्रभावित कर सकें। हम लोग काम वही करते हैं जो अच्छा लगता है, लेकिन यदि दूसरों की बात सुन ली जाए तो उसमें क्या बुराई है। कई लोग ऐसे होते हैं जो अंदर से खाली होते हैं, उन्हें हर समय यही भाव सताता रहता है कि यदि मैं किसी दूसरे से कुछ बात करूं, तो सामने वाला मेरी गलती पकड़ लेगा या मेरी बुराइयों की आलोचना प्रारंभ कर देगा। कुछ लोग सिर्फ इसलिए बात नहीं करना चाहते कि हमारे सामने जो आया है, उससे बात करके छोटा नहीं होना चाहते। यही पहचान है, किसी के खालीपन की। जो जितना खाली होता है, सामने वाले से बातें करने में वह उतना ही भय खाता है। इसलिए आपके सामने जो भी आए, उससे आह्लादपूर्वक बातें करें। वहीं से यह परीक्षा भी शुरू हो जाएगी कि उसके आने का प्रयोजन क्या है? पहले सामने वाले को बोलने दें कि क्या कहना चाहता है, उसकी बातों को हृदय से सुनें, ताकि उसे संतुष्टि मिले कि वह जो कहना चाहता था, कह दिया और सामने वाला अर्थात् आपने उसकी पूरी बात सुन ली।

•

80

हम सबसे नाटक करा रही है माया

जगत्गुरु शंकराचार्य ने बड़ी अच्छी बात कही है-**ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या** अर्थात् *सिर्फ ब्रह्म ही सत्य है, संसार झूठा है।* शंकराचार्य की इस बात पर लोगों ने उनकी परीक्षा लेने के मकसद से एक नाटक रचा। एक बार शंकराचार्य किसी रास्ते की पगडंडी से होते हुए कहीं जा रहे थे, तभी गांव के लोगों ने एक पागल हाथी को उनके पीछे दौड़ा दिया। शंकराचार्य ने जब देखा कि एक हाथी उनके पीछे दौड़ता हुआ आ रहा है तो वे हाथी से डरकर भागने लगे। वे दौड़ते-दौड़ते काफी दूर तक निकल गए, परंतु हाथी ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। फिर गांव के लोगों ने मिलकर काफी मशक्कत के बाद उस हाथी से उनका पीछा छुड़ाया और उन्हें घेर कर पूछा कि "एक ओर तो आप कहते हैं कि इस जगत में सिर्फ ब्रह्म ही सत्य है, उसके सिवा और कोई सत्य है ही नहीं, यहां तक कि आपने ब्रह्म के सामने इस जगत को भी झूठा कह दिया। फिर तो वह हाथी भी झूठा ही हुआ, जो आपके पीछे दौड़ रहा था। फिर आप उस झूठे हाथी से डरकर भाग क्यों रहे थे?" जगत्गुरु ने स्पष्ट किया-"सच! यह जगत या इस जगत में विद्यमान सब कुछ झूठा है, मिथ्या है! जब जगत में सब कुछ झूठा, तो हाथी भी झूठा! जब हाथी भी झूठा, तो मेरा भागना भी झूठा!"

आचार्य श्री सुदर्शन इसी घटना के आगे कहते हैं कि "मुझे एक और घटना याद आ गई। मैं एक बार किसी प्रवचन कार्यक्रम में अतिथि के रूप में आमंत्रित था। वहां उपस्थित एक संत ने मुझसे पूछा कि

महाराज! आप बताएं कि ब्रह्म, जीव और माया में क्या अंतर है? समयाभाव की वजह से मैंने इसका संक्षिप्त उत्तर दिया – 'जीव माया के वश में है और माया ईश्वर के वश में।' यह माया ही है, जो हम इस संसार रूपी नाटक में अपने-अपने चरित्र निभा रहे हैं। हमारी आंखों पर माया की काफी मोटी परत बैठ चुकी है। हम वास्तविक स्थिति से स्वयं को जोड़ ही नहीं पाते और सत्य से दूर खड़े हो जाते हैं। यहां सत्य की परिभाषा यह हुई कि सत्य अर्थात् वह जो अपरिभाषित हो, जिसका क्षरण न हो सके, जिसे प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं हो, जो स्वयं सिद्ध हो जाए, वही सत्य है। वह जिसे प्रमाणित करने की आवश्यकता हो जाए, जिसे स्पष्ट होने के लिए प्रमाणों की आवश्यकता हो, वही असत्य है। लेकिन आत्मा और ब्रह्म, इन्हें समझने के लिए हमें किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जो स्वयं में सिद्ध है, जिसे किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं हो, उसे समझना क्या! वह तो सरल है। शंकराचार्य का कहना है कि ये सारी चीजें मिथ्या हैं। क्योंकि जीव है तभी माया है और पुनः माया के कारण ही तो जीव किसी रूप में हमें दिख रहा है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है कि इस सृष्टि के सम्पूर्ण जीव ईश्वरमय हैं। हमारी दृष्टि भिन्नता के कारण ही हम देख नहीं पा रहे हैं।"

•

81

योग प्रकृति के प्रभाव को नियंत्रित करता है

संवेग में एकरूपता आ जाए तो **'कैवल्य' 'महानिर्वाण संबोधि'** में प्रवेश के मार्ग खुल जाते हैं जिस प्रकार मूलाधार से जब ऊर्जा ऊपर की ओर 'उत्प्रेषित' होती है तो सहस्रार के द्वार पर पहुंचते ही सहस्रार का द्वार खुल जाता है और जीव ब्रह्म बन जाता है। योग शरीर पर प्रकृति से पड़ने वाले प्रभावों को भी नियंत्रित करता है विज्ञान की भाषा में उस प्रभाव को आयन करते हैं पूरी पृथ्वी एवं हमारा शरीर ऋणायन एवं धनायन से प्रभावित होता रहता है, शरीर रोगग्रस्त हो जाता है इसी रोग मुक्ति के लिए हम स्थान परिवर्तन कर कभी हिल स्टेशन तो कभी सागर किनारे चले जाते हैं पहाड़ समुद्र किनारा एवं कई छोटे-बड़े हिल स्टेशन होते हैं। इसलिए शरीर को उन स्थानों पर लाभ होता है समुद्र की लहरों में ऋणायन वातावरण पैदा होता है।

कभी-कभी किसी स्थान पर विशेष भी ऋणायन वातावरण अधिक होता है जहां आते ही मनुष्य स्वस्थ, स्फूर्तिदायक एवं प्रसन्न हो जाता है। ऐसा स्थान विशेष के कारण होता है। शरीर जब कभी धनायन हो जाता है, तो वह बीमार पड़ जाता है, क्योंकि पृथ्वी और शरीर ऋणायन है धनायन शरीर को ऋणायन बनाने के लिए हम हिल स्टेशन पर जाते हैं। वहां के वातावरण में शरीर ऋणायन बन जाता है। अब प्रश्न है *यह आयन क्या है और बनता कैसे है?* दरअसल अध्यात्म और विशेषकर

योग शास्त्र में यह माना जाता है सम्पूर्ण सृष्टि दिव्य शक्ति से संचालित होती है। यह शक्ति अंतरिक्ष से आती है जो सूर्यमंडल होते हुए पृथ्वी पर और फिर जीव के शरीर पर पड़ता है। दिव्यता का आलोक सम्पूर्ण जगत में फैला हुआ है। इसी दिव्यता को संत पुरुष धारण करते हैं और अपने शरीर को चुम्बकीय शक्ति से विभूषित करते हैं। दिव्य पुरुष का शरीर चुम्बकीय शक्ति से भरा रहता है। इसलिए महापुरुषों के स्पर्श से चमत्कार होता हुआ दिखता है जैसे-**रामकृष्ण और विवेकानंद** के साथ हुआ। ऐसा अनेक संतों के साथ प्रायः होता है। कभी-कभी किसी भूल के कारण कोई दुष्ट शक्ति उत्पन्न हो जाती है जिससे शरीर बीमार भी हो जाता है।

बीमारी और कुछ नहीं नेगेटिव इनर्जी का संग्रह है। योग में संत पुरुष पोजिटिव एनर्जी को इतना बढ़ा लेते हैं कि नेगेटिव एनर्जी उनके निकट नहीं आ पाती। इन संतों की निरोधक शक्ति बढ़ जाती है जिसके कारण वे कभी बीमार नहीं पड़ते। जैसे भगवान महावीर भगवान बुद्ध, जैसे अनेक संतों ने यह साबित कर दिया है कि शरीर में अगर पोजिटिव एनर्जी है तो वह किसी भी दुष्ट शक्ति से प्रभावित नहीं होती।

अभी हाल ही में अमेरिका में खोज हुई है कि वातावरण में कभी-कभी दूषित वायु भी चलने लगती है जिसे विज्ञान की भाषा में **इल विंडस** कहते हैं। जो शरीर के लिए हानिकारक है। कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि शरीर पर ऋणायन और धनायन प्रभाव पड़ता है। जिस कारण शरीर स्वस्थ अथवा बीमार पड़ता है विज्ञान से भी इन बातों की पुष्टि हो रही है कि वातावरण से शरीर प्रभावित होता है अध्यात्म में माना जाता है कि दिव्य शक्तियां जब ऊपर से उतरती हैं तो पृथ्वी के सम्पूर्ण जीव जगत को प्रभावित करती हैं। लेकिन कभी-कभी दुष्ट और दूषित वातावरण के कारण दिव्य शक्ति की आभा थोड़ी कमजोर पड़ जाती है। जैसे वर्षा का पानी ऊपर से जब गिरता है वह शुद्ध रहता है उसे पीया जा सकता है लेकिन वही पानी अगर गंदे स्थान पर गिरे तो उसे नहीं पीया जा सकता वातावरण का शुद्ध होना और अशुद्ध होना इस बात पर निर्भर है कि पृथ्वी का वायुमंडल कैसा है।

आज का विज्ञान मानता है कि पृथ्वी में जो शक्ति है वह सूर्य से आती है। यहां तक कि ऑक्सीजन भी सूर्य से ही आता है इसी को प्राण

ऊर्जा कहा जाता है लेकिन ऑक्सीजन भी पूरी प्राण ऊर्जा नहीं है। उसमें प्राण ऊर्जा मिली रहती है। यह एक ऐसा विचार करने लायक प्रश्न है जिसे विज्ञान नहीं समझ सकता। लेकिन ऊर्जा को समझना विज्ञान के लिए अनिवार्य है, क्योंकि भौतिक शास्त्र में ऊर्जा एक विषय है प्राण शक्ति तो दिव्य है जिसे विज्ञान की आंखों से अथवा उनकी प्रयोगशाला में नहीं समझा जा सकता है क्योंकि वैसा यंत्र अभी विज्ञान के पास नहीं है। इसे केवल आध्यात्मिक लोग ही समझ सकते हैं। लेकिन विज्ञान ऊर्जा को समझने का प्रयास कर सका है, अमेरिका में **विलियम्स रैक** ने एनर्जी को समझकर एक एनर्जी बॉक्स भी बनाया था लेकिन उसकी मान्यता उन्हें नहीं मिली।

•

82

बुढ़ापा जीवन का शृंगार

बुढ़ापा वास्तव में मानव जीवन का श्रृंगार है। यह आनन्द की स्थिति होती है और इसे एक महोत्सव के रूप में लेना चाहिए। जब शरीर में, परिवार में, घर में चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण होता है, तो हम उसे महोत्सव कहते हैं। बुढ़ापे में प्रवेश से पहले हमने तैयारी कर ली, अब हमें महोत्सव में प्रवेश करना है। किसी बुझे हुए या निराश मन से जो लोग बुढ़ापे में प्रवेश करने पर अपने को समाज से कटा हुआ मानते हैं। यह हमारे मन की एक भूल है। पूरी जवानी की अवस्था में तुमने बहुत परिश्रम किया है, बहुत कुछ इकट्ठा किया है, अब इस परिश्रम के फल को चखने का समय आया है।

परिवार में किसी बुजुर्ग को असहयोगी संतान होती है, तो हम इसे अपने जीवन को नरक बनाने का आधार नहीं बना सकते। आप दूसरों के ऊपर क्यों आश्रित होना चाहते हैं? आप यह कैसे सोच सकते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति सदा हमारी ही सेवा में लगा रहेगा? आपकी यही कामना आपका नाश कर रही है। आपने यह कैसे सोच लिया कि आपका पुत्र एवं पुत्रवधु तथा उनके बच्चे आपकी आज्ञाओं का पालन करेंगे?

आप कहेंगे कि यह मेरा परिवार है, इसलिए मैंने ऐसी आशा की है। आशा का परिणाम ही तो निराशा है। जो व्यक्ति कभी दु:खी होता है, उसके संबंध में आप इतना मान लें कि दु:खी होने वाला व्यक्ति निश्चित रूप से किसी-न-किसी कामना से ग्रसित रहता है जब कोई व्यक्ति किसी से कोई कामना करता है और जब उसकी कोई कामना

पूरी नहीं होती, तो वह व्यक्ति दु:खी हो जाता है। हमारी इच्छाएँ पूरी नहीं हो रही हैं, केवल इसी कारण से हमें दु:खी नहीं होना चाहिए।

बुढ़ापा आते ही यदि हम अपनी इस कामना रूपी गठरी को अपने से दूर कर दें, तो हम आसानी से वैराग्य ले सकते हैं। लोग वैराग्य में अपने पूरे कलेवर को उतार फेंकते हैं। तब उनके जीवन में सिर्फ प्रसन्नता ही रह जाती है। आपने यह कैसे सोच लिया कि आपका परिवार, गाँव, समाज, शहर या देश का हर व्यक्ति आपके लिए चौबीसों घंटे माला लेकर खड़ा रहेगा। आपकी यही सोच तो कामना है। जिस दिन आप कामना करना छोड़ देंगे, फिर आपके जीवन में कोई कमी नहीं रहेगी।

हर व्यक्ति दो रोटी खाकर ही जीता है, फिर आपने यह कामना क्यों की कि आपको दुनिया की तरह-तरह के भोग-विलास की चीजें मिल जाए। जीवन भर आपने काफी परिश्रम किया है। अब जीवन के अंत में बुढ़ापा आ गया है, इस समय भी आपकी कामना आपका साथ नहीं छोड़ रही है। कहा भी जाता है-

पाके केश जनम के साथी, दशन गए मुखनते।
ममता तू न गये मेरे मन ते॥

ममता आपको क्यों पकड़ी है। किसी भी चीज के प्रति अगर आपका आग्रह है, आपकी जो आशाएं हैं, वही तो आपके दु:खों का कारण है। आपने यदि यह आश की कि आपने जिस सम्पत्ति का अर्जन किया है, आपके बाद आपके पुत्र उसको नष्ट कर देंगे, यदि यही आपके दु:ख का कारण है तो क्या अपनी मृत्यु के बाद आप यह देखने आएंगे कि आपका पुत्र किस चीज को घटा रहा है और किस चीज को बढ़ा रहा है?

कोई भी व्यक्ति यह नहीं चाहता कि मैंने अपने जीवन में जो अर्जित किया है, उसे, उसके जाने के बाद उसके पुत्र बर्बाद कर दें। हमारे नीतिकारों ने भी तो यही कहा है।

•

83

कैसे हों दीर्घायु?

हमारे अंतर्मन में अच्छे विचारों का भंडार है। यदि उन अच्छे विचारों का पालन किया जाए, तो हम यशस्वी और दीर्घायु बन सकते हैं। इसलिए यदि आप शतायु होना चाहते हैं, तो मन में अच्छे विचार लाएं और उन पर अमल करें।

हमें अपने अच्छे विचारों को पोषित करना चाहिए। जब आप मन में अपने अच्छे स्वास्थ्य का विचार लाते हैं, तो ऐसा होने की एक मानसिक प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

आप यह सोचें कि आपके शरीर के सभी अंग स्वस्थ हैं और आप दीर्घायु बनना चाहते हैं। ऐसे सकारात्मक विचार से आपकी जीवन शक्ति बढ़ेगी और आप स्वस्थ भी होंगे।

ग्रहण करें प्रेरणा : कुछ अच्छे विचारों में एक है–प्रकृति, परमात्मा और गुरुजनों से प्रेरणा ग्रहण करना। इसके लिए जब कभी आप पूजा में बैठें या ध्यान करें, तो मन में यह भाव लाएं कि परमात्मा या गुरु के शरीर से निकलने वाला दिव्य प्रकाश आपके शरीर में प्रवेश कर रहा है। इस भाव में गहरे उतरें। जब कभी अपने मित्रों से मिलें, तो शुभकामना के शब्द जरूर बोलें। किसी भी व्यक्ति से मिलने पर प्रेम–भाव प्रकट करें। सामने वाले व्यक्ति को यह एहसास हो कि आप उसके आत्मीय हैं। प्रेम भाव के साथ अभिवादन करने पर अपनत्व बढ़ता है।

गुरु वंदना : माना जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति में परमात्मा निवास करते हैं, लेकिन कुछ बुरी आदतों की वजह से वे हमसे दूर हो गए हैं।

फिर से हमें उन्हें पाना है। इसके लिए हमें मन में विश्वास पैदा करना होगा और अपने गुरु के बताए हुए मार्ग पर चलना होगा। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार, किसी भी काम को करने से पहले गुरु की वंदना अवश्य करनी चाहिए।

बंदौ गुरु पंद पदुम परागा।

सुरचि सुवास सरस अनुरागा।।

जो लोग गुरु की वंदना कर किसी काम की शुरुआत करते हैं, उन्हें हर कदम पर सफलता मिलती है। आज कुछ लोग दु:खी, बीमार और अशांत हैं, क्योंकि उन्हें गुरु का आशीर्वाद प्राप्त नहीं है।

दिव्य शक्ति : महान वैज्ञानिक आइंस्टीन मानते थे कि ब्रह्मांड में कोई ऐसी दिव्य शक्ति है, जो संपूर्ण सौरमंडल, निहारिका और आकाशगंगा को नियंत्रित कर रही है। उन्होंने अपनी पुस्तक **'थ्योरी ऑफ लाइफ क्वांटम'** में लिखा है कि इस ब्रह्मांड से यदि टाइम और स्पेस को हटा दिया जाए, तो इसका स्वरूप ही बदल जाएगा। इसके कारण ही यह जगत समय और स्थान की सीमा में बंधा दिखता है। भौतिक शास्त्र विद्युत को पदार्थ की अंतिम इकाई मानता है, लेकिन अध्यात्म विज्ञान ध्वनि को अंतिम मानता है। विज्ञान केवल पदार्थ की भाषा बोलता है, जबकि अध्यात्म पदार्थ के पार की भाषा में इस रहस्यमय ब्रह्मांड की व्याख्या करता है।

•

84

आंतरिक ऊर्जा बढ़ाएं

यदि आपके मन में अपने बड़ों या फिर अपने माता-पिता के लिए स्नेह व सम्मान है। गुरुजन व देवताओं के प्रति आदर है, तो आपको अपने जीवन में निश्चय ही उसका फल प्राप्त होगा। कोई व्यक्ति यदि किसी काम के लिए अपने माता-पिता व गुरु का आशीर्वाद लेकर निकलता है, तो वह निश्चित रूप से सफल होता है। यदि वह अपने काम में असफल हुआ, तो उसने निश्चय ही पूरी श्रद्धा से उनका आशीर्वाद नहीं लिया। मेरा मानना है कि हर आशीर्वाद का एक फल होता है। यदि आप कभी संकट में फंस जाएं तो कुछ देर के लिए आंखें बंद करके परमात्मा का स्मरण करें। माता-पिता व गुरु का स्मरण करें, निश्चय ही आपको संकट से निकलने का रास्ता नजर आ जाएगा। आपके माता-पिता में हजारों अवगुण हो सकते हैं, लेकिन उनके प्रति आपके भाव में अविश्वास नहीं होना चाहिए। उनके प्रति आपका प्रेम निश्छल होना चाहिए। कहा भी गया है कि जो गुरु करे वह नहीं बल्कि जो गुरु कहे, सिर्फ वही करना चाहिए।

वैज्ञानिकों के अनुसार हम भोजन के रूप में जो कुछ भी ग्रहण करते हैं, उसके दो फायदे होते हैं। पहला यह कि भोजन से प्राप्त ऊर्जा शरीर के जरूरी खर्च की पूर्ति करती है, दूसरा इससे बचने वाली ऊर्जा का एकत्रीकरण भी करती है। वैज्ञानिकों का मानना है कि यदि हम लगातार 90 दिनों तक भोजन नहीं भी करें, तो जीवित रह सकते हैं, क्योंकि हमारा शरीर 90 दिनों के लिए आवश्यक ऊर्जा को भंडारण

किए गए स्रोतों से प्राप्त कर लेता है। हमारे शरीर में दो प्रकार के विज्ञान काम करते हैं। पहला हम जो भोजन कर रहे हैं, उससे हमारे दैनिक कार्य संपन्न करने के लिए ऊर्जा का निर्माण हो रहा है और दूसरा हमारा शरीर उन शक्तियों का एक आनुपातिक मात्रा में भंडारण भी करता है। यह संग्रहित ऊर्जा तब हमारे काम आती है, जब हम बीमार पड़ते हैं तथा जब हमें कुछ दिनों तक बिना भोजन के रहना पड़ता है। कई बार ऐसा भी होता है कि हम 10-15 दिनों तक बीमार हो जाते हैं, ऐसे में हमें हमारे उसी ऊर्जा भंडार से शक्ति मिलती रहती है।

हम लोग कभी-कभी रक्तदान भी करते हैं। जब हम रक्तदान करते हैं, तो हमारे शरीर की पूरी शक्ति उस रक्त की कमी को पूरा करने में लग जाती है। ऐसे में हमारे शरीर की आंतरिक गतिविधियां स्वतः बंद हो जाती हैं और तब उनका पहला काम होता है, यथाशीघ्र शरीर में हुई रक्त की कमी को पूरा करना। इसी प्रकार जब हम बच्चों को साधना में बैठाते हैं, तो उन्हें यह कहा जाता है कि ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अपने शरीर की आंतरिक ऊर्जा को बढ़ाएं, क्योंकि जब आपकी ऊर्जा शक्ति का बहाव आरंभ हो जाएगा, तो आंतरिक शक्ति का ह्रास होगा। यह न भूले कि आपके शरीर की जितनी भी ऊर्जा बाहर की ओर जाएगी, आपका शरीर उसकी पूर्ति के लिए अपनी सभी मशीनों को स्वतः ही उस ओर लगा देगा।

•

85

आत्म-पीड़ा से बचें

यदि आपके अंदर विश्वास की कमी है, तो मंदिर जाने से भी कोई लाभ नहीं मिलेगा। वहां भी आप केवल पत्थर की मूर्ति ही देख पाएंगे। कहा भी गया है-**'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखीं तिन तैसी'** अर्थात् आपकी भावना जैसी होगी, दुनिया आपको वैसी ही दिखेगी। खेतों को देखकर किसान, व्यापारी या कवि की भावना कैसी हो सकती है, क्या आप इसका अंदाजा लगा सकते हैं? क्या सभी की सोच का परिणाम एक ही निकलेगा? नहीं! फूल को देखकर कोई विद्यार्थी उसके गुणों की व्याख्या करता है तो कोई कवि उसकी सुंदरता पर मोहित होकर कुछ पंक्तियां रच डालता है। यदि हम अपने जीवन से निराश व हताश हैं, तो इसका अर्थ यह हुआ कि हम हारे हुए हैं, जबकि ईश्वर ने हमें यह जीवन इसलिए नहीं दिया कि हम इसे हताशा व निराशा में ही गंवा दें।

निराश व हताश लोगों के लिए एक विदेशी शब्द-सैडिस्ट (आत्मपीड़क) का इजाद हुआ है। फ्रांस के एक व्यक्ति डी सेड ने खुद को पीड़ा पहुंचाने का कीर्तिमान बनाया था। उसकी प्रेमिका ने जब उसे दगा दे दिया, तो उसने अपने शरीर को कोड़े से मारकर व ब्लेड से काटकर इतना कष्ट पहुंचाया जैसा कोई दूसरा कर ही नहीं सकता था। ऐसे ही व्यक्ति को 'सैडिस्ट' कहते हैं। हम भी तो यही कर रहे हैं और अपने शरीर को प्रतिदिन पीड़ा पहुंचा रहे हैं। कभी शराब पीकर तो कभी नशा करके। इसी में हमें आनंद की प्राप्ति का अनुभव होता है। हमारे

समाज में तो ऐसे भी व्यक्ति हैं जो दूसरों को पीड़ा पहुंचाकर खुश होते हैं, परंतु हम तो खुद को ही पीड़ा देकर आनंदित होते हैं।

एक व्यक्ति हाथी के बच्चे को किसी प्रकार पहाड़ पर पहुंचाता और फिर राजा को सूचित करता था। राजा आते और वहां से हाथी के बच्चे को धक्का दे देते, हाथी का बच्चा जब छटपटाता हुआ नीचे गिरता, तो राजा अपनी खुशी का इजहार करता हुआ बांसुरी बजाता था। राजा तो हाथी को पीड़ा पहुंचाकर खुश होता था, परंतु हम तो स्वयं को पीड़ा देकर खुश होते हैं। निराशावादी लोग ऐसे ही होते हैं, जो अपने जीवन में कुछ नहीं कर पाते। आज समाज में हर तरफ निराशावादी लोग भरे मिलते हैं, जो निश्चय कर लेते हैं कि मुझे कुछ नहीं करना, केवल पृथ्वी का भार बनकर बुरा काम करना है और फिर मर जाना है। यह जीवन हमें इसलिए नहीं मिला कि इसे हम नष्ट करते रहें। परमात्मा ने हमें अच्छा जीवन व अच्छी काया दी है, परंतु हम इसे व्यसन व व्यभिचार में ही लुटा देने के लिए संकल्पित हो चुके हैं। शरीर की सारी ऊर्जा को व्यर्थ बहा दिया, शरीर का तेज चला गया, उसकी प्रफुल्लता नष्ट हो गई। हमने सारा नुकसान तो अपने से ही किया और फिर ईश्वर को दोष देते हैं कि उसने मेरे साथ अन्याय किया और मुझे सफल होने का मार्ग नहीं दिया। अब सवाल यह पैदा होता है कि क्या परमात्मा डंडा लेकर आपके रास्ते में खड़ा था? परमात्मा ने तो आपको स्वतंत्र कर रखा था, लेकिन आपने ही तो कुछ नहीं करने की कसम खा रखी थी। कहा भी गया है – सकल पदारथ एहि जग माही, कर्महीन नर पावत नाहीं।

•

86

खुद को न सताएं

शास्त्रों में परमात्मा का निवास आत्मा में माना जाता है। परमात्मा आत्मा का विस्तार है और आत्मा परमात्मा का संकुचित रूप। जो लोग आत्मा के निवास स्थान को नश्वर मानते हैं, उसे कष्ट देते हैं, सताते हैं, वे हिंसा करते हैं। हिंसा का अर्थ है, किसी को नष्ट करने का प्रयास करना। शरीर आत्मा का वाहन है। यदि वह स्वस्थ है तो उसमें स्वस्थ आत्मा का वास होता है। यदि वह बीमार है, तो वह सही ढंग से काम नहीं कर सकता। साधकों को काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह व ईर्ष्या से बचना चाहिए। ये षड्विकार हैं जो मनुष्य को रुग्ण बनाते हैं और रुग्ण मनुष्य परमात्मा का चिंतन नहीं कर सकता।

परमात्मा द्वारा निर्मित यह ब्रह्मांड परमात्मा का मूर्त प्रत्यक्षीकरण है। पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, तारे, औषधि, वनस्पति, पुष्प, फल आदि विभिन्न रूपों में ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। जब हम इन वस्तुओं से तादात्म्य स्थापित करते हैं तो हमें ब्रह्म की अनुभूति होती है। यही सिद्धि की अवस्था है। हमें अपना कार्यक्रम उगते सूर्य से शुरू करना चाहिए। सूर्य की प्रथम किरण को आंखों के माध्यम से मस्तिष्क में उतारना चाहिए और धीरे-धीरे उसे शरीर के विभिन्न अंगों में फैलने देना चाहिए। इससे शरीर की अनेक विकृति, रोग व कुंठा का शमन होगा। फिर ग्रहों-नक्षत्रों का स्मरण करें और शरीर में प्रवेश कराएं। फिर पंच तत्त्वों-पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु व आकाश की शक्तियों को शरीर में धारण करें। इनमें असंतुलन

से शरीर बीमार पड़ता है। ग्रह-नक्षत्रों के असंतुलन से आप विक्षिप्त हो जाते हैं। अतः इनका संतुलन आवश्यक है। फूल, पौधे, औषधि, पहाड़ आदि ईश्वर के ही रूप हैं। अंतर यह है कि हमारी सभी इंद्रियां सक्रिय हैं और इनकी एक, दो या तीन ही। पहाड़ भी एक इंद्रिय धारी है, वह निर्जीव नहीं है। साधक इन वस्तुओं को अपने मन में धारण कर, शक्ति ग्रहण करता है। हम इन वस्तुओं की शक्ति को अपने अंदर जितनी गहराई से अनुभव करते हैं, हमारी साधना उतनी ही गहरी होती जाती है। जब हम ब्रह्मांड को पूरे स्वरूप में अपने अंतर्मन में उतार लेते हैं तो उसके प्रकाश से हमारा भीतर व बाहर प्रकाशित होने लगता है। यही वह अवस्था है जब हमारा आत्म तत्त्व ब्रह्म तत्त्व में मिलकर एकाकार हो जाता है। आत्म तत्त्व का ब्रह्म तत्त्व में विसर्जन ही परमात्मा की प्राप्ति है। परमात्मा की प्राप्ति का यह अर्थ नहीं कि हम बाहर से परमात्मा को अंदर धारण करें। बल्कि आत्मा का ब्रह्मांड में विलीन होना ही मुक्ति है। हमें अपने आत्म तत्त्व को ब्रह्म तत्त्व में विसर्जित करना है। यही विसर्जन ईश्वर से मिलने की प्रक्रिया है।

•

87

काम से ऊपर उठें

हमारी इंद्रियां जब भीतर की ओर मुड़ जाती हैं, तो वहां एक अजीब-सा विस्फोट होने लगता है। इसकी एक वजह है। दरअसल, हमारा जो मध्य क्षेत्र है, वह है **'कॉन्सियसनेस'**। संत कबीर के अनुसार इस कॉन्सियसनेस के कुल सात तल होते हैं। इनमें से तीन तल उस मध्य कॉन्सियसनेस से ऊपर होते हैं और तीन तल उस मध्य कॉन्सियसनेस से नीचे होते हैं। कबीर कहते हैं कि जब हम मध्य तल से थोड़ा ऊपर उठते हैं, तो इस कॉन्सियसनेस का विस्तार होता है और हमारी साधना गहरी होती जाती है। हमारी इंद्रियां जब कॉन्सियसनेस पर केंद्रित हो जाती है, तो इसके बाद एक और दरवाजा खुल जाता है।

अपना अनुभव बताते हुए कबीर कहते हैं कि हमने जब अपनी साधना को थोड़ा और ऊपर की ओर केंद्रित किया, तो हमें एक सुपर कॉन्सियसनेस का दरवाजा खुला दिखाई दिया, जिसमें हम प्रवेश कर गए। दरवाजा खुलते ही हमने महसूस किया कि अब तक हमने जो कुछ भी अनुभव किया, वह सब कितना गलत था। जिस प्रकार काम-क्रीड़ा में व्यस्त लोग यह नहीं समझ पाते हैं कि काम-केंद्र के बाद का जो केंद्र है, उसमें कितना आनंद है अथवा इस काम में जितना आनंद है, काम की तृप्ति में जो सुख है, यदि उसके दूसरे दरवाजे को भी खोल दिया जाए, तो उसमें कितना सुख मिलेगा? इसी प्रकार एक के बाद एक दरवाजे को खोलते-खोलते जब हम अंतिम दरवाजे पर पहुंच जाते हैं, तो हमें ब्रह्मानंद की प्राप्ति होती है।

इस तरह हम देखते हैं कि काम में रमने के पश्चात् हमें सिर्फ आनंद की प्राप्ति होती है, किंतु काम के अंतिम दरवाजे पर पहुंचने के उपरांत हमें ब्रह्मानंद की प्राप्ति होती है। आप इस बात की कल्पना करें कि आपको काम की पूर्ति में एक क्षण के लिए तृप्ति का एहसास हो रहा है। यदि इस कार्य में लगातार आगे बढ़ते चले जाया जाए तथा आप उसी प्रकार के सुख में अपना स्थायित्व बना लें, तो आपको कैसा महसूस होगा? यह अकल्पनीय है, जिसे सिर्फ अनुभव ही किया जा सकता है, लेकिन आप तो एक क्षण के सुख के लिए अपना सारा जीवन व्यर्थ कर देते हैं। आपके संपूर्ण जीवन के आनंद से लाख गुना अधिक सुख की प्राप्ति जहां हो सकती है, उस केंद्र की ओर आप बढ़ते ही नहीं हैं। साधना में तो यही बताया जाता है कि इस काम केंद्र से ऊपर उठें। बस, आप अपने को केंद्रित करते चले जाएं, लेकिन इस तरह से केंद्रित हो जाना सभी के वश में नहीं है।

•

88

जीवन पर अमिट प्रभाव है सोलह संस्कारों का

मनुष्य और पशु में अंतर यही है कि मनुष्य विवेकशील प्राणी है और पशु में विवेक का अभाव होता है। हमारे शास्त्रों में ऐसी चर्चा है कि अगर किसी बालक का जन्म होता है तो इसका अर्थ है कि वह बालक हजारों वर्षों की यात्रा करके यहां तक आया है। वह पूर्व जन्म के समस्त जन्मों के साथ जुड़ा हुआ है। अंग्रेजी में कहते हैं सिनक्रॉनीसिटी। इसलिए कोई भी बच्चा जब जन्म लेता है तो वह अपने साथ पूर्व जन्म के संस्कार भी लेकर आता है। भारत में ऐसी मान्यता है कि बच्चों को गर्भ में से लेकर जन्म लेने तक विभिन्न संस्कारों में होना चाहिए। **गर्भ धारण संस्कार** को एक बहुत ही पवित्र संस्कार माना गया है इसलिए माता-पिता बड़े ही पवित्र भाव से इस संस्कार को पूरा करते हैं। इसका उद्देश्य यह होता है अच्छे लग्न और मुहूर्त का ध्यान रखा जाता है ताकि कोई गलत आत्मा गर्भ में प्रवेश न करें।

गर्भ के दो-तीन महीने के बाद **पून्सवन संस्कार** किया जाता है। उस समय गर्भस्थ शिशु के ऊपर अच्छे विचारों को आरोपित किया जाता है। उसके बाद **सीमन्तोंनयन संस्कार** किया जाता है। जिसमें मां को हमेशा प्रसन्न रखने और नैतिक कार्य करने की प्रेरणा दी जाती है ताकि मां का विचार बच्चे के ऊपर आरोपित हो सके। उसके बाद **जातकर्म संस्कार** किया जाता है। **नामकरण संस्कार** बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है।

कहा जाता है 'जैसा नाम वैसा गुण'। बच्चे का नामकरण करते समय लग्न, मुहूर्त, राशि का ध्यान रखा जाता है। नाम हमेशा गुण बोधक हो, छोटा और कर्णप्रिय हो। आजकल प्यार से जिन नामों का संबोधन किया जाता है वह उचित नहीं है। गलत नाम से व्यक्तित्व पर गलत प्रभाव पड़ता है। अपने बच्चे का एक ही नाम रखना चाहिए। उपनाम रखने की परंपरा गलत है। उसके बाद **विद्यारम्भ संस्कार** बड़ा महत्त्वपूर्ण है। किसी अच्छे गुरु से अच्छे लग्न में विद्यारम्भ कराना चाहिए। पहले दिन का पाठ परमात्मा के नाम पर प्रारंभ करना चाहिए। ताकि परमात्मा का आशीर्वाद उसे प्राप्त हो। हमारे देश में विद्यारम्भ रा म ग ति दे हू सू म ति लिखा जाता था! जब से हमने विद्यारम्भ संस्कार को छोड़ दिया है तब से उसका परिणाम भी भुगत रहे हैं। इसके बाद **निक्रमण संस्कार** आता है। जब बालक पहली बार घर से बाहर निकलता है। **अन्नप्राशन संस्कार** में बच्चों को अन्न ग्रहण कराने की परंपरा है। **चूड़ा कर्म** में बच्चों को मुंडन कराया जाता है। उसके बाद **कर्णवेद संस्कार** है और विद्यारम्भ के पश्चात् विवाह का संस्कार किया जाता है। अगर माता-पिता प्रारंभ से बच्चों में संस्कार डालने का प्रयास करें तो आगे चलकर बच्चों का जीवन नैतिक बनता है। उनमें अच्छे संस्कार आते हैं। उनका प्रत्येक काम नैतिक होता है। संस्कार के संबंध में एक और महत्त्वपूर्ण बात है कि बच्चों को संस्कारित करने में माता-पिता की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। बच्चे संस्कारित बनें यह तभी संभव है जब माता-पिता स्वयं संस्कारित हों। माता-पिता के आचरण का सीधा प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। माता-पिता बच्चों की नजर में आदर्श पुरुष होते हैं। उनका एक-एक आचरण बच्चों के लिए अनुकरणीय होता है। माता-पिता अगर पूजा-पाठ करते हों, घर में सत्संग करते हों तो बच्चों पर उसका प्रभाव पड़ता है। इसलिए बच्चों को माता-पिता का प्रतिरूप माना गया है। अगर हम राम के समान बेटा चाहते हैं तो दशरथ और कौशल्या की तरह साधना भी करनी होगी। बच्चों को अच्छा बनाने के लिए पहले आपको स्वयं पहल करनी पड़ेगी। तभी आपका बच्चा देश का आदर्श नागरिक बन सकेगा।

•

89

बच्चों को सिखाएं संस्कार

किसी ने प्रश्न किया, *"महाराज जी! आज हमारे बच्चों को संस्कारित करने की आवश्यकता है, हम लोग किस मंत्र-शक्ति से और कैसे अपने बच्चों को संस्कारित करें?"*

किसी भी भक्त का काम होता है प्रश्न पूछना और संत का काम है उस प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देकर भक्त को संतुष्ट कर देना। सच पूछो तो बच्चों को संस्कारित कर देने से हमारा सम्पूर्ण राष्ट्र संस्कारित हो जाता है। क्योंकि ये बच्चे ही तो हमारे देश के भविष्य हैं। बच्चों के भविष्य का निर्माण सिर्फ बच्चों का निर्माण नहीं है, बल्कि यह तो राष्ट्र का निर्माण है, हमारे समाज का निर्माण है, क्योंकि बच्चे तो कल का भविष्य होते हैं। हमारे कल के भविष्य के भी भविष्य हैं ये बच्चे। इसलिए उस भविष्य के निर्माण में हमें किसी प्रकार की कोताही नहीं बरतनी चाहिए, कोई असावधानी नहीं बरतनी चाहिए। मैं तो अपने मित्रों को, भक्तों को हमेशा कहता हूं कि तुम दुनिया की प्रत्येक चीज से समझौता कर लेना, लेकिन बच्चों की पढ़ाई में कभी समझौता मत करना। वह विद्यालय भले ही तुम्हारे मित्र का हो, वहां तुम्हारे मित्र या सहयोगी पढ़ाते हों और फिर भी यदि तुम्हें यह लगे कि इसमें तुम्हारे बच्चे का समुचित निर्वाह नहीं हो रहा है, तो फिर वहां, वैसे माहौल में हमें अपने बच्चों को नहीं पढ़ाना चाहिए। क्योंकि यहां पहला सवाल यह उठता है कि इस परिवेश और माहौल में जो बच्चों के भविष्य का निर्माण किया जा रहा है, जिस शिक्षक को हम राष्ट्र निर्माता कहते हैं,

क्या उनके पास हमारे बच्चों को देने के लिए कुछ है? कुछ अच्छी चीजें उनके पास हैं, जिन्हें वे बच्चों को दे सकें? मैं तो तमाम माता-पिता व अभिभावकों से आग्रह करता हूं कि वे जब भी अपने बच्चों को लेकर किसी विद्यालय में उनके नामांकन के लिए जाएं तो वहां के जो प्राचार्य हों या संस्था के प्रधान हों, उनसे आप यह प्रश्न अवश्य पूछें कि "हमारे बच्चों के साथ आप क्या करेंगे?" "क्या आप उन्हें केवल विज्ञान के कुछ पाठ पढ़ा देंगे, रसायन की कुछ नवीन जानकारियां दे देंगे, समाजशास्त्र का हवाला दे देंगे। यह पढ़ाई तो कोई भी करा सकता है, लेकिन उनके मानसिक विकास के लिए धरातल का निर्माण कैसे कराएंगे?" अगर ऐसा विचार किसी शिक्षक के पास नहीं है तो मैं कहता हूं कि वैसे शिक्षक से अपने बच्चों को पढ़वाना अपने बच्चों को खराब करने के सिवा और कुछ नहीं है।

प्राचीन काल में लोग गुरु **वशिष्ठ**, **विश्वामित्र** या **अंगिरा** के पास जाते थे। हमारे तमाम आचार्य जो आश्रम चला रहे थे, उनके पास उनकी अपनी दृष्टि होती थी, एक विचार क्षेत्र हुआ करता था, जहां हमारे बच्चे उन विचारों के अनुरूप अपने चरित्र का निर्माण करते थे। **मदन मोहन मालवीय** जी ने क्या किया? उनके पास सोच थी, अपनी दृष्टि और अपना विचार था, उनके विद्यालय में जितने भी बच्चे पढ़ने गए, तमाम बच्चों को उनकी ही विचारधारा में स्नान करना पड़ा।

•

90

बुरी आदतों से बचो

एक कहानी है एक वकील साहब की। उनका अनुभव इतना प्रगाढ़ था कि वह अपना कोई भी केस नहीं हारते थे, लेकिन उनकी एक आदत थी। अदालत में जब भी वह जज के सामने बहस करते थे, एक हाथ से अपने कोट का बटन हिलाते-डुलाते-घुमाते रहते थे। संभव है कि इससे उन्हें आत्मबल मिलता होगा। प्रत्येक मुकदमे में मिलती जीत से उनके विरोधी काफी चिंतित रहते थे। एक दिन विरोधियों को किसी मनोवैज्ञानिक ने बताया कि आप लोग ध्यान दें, उनकी कोई न कोई ऐसी आदत अवश्य होगी, जिससे वे आत्म-संतुष्टि व आत्म-विश्वास महसूस करते होंगे। उन लोगों ने कोर्ट में उन पर ध्यान रखना आरंभ कर दिया और उन्हें वकील साहब की आदत का पता चल गया। वे लोग जान गए कि वकील साहब बहस करते समय अपने हाथ से कोट का बटन हिलाते-डुलाते-घुमाते रहते हैं किसी दिन एक बड़े केस का बहस सुनिश्चित था। उस दिन विरोधी खेमे वालों ने उनके नौकर को बहला-फुसलाकर व पैसे का लोभ देकर, उनके कोट का बटन तुड़वा दिया। वकील साहब कोर्ट पहुंचे। बहस आरंभ हुई। आदतन उनका हाथ जैसे ही कोट के बटन पर पहुंचा, बटन टूटा हुआ था। वकील साहब दबाव में आ गए और अपने को अस्त-व्यस्त महसूस करने लगे। लिहाजा, उनका बहस भी अस्त-व्यस्त रहा और वह केस हार गए। इसे कहते हैं आदतों का दास हो जाना।

आज भी गांवों में देखता हूं कि कुछ लोग ऐसे होते हैं जो जब तक तंबाकू न खा लें, शौच नहीं जा पाते। कइयों की आदत ऐसी होती है

कि जब तक वे एक कप चाय न पी लें, शौच नहीं जाते। यह तो उनकी आदत हो चुकी है। मैं इन्हीं आदतों के बारे में कहना चाहता हूं कि तुमने तो स्वयं ही इन आदतों का निर्माण किया, तुमने स्वयं इसे बनाया। जीवन में कुछ पाने के लिए इससे बचो। यदि किसी नशा करने वाले से पूछो कि नशा क्यों करते हो? वह कहेगा, आनंद के लिए। दरअसल, एक नशेबाज जिस प्रकार के नशे का सेवन करता है, नशा करने के बाद वह उसके उस अंग को पीड़ा पहुंचाता है। यही पीड़ा नशेबाज के लिए आनंददायक बन जाती है। इस माध्यम से वह अपने उस अंग को जितना कष्ट देगा, उसे उतनी ही आनंद की प्राप्ति होगी। ऐसे लोगों को आजकल 'सैडिस्ट' कहा जाने लगा है, जिसका अर्थ होता है आत्महंता अर्थात् जो खुद को कष्ट या पीड़ा देने की आदत से ग्रस्त हो गया हो।

•

91

जल्दबाजी से बचो

इस दुनिया में हर व्यक्ति को काम करने का अधिकार है। यदि तुम काम नहीं करोगे, व्यापार-व्यवसाय नहीं करोगे, पढ़ाई-लिखाई नहीं करोगे, तो तुम्हारी जिंदगी कैसे चलेगी? अन्न उपजाने के लिए एक किसान को खेत में हल चलाना ही होगा। व्यापारी को व्यापार करना ही होगा। विद्यार्थियों को पढ़ाई करनी होगी, क्योंकि व्यक्ति का काम ही उसकी जीविका का माध्यम होता है। यदि वह काम नहीं करेगा, तो फिर आमदनी नहीं होगी, आमदनी नहीं होने पर उसका परिवार गुजर-बसर कैसे करेगा? काम करना तुम्हारा अधिकार ही नहीं, कर्त्तव्य भी है, अतः तुम इसे करते जाओ।

ध्यान रखने की बात यह भी है कि तुम काम तो निश्चित रूप से करो, परंतु काम करते-करते स्वयं काम मत बन जाना। ऐसा करते-करते तुम स्वयं व्यापार या धन-संपत्ति मत बन जाना। जिस व्यापार के लिए तुमने अपनी अस्मिता छोड़ दी, अपने चिंतन व विचार तक को त्याग दिया, अपनी मुस्कुराहट छोड़ दी, क्या उसको करने के उपरांत तुम शांति पा सके? तुम्हारे मन में कुछ भाव जागृत हुए? तुमने अपने अंदर किसी क्रांति का होना महसूस किया? तुम कहोगे-नहीं! तुम यह भी कहोगे कि मैं व्यापार में जितना उतरता चला गया, मेरी अशांति उतनी ही बढ़ती चली गई। क्या तुम जानते हो कि ऐसा क्यों हुआ? ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि तुम केवल काम बनकर रह गए। तुम्हारी सामाजिक स्थिति बदल गई। पत्नी के साथ तुम्हारा दुराव बढ़ता चला

गया। पिता-पुत्र या पिता-पुत्री का संबंध और लगाव समाप्त हो गया। धीरे-धीरे तुम इन चीजों से कटते चले गए। क्या तुम इसकी वजह जानते हो? इसकी वजह यह है कि तुम स्वयं व्यापार बन गए।

तुम अपनी जगह से हट चुके हो, तुमने अपना स्थान किसी और के हवाले कर दिया है तथा दासत्व ग्रहण कर लिया है। मानो या न मानो तुम अब नौकर बन चुके हो। कार्य और व्यापार तुम्हारा मालिक बन गया है। अब तो तुम्हारा व्यक्तित्व व अस्तित्व भी नष्ट होने को है। आखिर इतनी भागदौड़ क्यों? कार्य या व्यापार तो आसानी से भी किए जा सकते हैं। फिर तुम इसे आसानी से क्यों नहीं करते। एक काम करो, किसी दिन तुम किसी चौराहे पर खड़े हो जाओ और वहां खड़े होकर देखो जितने भी लोग उस चौराहे को पार कर रहे होंगे, उनमें से अधिकांश बेहद जल्दबाजी में होंगे। तुम्हें ऐसा लगेगा जैसे वे सबके सब कहीं भागे जा रहे हैं या कहीं से भागते हुए आ रहे हैं। वे लोग कहां जा रहे हैं, कहां से आ रहे हैं, इतनी जल्दी में क्यों हैं? उन्हें भी नहीं पता, लेकिन सबके सब जल्दबाजी में हैं। इसकी वजह से आए दिन दुर्घटनाएं होती रहती हैं, लेकिन इसकी परवाह किसी को नहीं है। इस चक्कर में कई लोग तो दुर्घटनाग्रस्त होकर महीनों अस्पताल में पड़े रहते हैं, फिर भी इससे सबक नहीं लेते।

•

92

प्रकृति सरलता देती है

प्रत्येक व्यक्ति का जीवन, उसकी प्रकृति, शारीरिक बनावट आदि परमात्मा की देन है। परमात्मा ने बहुत सोच-विचारकर उसकी रचना की है। शरीर में जितने भी अवयव हैं, वे प्रकृति के अनुरूप हैं और उसी की पृष्ठभूमि में इनकी रचना की गई है। हमारा संपूर्ण शरीर प्रकृति की देन है। तुम छोटे बच्चों को देखते होगे-बाल्यावस्था में जब वह अपनी परवरिश पा रहा होता है और उसका शरीर विकास की अवस्था में रहता है, तो वह बड़ा ही सरल, सौम्य व सुगम होता है। उसमें कहीं भी अप्राकृतिक या बनावटीपन जैसी कोई चीज नहीं होती, लेकिन जैसे ही उसका शरीर बढ़ने लगता है, वैसे ही उसके शरीर में अनेक प्रकार की दुष्प्रवृत्तियां या अप्राकृतिक अवयव प्रविष्ट होने लगते हैं। तब वह अपने शरीर में अनेक प्रकार की बनावटी चीजों को धारण करने लगता है और पूर्णरूप से अप्राकृतिक हो जाता है।

अपने बचपन में वह जितना सरल व सीधा होता है, बाद के दिनों में उतना सरल व सीधा नहीं रह पाता। धीरे-धीरे वह बाहर से अप्राकृतिक चीजों को अपने शरीर में धारण करने लगता है। ऐसा हम स्वयं करते हैं, प्रकृति ऐसा नहीं करती। प्रकृति हमें सरलता देती है और हम बाद में असहज व प्रकृति के विरोध में आगे बढ़ते चले जाते हैं। प्रकृति ने हमें जो सरलता दी, हम उन तमाम सरलताओं को भूलते चले गए और अपने बुरे विचारों व बुरे संस्कारों से उसे ढंकते चले गए। शास्त्रों में छह प्रकार की कुवृत्तियां बताई गई हैं, जिसे हम ग्रहण करते

हैं। जैसे-जैसे हमारी अवस्था व आयु बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे ही हमारे शरीर में काम, क्रोध, लोभ, मद व मोह आते जाते हैं और हम इन तमाम दुष्प्रवृत्तियों को ग्रहण करने लग जाते हैं। ये दुष्प्रवृत्तियां जब हमारे शरीर का अंग बन जाती हैं, तो हमारा शरीर उनका दास बन जाता है।

पहले तो शरीर के मालिक हम स्वयं होते थे, लेकिन जैसे ही हमारा शरीर कुछ विकास करने लगता है और हम अपने को विवेकशील मानने लगते हैं, वैसे ही हम उन दुष्प्रवृत्तियों के दास बनते चले जाते हैं। हम उनके सामने अपना सिर झुका लेते हैं। यहां हमारे सामने दो बातें हैं-एक यह कि हम अपने शरीर के मालिक स्वयं होते हैं और हमने अपने शरीर व इन दुष्प्रवृत्तियों पर अपनी मलकियत जारी रखी, उसे अपने नियंत्रण में रखा और दूसरे वह कुछ लोग, जो अपनी आदतों या हरकतों के दास बन जाते हैं। जब तक वे अपनी इस आदत को अपने हाथ में नहीं लेते, तब तक उन्हें आत्मविश्वास या आत्मबल नहीं मिलता है।

•

93

व्यक्ति का अर्थ है व्यक्त होना

इन तमाम वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर यह निश्चय किया जा सकता है कि यह सृष्टि किसी की अभिव्यक्ति है तो निश्चित रूप से हमारा उसका संबंध है, जहां हम व्यक्त हुए हैं। मनुष्य को व्यक्ति भी कहा जाता है। व्यक्ति का अर्थ है व्यक्त होना। इस तरह व्यक्ति ब्रह्माण्ड से जुड़ा हुआ है तो उसका एक-दूसरे से प्रभावित होना भी स्वाभाविक है।

अंतरिक्ष से कैसे प्रभाव ग्रहण करें : अंतरिक्ष संपूर्ण पृथ्वी का जीवनदाता है। वहीं से ऊर्जा निकलती है और सभी जीव-जन्तुओं का पालन पोषण करती है। जैसे-सूर्य से ऊर्जा निकलती है तो जीव-जंतु, पेड़-पौधे जीवनी शक्ति प्राप्त करते हैं। अगर सूर्य छिप जाए तो न कोई जीव-जंतु बचेगा और न पेड़-पौधा। यह तो प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसी प्रकार अंतरिक्ष में अन्य ग्रह तारे हैं जिनसे ऊर्जा प्रतिक्षण निकलती रहती है। तुम अगर स्वस्थ रहना चाहते हो, दीर्घायु बनना चाहते हो तो प्रकृति से ऊर्जा शक्ति ग्रहण करो। जब तक तुम प्रकृति से ऊर्जा ग्रहण नहीं करते हो तब तक तुम स्वस्थ नहीं रह सकते।

विभिन्न टी.वी. चैनलों पर महाराज जी निरंतर प्रयास करते रहते हैं कि आपको **'जीवन जीने की विधि'** से परिचित करा सकें। साथ ही इस जीवन में सुगंध कैसे पैदा हो, हम बुरे विकार से कैसे बचें, इस शरीर को निर्विकार कैसे बनाएं, इन विषयों की जानकारी प्रत्येक व्यक्ति को होनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा की पूजा करता है, वंदना

करता है। उन्हें बताना चाहते हैं कि केवल परमात्मा का कीर्तन करने से हमें परमात्मा की प्रणित नहीं होगी। पहले मन को पवित्र करना होगा। अपने आचरण को ठीक करना होगा, खान-पान, आहार-विहार को पहले ठीक करना जरूरी है। जिस दिन हम बुरे विचारों से मुक्त हो जाएंगे, उस दिन हमारा शरीर मंदिर बन जाएगा और उसी मंदिर में परमात्मा का निवास भी हो जाएगा। लेकिन हमारा शरीर मंदिर तभी बन सकता है, जब वह स्वस्थ रहे। स्वस्थ रहने के लिए प्रकृति से शक्ति ग्रहण करना अनिवार्य है। हमारे शरीर में सूर्य से ऊर्जा मिलती है, वही हमारी प्राणवायु है। शरीर में जो प्राण है उसका सीधे संबंध सूर्य एवं अन्य ग्रहों से है। इसीलिए प्रातःकाल में लाल सूर्य का दर्शन करते हैं और 'सूर्य-भेदन प्राणायाम' एवं चंद्रमा को देखकर 'चंद्रसेवन प्राणायाम' करते हैं। इससे हमारे शरीर में प्राण ऊर्जा बढ़ती है और शरीर स्वस्थ रहता है। पशु ऊर्जा, गुरु ऊर्जा, देव ऊर्जा एवं सूर्य ऊर्जा के सेवन से शरीर संपूर्ण रूप से स्वस्थ रहता है और दीर्घायु बनता है। सुदर्शन महाराज जी अपने प्रियजनों को हमेशा परामर्श देते हैं कि जब तक हम सूर्य से ऊर्जा लेते रहेंगे तब तक हम बीमार नहीं पड़ सकते।

हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि **'कुर्वण्यवेह कर्माणि जिजीविषेत शतं शमाः'** हम सभी को नियमित रूप से प्रकृति से स्वस्थ जीवन मांगना चाहिए। प्रकृति अथवा सूर्य हमें शक्ति देने के लिए तैयार बैठा है। हमें अपने मन में भाव पैदा करना है कि सूर्य अपनी अपार शक्ति देने के लिए तैयार बैठा है। हमें केवल मांगनी है। हमें अपने मन में भाव पैदा करना है कि सूर्य की अपार शक्ति हमारे शरीर में प्रवेश कर रही है। सूर्य के प्रकाश से हमारा मस्तिष्क, कंठ, हृदय, लंग्स, किडनी, लीवर, पाचन क्रिया एवं समस्त इंद्रिय स्वस्थ हो रहे हैं।

•

94

सदा निश्छल और सरल बने रहें

अक्सर प्रश्न उठता है कि मनुष्य के बूढ़े हो जाने के उपरांत इस पर क्या-क्या बाहरी प्रभाव पड़ता है। कई लोगों का यह मानना है कि बुढ़ापा जीवन के लिए बड़ा ही प्रभावपूर्ण होता है। कुछ लोगों का यह मानना है कि वृद्धावस्था मनुष्य के जीवन के लिए एक अभिशाप से कम नहीं है। बुढ़ापे के समान कोई अन्य बीमारी नहीं है। जिन लोगों ने यह बताया कि बुढ़ापा एक अभिशाप है, यह जीवन का दुष्प्रभाव है, इस संबंध में यह संदेश देना जरूरी है कि वृद्धावस्था मनुष्य के जीवन का अनिवार्य अंग है। जब हम बचपन में होते हैं, तो हम उस काल में निष्कपट, निश्छल और बड़े ही सरल होते हैं, इसलिए हमारा बचपन बड़ा मीठा लगता है। जब हम जवान होते हैं और परमात्मा से प्रार्थना करने लगते हैं कि परमात्मा, मुझे मेरा बचपन लौटा दो तो यहां पर प्रश्न यह उठता है कि हम बचपन के लौट आने की बात क्यों करते हैं? हम ऐसा इसलिए कहते हैं कि बचपन में जो मिठास थी, हमने अपने दुष्कर्मों, अपने बुरे कार्यों से, बचपन की जो सरलता थी उसे नष्ट कर दिया है।

अब हम चाहते हैं कि जीवन भर बच्चे बन कर ही रहें, भले ही हमारा शरीर बढ़ जाए। लेकिन हम स्वयं इसके लिए जिम्मेदार हैं। अपने बुरे कार्यों, दुष्प्रभावों और दुष्विचारों से अपने जीवन को बचपन से घसीटकर बाहर निकाल लाए हैं। हम अपने इस अहंकार की घोषणा करते रहते हैं कि हम जवान हो गए हैं। हमारी इस

घोषणा का अर्थ है कि हम अब इस स्थिति में आ गए हैं कि कोई भी काम कर सकते हैं। चाहे वह अच्छा हो या बुरा। अर्थात् कहा यह जा सकता है कि हमने जिस परिणाम को भुगता है, उसके जिम्मेदार हम स्वयं हैं। हम पर जवानी आई, लेकिन हमने उसका सदुपयोग न करके उसका दुरुपयोग किया। हमें जब भी समय मिला, उसके दुरुपयोग के बारे में ही सोचते रहे।

•

95

अपने चरित्र से बनें सुन्दर

अगर आप सुन्दर बनना चाहते हैं तो अपने चरित्र से सुन्दर बनें, अपने विचार और वृत्तियों से सुन्दर बनें। इसके लिए आपको परिश्रम करना होगा। कुछ तैयारी भी करनी होगी, जिससे आपके शरीर की रौनकता, दीप्ति और अग्निज्योति प्रखर बनी रहे। अगर आपके शरीर में ऊर्जाशक्ति का नियंत्रण आपके पास आ जाएगा और आत्मशक्ति का विकास कर लेंगे तो फिर बाहर की तमाम सुन्दरता आपके चारों ओर छा जाएगी। लेकिन हम लोग अंदर की सुन्दरता की अपेक्षा बाहरी सुंदरता पर अधिक ध्यान देते हैं।

जहां तक सुन्दर बनने की बात है तो फिर आप भीतर से सुन्दर बनें। सिर्फ बाहरी आवरण को सुन्दर बनाने का प्रयास तो बेकार ही है, क्योंकि बाहरी सुन्दरता तो आपके भीतर की सुन्दरता का प्रकाश है। आपका यह सजा-धजा शरीर किस काम का है, जो तमाम दुष्प्रवृत्तियों का दास बना है। इसलिए आपका बाहरी शरीर तो बहुत सुन्दर लग रहा है, लेकिन आचरण आचरण और प्रवृत्ति गंदी है, तो फिर आप कैसे सुन्दर हो सकते हैं? जो व्यक्ति चमड़े का व्यापारी है, उससे तो आप अपनी सुन्दरता की तारीफ सुन सकते हैं, लेकिन जो आत्मा, चेतना का व्यापारी है और जो मर्यादा, अस्मिता और चरित्र की बात करता है, उसके लिए आपकी इस सुन्दरता की कोई कीमत नहीं।

यदि किसी का चेहरा सुन्दर है तो वह सुन्दर तो कहलाएगा, लेकिन वह संपूर्ण रूप से सुन्दर कैसे कहलाएगा? क्योंकि यदि उसका चेहरा

सुन्दर है तो यह जरूरी तो नहीं कि उसके विचार भी सुन्दर हैं। उसके हाव-भाव, उसकी अस्मिता गंदी हो सकती है। कोई भी व्यक्ति तभी सुन्दर हो सकता है, जब वह चारित्रिक रूप से उत्कृष्ट हो, उसके विचार उच्चकोटि के हों। उसका आचरण, रहन-सहन, बोल-चाल, खान-पान एवं मित्रता आदि उत्कृष्ट हों तथा वह आदर्शवादी भी हो, तभी हम उस व्यक्ति को सुन्दर कह सकते हैं। बाकी तमाम चीजें असुन्दर, कुरुप के अलावा और कुछ नहीं हो सकतीं।

•

96

नैतिकता का मूल्य

हमारे संत पुरुषों का कहना है कि जिसके पास जो होता है, वह दूसरे को वही चीजें सौगात में देता है। अगर आपके पास मिठास है तो आप दूसरों के बीच मिठास बांटेंगे, यदि आपके पास कड़वाहट है तो आप दूसरों को केवल कड़वाहट देकर उन्हें कष्ट ही पहुंचाएंगे। आप सोचकर बताएं कि आप दूसरों को क्या देना चाहते हैं और दूसरों से क्या पाने की उम्मीद करते हैं? हमारे मन-मस्तिष्क में वह भाव अवश्य होना चाहिए कि हम अधिक से अधिक लोगों का प्रेम पा सकें। इसके लिए हमें अपना व्यवहार उसी प्रकार का बनाना होगा। लेकिन यदि आप अपनी क्रूरता की वजह से समाज में पहचान लिए जाएंगे तो कोई भी व्यक्ति आपके पास न तो आना चाहेगा और न ही वह यह चाहेगा कि आप उसके पास बैठें।

पशु तो फिर भी क्षम्य है क्योंकि वह अपने सींग से प्रहार कर दूसरे को घायल कर देता है, लेकिन ऐसे मनुष्य तो अपनी बातों से दूसरों को घायल कर देने का तरीका जानते हैं, उनका व्यवहार स्वयं अपने लिए भी दु:खदायी होता है, दूसरों की बात तो छोड़ दीजिए। मन का घाव जल्दी नहीं मिटता है। किसी ने कहा भी है कि आप दूसरे के साथ वैसा ही व्यवहार करें, जैसा आप दूसरे से अपने लिए अपेक्षा रखते हैं। आप दूसरों को प्यार और सम्मान का भाव देकर तो देखें, आप पाएंगे कि इसके बाद समाज का कोई व्यक्ति आपको नंगा करने का प्रयत्न नहीं करेगा। लोग भी ऐसा ही सोचा करते हैं कि जो व्यक्ति आदर्श स्वरूप

शिष्ट न हो तो उसके सम्मुख जाकर हम अपनी शिष्टता और आदर्श क्यों गंवा दें? हम अपने विचार क्यों प्रदूषित कर दें? आजकल हमारे समाज में प्रदूषण युग आया हुआ है। वायु, शोर, जल प्रदूषण से हम तो नष्ट हो ही रहे हैं, साथ हमारी अगली पीढ़ी भी नष्ट हो रही है।

क्यों नहीं हम केवल मीठे शब्दों का प्रयोग करें और जब भी किसी से मिलें, तो केवल मुस्कुराते हुए मिलें। उनकी भावनाओं का सम्मान करें और कोई ऐसी बात या हरकत न करें, जिससे सामने वाले को कष्ट या पीड़ा का अनुभव हो। किताबों में तो बहुत अच्छी-अच्छी बातें लिखी होती हैं, पर उसे हम कभी अपने जीवन में उतारने का प्रयास मात्र भी नहीं करते हैं, क्योंकि ऐसी बातों पर अमल करना बहुत ही कष्टकारी होता है। अगर इन बातों को अपने जीवन में उतारने का प्रयास करोगे, तो हम समझेंगे कि हमारे जीवन में नैतिकता का जन्म हुआ और हमारा चरित्र संस्कारी माना जाने लगा है। हमारा यही गुण समाज से हमें मर्यादा और प्रेम दिलवाएगा और हमें समाज के लोगों के बीच प्रतिष्ठा और लोकप्रियता मिल सकेगी।

आप यंत्रवत न बन जाएं। जीवन में नैतिकता को उतारें और अनैतिकता को नकारें। जब तक आपके चरित्र में नैतिकता का अभाव रहेगा, आपके जीवन का कोई उद्देश्य नहीं होगा और आप बगैर किसी लक्ष्य के अपने शरीर को ढोते फिरेंगे। आपके सारे प्रयास इस दिशा में होने चाहिए कि लोग आपको आज और आपके न रहने के बाद भी याद करें, सम्मान और प्रेम दें। लेकिन यह तो तब होगा, तब आप अपने समाज में अच्छाई का वातावरण बना दें।

•

97

अपने आचरण को सुन्दर बनाएं

सुन्दर का अर्थ होता है मन को अच्छा लगने वाला। मन को जब कुछ बुरा लगता है तो उसे कुरुप कहते हैं, असुन्दर कहते हैं। कुरुप बनना और कुरुप दिखना कोई नहीं चाहता। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि वह सुन्दर दिखे, लोग उसकी प्रशंसा करें। लेकिन वह हमेशा ऐसा काम करने लगता है जिससे वह कुरुप दिखने लगता है उसका आचरण, विचार और रहन-सहन लोगों को दु:ख देने लगता है।

सुन्दर का अर्थ है कि देखते ही मन प्रसन्न हो जाए। सुन्दर व्यक्ति को प्रत्येक व्यक्ति छूना चाहता है, प्यार करना चाहता है। लेकिन तभी तक जब तक वह सुन्दर रहता है। आजकल प्राय: सुन्दरता का अर्थ है चेहरे को सुन्दर बनाना। चेहरा सुन्दर हो अच्छी बात है लेकिन चेहरे को सुन्दर होने से ही आदमी सुन्दर हो जाए यह जरूरी नहीं है। सुन्दरता तो संपूर्णता को कहते हैं। सुन्दरता का खण्ड नहीं होता है, टुकड़ों में सुन्दरता को देखना उचित नहीं है। किसी की आंख सुन्दर और नाक टेढ़ी हो वह सुन्दर नहीं है। इसलिए सुन्दरता सम्पूर्णता को कहते हैं। मनुष्य को संपूर्ण रूप से सुन्दर होना चाहिए।

अब इस सम्पूर्णता के अर्थ को समझें। कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति की पर्सनेलिटी बहुत सुन्दर है। यहां हमने बाहर की सुन्दरता के आधार पर निर्णय कर लिया है। पर्सनेलिटी 'पर्सना' शब्द से बना है। जिसका अर्थ होता है मुखौटा। बाहर से दिखने में अच्छा लगे और भीतर वह विकृतियों का दास हो, भीतर का व्यक्तित्व सड़ा-गला हो, भीतर

हजार विकार भरा हुआ हो तो उस व्यक्ति को सुन्दर नहीं कहा जा सकता। कहा गया है, **'विष रस भरा, कनक घट जैसे।'** सोने के कलश में अगर विष भरा हुआ तो तो वह अच्छी नहीं है। उसी प्रकार मनुष्य अगर सुन्दर दिखे उसका चेहरा, कपड़ा-लत्ता सुन्दर दिखे, लेकिन भीतर बदबू भरी हुई हो तो उसे सुन्दर नहीं कहा जा सकता। मंदिर का पुजारी तिलक-चंदन लगाकर अगर गलत आचरण करता हो तो उसे नैतिक नहीं माना जा सकता है। रामनामी चादर ओढ़कर मन और विचार से गलत आचरण करने वाले को संत नहीं कहते। उसी प्रकार स्त्री हो या पुरुष हो अगर उसका बाहर का चेहरा सुन्दर है और भीतर का चरित्र गलत है तो उसे सुन्दर नहीं कहा जा सकता। इसीलिए संपूर्णता को ही सुन्दरता कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति सुन्दर दिखना चाहता है। इसके लिए वह हमेशा प्रयास करता रहता है। अच्छा खाता है, अच्छा पहनता है। ऐसा करना अच्छे मनुष्य का धर्म है। सच पूछा जाए तो मनुष्य स्वभावत: सुन्दर आचरण वाला प्राणी है। बचपन में जितना सरल वह रहता है अगर वही सरलता जीवन भर बनी रहे तो वह कुरुप नहीं हो सकता है। एक सुन्दर बालक जब खड़ा होता है तो वह धीरे-धीरे संसार से बुराई और कुरुपता बटोर कर अपने जीवन में उतारने लगता है और एक दिन वह बुरा बन जाता है। सुन्दर व्यक्ति के कुरुप बनने के यही कारण हैं। सुन्दर रहना हमारा धर्म है, स्वभाव है, गुण है। असुन्दर बनना हमारा स्वभाव नहीं है।

•

98

तो बच्चा बन जाओ

चराचर जगत में सबके पास इंद्रियां होती हैं। वृक्षों के पास भी और पहाड़ों-पत्थरों में भी इंद्रियां होती हैं। फर्क सिर्फ यह है कि हमारी (मानव जाति की) पांच कर्मेन्द्रियां व पांच ज्ञानेन्द्रियां अर्थात् कुल 10 सजग इंद्रियां होती हैं, जबकि पेड़ों, पहाड़ों आदि की इंद्रियां अपेक्षाकृत कम सजग होती हैं। पेड़-पौधे मनुष्य की तरह हंस व रो नहीं सकते, क्योंकि प्रकृति अपने नियम के अनुसार ही चलती है। तुम लाख प्रयत्न करके रह जाओगे, आम के पेड़ पर समय के पूर्व मंजर नहीं आ सकता, क्योंकि यह प्रकृति का नियम है। जो प्रकृति के नियमों को मानता है, वह कभी भी कष्ट में नहीं रहता। हालांकि यह भी सच है कि मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी या जीव है, जो यदा-कदा प्रकृति के नियमों को मानने से इंकार कर देता है। इसके परिणामस्वरूप उसे कई बार परेशानियों का भी सामना करना पड़ जाता है।

जिस प्रकार शरीर में विटामिन की कमी हो जाने से शरीर में आलस्य आ जाता है और हमारा शरीर गिरने लगता है, ठीक उसी प्रकार यदि तुम प्रकृति और उसके नियमों को नहीं मानोगे तो तुम्हारे शरीर में विकलांगता आ जाएगी। वैज्ञानिक भी मानते हैं कि हमारा शरीर जिन पांच तत्त्वों (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा) से मिलकर बना है, हमारे शरीर में उनका अनुपात सदैव ही बने रहना चाहिए।

आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार मनुष्य को सिर्फ तीन प्रकार की बीमारियां हो सकती हैं **कफ**, **पित्त** व **वायु**। आयुर्वेद कहता है कि

इसके अलावा कोई अन्य बीमारी होती ही नहीं है, लेकिन तुम्हारे लिए तो एक ही बीमारी काफी है। जरा सोचो–यदि तुम्हें एक साथ तीनों बीमारियां घेर लें, तो क्या होगा? आयुर्वेद कहता है यदि किसी को एक साथ तीनों बीमारियां हो जाएं, तो उसे **त्रि–दोष** कहते हैं।

यदि तुम प्रकृति के नियम के अनुसार चलोगे, तो इन बीमारियों से बचे रहोगे और यदि इसके विरुद्ध खड़े होओगे तो टूट जाओगे, अतः प्रकृति के नियमों का पालन करो। प्रकृति के साथ हंसो, खेलो, और नाचो। ऐसा करने के उपरांत तुम पाओगे कि तुम्हारे शरीर की ऊर्जा शक्ति बढ़ती ही चली जाएगी। तुम भाग–दौड़ से घबराओ मत, सिर्फ उसकी काट खोजो। इस तरह तुम्हारे मन में इस शरीर के लिए मोह पैदा हो जाएगा। समय पर भोजन ग्रहण करो, खूब पानी पिओ, जमकर व्यायाम करो, प्रातःकाल टहलो, बच्चों के साथ कोई खेल खेलो। गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर तो बच्चों के लिए घोड़ा बन जाया करते थे और उन्हें अपनी पीठ पर बिठा लिया करते थे। यदि तुम खेलना बंद कर दोगे, तो उसी दिन से सूखी हुई डाली के समान बन जाओगे।

•

99

प्रेम गली अति संकरी जा में दो न समाय

श्री स्वामी रामतीर्थ स्वयं को बादशाह कहा करते थे। वे जब अमेरिका गए तो वहां के राष्ट्रपति उनसे मिलने पहुंचे। स्वामी जी को देखकर राष्ट्रपति बोले कि "आपके पास तो ऐसा कुछ भी नहीं है, जिससे यह लगे कि आप बादशाह हैं।" इस पर स्वामी जी ने कहा कि "बस थोड़ा-सा फासला है मुझे बादशाह बनने में। वह फासला है मेरी लंगोटी। जिस दिन मेरी लंगोटी भी उतर जाएगी, उस दिन मैं पूर्ण रूप से बादशाह बन जाऊंगा। बादशाह तो उसे कहते हैं जिसे किसी भी चीज की जरूरत न हो। जो संपूर्णता से भरा हुआ हो वही तो बादशाह है और मैं संपूर्ण रूप से भरा हुआ हूं। मुझे इस संसार में किसी चीज की कामना नहीं है, मेरी कोई भी इच्छा नहीं है, इसलिए मैं बादशाह हूं।"

बादशाह का मतलब यह नहीं होता कि मेरे पास एक राज्य है और दूसरा राज्य भी चाहता हूं। हमें दस अरब की संपत्ति मिल गई है, तथा बीस अरब की संपत्ति मुझे और मिल जाए। यह बादशाहत की नहीं बल्कि भिखारीपन की निशानी है। मेरे पास जितना है उससे मुझे संतुष्टि नहीं मिलती, मुझे और चाहिए, यही कामना रहती है। जिसका सारा जहां अपना बन जाए, उससे बड़ा बादशाह और कौन हो सकता है? रामतीर्थ को जब भूख लगती थी तो वह कहते थे कि राम को भूख लगी है, जरा उसे कुछ खिला दो। क्योंकि उनका अपना होना नष्ट हो चुका था। उनका 'मैं' तो मर चुका था।

कुछ लोग अपनी जवानी को 'मैं' कहते हैं, कुछ लोग अपने होने को 'मैं' कहते हैं तथा कुछ लोग अपनी सम्पत्ति को 'मैं' कहते हैं। सम्पूर्ण रूप से यह घर मेरा है। यहां सारी जमीन मेरी है, बेटा मेरा है, पत्नी मेरी है, यह सब कुछ सिर्फ मेरा है। बस यही तो दीवार खड़ी हो गई। जिस दिन यह दीवार गिर जाएगी, उस दिन 'मैं' भी पूरी तरह समाप्त हो जाएगा। इसके बाद किसी भी रामकथा का सीधा प्रवाह आपके जीवन पर होना आरंभ हो जाएगा। आप जब तक कथा सुनने जाते रहेंगे, तब तक कुछ नहीं होगा। आपको तो स्वयं कथा होना पड़ेगा। तभी तो **रामचरितमानस** और **वेद-पुराण** जैसे ग्रंथों का वास्तविक लाभ आपके जीवन में प्राप्त होगा। कहा गया है-

जनम जनम मुनि जतन कराहिं।
अन्त राम पद पावत नाहिं॥

यदि कोई व्यक्ति बचपन में ही बैरागी बन जाए और जीवन भर बैरागी ही बना रहे, तो क्या वह व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर लेगा? नहीं, ऐसा करने से सिद्धि से कोई नाता नहीं होता है। उसने बैराग ओढ़ लिया है तो ओढ़ा हुआ अपना नहीं बनता। कोई भी ओढ़ी हुई वस्तु चाहे वह खाल हो, या चादर हो, वह तो आपकी हो ही नहीं सकती। उसे तो आपको उतार कर रखना ही होगा। जिस प्रकार **गीता** में **भगवान कृष्ण** ने कहा है कि *यह शरीर एक वस्त्र की तरह है। जब आत्मा का वस्त्र यानी हमारा शरीर पुराना हो जाता है तो आत्मा इस वस्त्र रूपी शरीर को बदल देती है। जब यह शरीर ही मेरा नहीं है तो मैं क्या हुआ?*

हर चीज में कहते हैं कि यह 'मैं' हूं और यह 'मेरा' है। यदि आपकी दुनिया है तो फिर यह तो स्थायी होनी चाहिए। आपकी अगर कोई दुनिया नहीं है तो फिर आपका कुछ नहीं है। आप तो स्वयं एक मुसाफिर हैं जो इस दुनिया की सराय में दो-चार दिन के लिए आकर टिके हैं। कल आप नहीं रहेंगे तो फिर आपकी नेम प्लेट बदल जाएगी। कल जब आप नहीं रहेंगे तो आपकी नेम प्लेट की जगह आपके बेटे की नेम प्लेट लग जाएगी। आज आपके पास जो जमीन है, जरा ध्यान से देखें कि आदिकाल से आज तक उस पर किन-किन लोगों की नेम प्लेट लग चुकी है। जब सब कुछ सराय की भांति हो रहा है, जब सब

कुछ क्षणभंगुर है तो फिर इसके बीच में जो मैं है वही तो आपको सुनने से रोक रहा है। 'मैं' के पास तर्क की ताकत होती है और आपका तर्क कभी भी किसी निर्णय पर नहीं पहुंचने देगा। आपके तर्क-वितर्क करने की कोई सीमा नहीं है। उसका न तो कोई अन्त है और न ही उसका कोई नियम-कानून है। जहां कहीं भी अन्त होता है, वह तो समर्पण का अंत होता है।

यदि आप कथा में जाएं तो समर्पण के साथ जाएं, तर्क-वितर्क को कदापि साथ न ले जाएं। आप वहां विवेचना करने न जाएं, क्योंकि केवल इसी माध्यम से आप उस कथा का लाभ उठा पाएंगे।

आप कथा में जाएं और कथा का श्रवण अवश्य करें लेकिन उससे पहले कथा का पात्र बनने का प्रयत्न जरूर करें। आप अपने षड्विकार अपने घर पर छोड़कर कथा में जाएं और कथा में मिल जाने का प्रयास करें। आप अपने अहम् का विसर्जन करके आएं तभी आप कथा का सम्पूर्ण लाभ प्राप्त कर सकेंगे और उस कथा के तार से आप स्वयं को जोड़ पाएंगे।

•

100

इच्छा मात्र से नहीं मिलता मनोवांछित फल

दु:ख और सुख मनुष्य का मानसिक विकार है, जिसका निर्माण वह स्वयं करता है और फिर उसे मिटा भी देता है। दरअसल, दु:ख एक ऐसा मानसिक विकार है, जिसका निर्माण हम स्वयं दूसरों के कारण करते हैं। ऐसा देखने में आया है कि अपने कारण कोई भी व्यक्ति न तो दु:खी होता है और न सुखी होता है। दु:ख तो हमेशा ही मनुष्य को दूसरे के कारण सताता है। इसी प्रकार हम सुख भी दूसरे के कारण ही अनुभव करते हैं। दु:ख और सुख को जब हम स्वयं लेने को तैयार बैठे होते हैं तभी वे हमारे पास आते हैं।

उदाहरण के लिए जिस प्रकार हमें कोई मिठाई देता है और हमें उसकी आवश्यकता नहीं होती तो हम उसे लौटा देते हैं। उसी प्रकार कोई हमें दु:ख देना चाहे और हम दु:ख लेने के लिए राजी न हों तो वह स्वयं लौट जाता है और देने वाले को ही सताने लगता है। हालांकि हममें से अधिकांश लोग पहले से ही दु:ख को स्वीकार करने के लिए खड़े रहते हैं। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि कोई दु:ख देने वाला नहीं आता तो हम स्वयं ही उसे बुलाकर ले आते हैं। इसकी वजह यह है कि दूसरे की प्रत्येक वस्तु हमें अच्छी लगती है, चाहे वह अच्छी हो या न हो। यह मानव स्वभाव है कि उसे दूसरे का मकान, दूसरे का परिवार, दूसरे की पत्नी, दूसरे का बेटा आदि या यूं कहें कि हर दूसरा

व्यक्ति अच्छा लगता है और यही उसके दु:ख का कारण बन जाता है। गांव हो या शहर वहां न तो किसी को फुर्सत है कि आपको दु:ख दे या सुख दे। आप तो स्वयं हाथ पसारे सड़कों पर घूम रहे हैं कि कोई हमें धक्का मारे और हम दु:खी हो जाएं। आज तक दुनिया में कोई ऐसा व्यक्ति पैदा नहीं हुआ जो किसी को दु:ख दे सके। देना तो तभी संभव है जब लेने वाला राजी हो। जो लेने के लिए राजी न हो, उसे कोई चीज कैसे दी जा सकती है।

गीता में **भगवान श्रीकृष्ण** ने **अर्जुन** से कहा भी है कि *हे अर्जुन! तुम दु:ख और सुख, अपने और पराए की बात छोड़ो और निर्विकार भाव से कर्म में प्रवृत्त हो जाओ, क्योंकि तुम्हारे चाहने से भी मनोवांछित फल तुम्हें नहीं मिल सकता। इस प्रकार यह तो तय है कि कर्म का फल पाना हमारे हाथ में नहीं है, वह तो दाता के ही हाथ में है।* इसी बात को **गोस्वामी तुलसीदास** ने रामचरितमानस में इस प्रकार से समझाया है–

काहु न कछु सुख-दु:ख के दाता।
निज कृत कर्म भोग सुनु भ्राता।।

अर्थात् *किसी को सुख या दु:ख देने वाला कोई नहीं है। स्व-कर्म (अपने कर्म) से ही मनुष्य सुख या दु:ख पाता है और फिर बेहाल होकर त्राहि-त्राहि करने लगता है।*

•

101

अपनी मर्जी के मालिक बनो

एक यात्रा के क्रम में **भगवान बुद्ध** एक बार किसी गांव की ओर निकले। वहां किसी व्यक्ति ने उन्हें काफी अपमानजनक शब्दों में कुछ कहा, लेकिन बुद्ध चुपचाप खड़े होकर उसकी बातों को सुनते रहे। जब उसकी बातें समाप्त हो गईं, तो वह उस व्यक्ति से इजाजत लेकर वहां से चलने लगे। जब उस व्यक्ति ने उन्हें रोकते हुए कहा कि "मैंने आपको इतनी खरी-खोटी सुनाई, पर आप कुछ नहीं बोले, आप भी तो कुछ बोलें।" भगवान बुद्ध ने कहा कि "मुझे कुछ नहीं कहना है। आपने जो कहा, वह आपकी मर्जी थी और मुझे चुप रहना है, यह मेरी मर्जी है।" कोई व्यक्ति जब आपके पास आकर कुछ कहना चाहे या कहे तो यह आपका फर्ज बनता है कि आप उसकी बातों को एकाग्रता से सुनें, ताकि आपके बारे में उसे यह अहसास हो कि आप उनकी बातों को समझ रहे हैं। जब वह अपनी बात समाप्त कर ले, तब आवश्यकतानुसार आप उसे जवाब दें। सफल बातचीत के लिए यह जरूरी है, कि वह जब तक बोलता रहे, आप शांत भाव से उसकी बातों को सुनते रहें। फिर जब आपके बोलने की बारी आए तो उस व्यक्ति को चुपचाप, शांत होकर आपकी बातों को सुनना चाहिए। दरअसल, दो व्यक्तियों के बीच बातचीत करने के भी कुछ तरीके होते हैं। पहला तो यह कि आपस में जोर-जोर से चिल्लाकर बातें न करें। जब आप बात कर रहे हों तब आपके चेहरे पर मुस्कुराहट होनी चाहिए। बीच-बीच में अपनी नाक में उंगली डालना, अपने कान, बाल आदि खुजलाना, शरीर को हिलाते

रहना, जम्हाई लेना या कोई अन्य कार्य करना तथा अशोभनीय हरकत करने जैसे कार्य अशिष्टता भरे व्यवहार माने जाते हैं। इन पर आवश्यक रूप से ध्यान देने की जरूरत है। ऐसी भूल कदापि नहीं करनी चाहिए, क्योंकि जो व्यक्ति ऐसी भूल करते हैं, उनके मित्रों की संख्या धीरे-धीरे घटती चली जाती है। यदि आपको तर्क करना हो या आप उनकी बातों से असहमत हों तो पहले उनकी बातें पूरी हो जाने दें। उसके बाद बड़े ही शिष्टभाव से उपयुक्त शब्दों में उन्हें समझाएं कि आपने उनकी किन बातों को सही नहीं समझा या आप उनकी किन बातों से सहमत नहीं हैं और उस तथ्य पर आपके विचार क्या हैं?

आपको हमेशा इन बातों का ख्याल रखना चाहिए कि आपके मुंह से भी कभी दूसरों का अपमान हो सकता है, तब आप भी एक अभद्र व्यक्ति की गिनती में आ जाएंगे, जबकि आप एक विवेकशील व्यक्ति हैं। यदि सामने वाले ने कोई भूल कर दी, तो आप भी उस हरकत को क्यों दोहराना चाहते हैं? यदि आपके पास योग्यता है, तो शब्दों की भूल को शब्दों से ही सुधारें। आप ध्यान दें कि जब कोई व्यक्ति बार-बार अपने उत्तेजक शब्दों से आप पर प्रहार कर रहा हो और आप प्यार व मुस्कुराहट से उसकी हर बातों को बिना जवाब देते हुए हंसकर झेल जाते हैं, तो वह व्यक्ति यह आशा जरूर करेगा कि जिन कड़े शब्दों का प्रयोग मैंने इस व्यक्ति के लिए किया, यह भी उसी रूप में उत्तर देगा, पर जवाब न देने पर वह व्यक्ति बहुत ही विचलित हो जाएगा।

•

102

हृदय का आमंत्रण है प्रणाम

भारतीय वांग्मय में प्रणाम की परंपरा प्राचीन काल से ही रही है। इसके तहत जब भी कोई व्यक्ति अपने से बड़ों के पास जाता है तो वह 'प्रणत' हो जाता है। प्रणाम का सीधा संबंध 'प्रणत' से है, जिसका अर्थ होता है विनीत होना, नम्र होना और किसी के सामने शीश झुकाना। चूंकि व्यक्ति की कामनाएं अनंत होती हैं, अतः यह उस व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह अपने से बड़ों के पास कैसी कामना लेकर गया है। प्रणत व्यक्ति अपने दोनों हाथ जोड़कर तथा अपनी छाती से लगाकर बड़ों को प्रणाम करता है।

कहा जाता है कि प्रणाम करते समय दोनों हाथ की अंजलि छाती से सटी हुई होनी चाहिए। भारतीय वांग्मय में इसी प्रकार प्रणाम करने की परंपरा रही है। इसके अलावा प्राचीन काल में गुरुकुलों में दंडवत प्रणाम का भी विधान रहा है, जिसका अर्थ है – बड़ों के चरणों पर साष्टांग लेट जाना। उस काल में दंडवत प्रणाम का उद्देश्य था–गुरु के चरणों के अंगूठे से प्रवाहित हो रही ऊर्जा को अपने मस्तक पर धारण करना। माना जाता है कि इस ऊर्जा के प्रभाव से शिष्य के जीवन में परिवर्तन होने लगता था। हालांकि भारतीय वांग्मय में गुरु द्वारा हाथ उठाकर आशीर्वाद देने का विधान भी है। शास्त्रों के अनुसार इस मुद्रा का भी वही प्रभाव होता है। दरअसल, जब गुरु हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हैं, तो उनके हाथ की उंगलियों से निकला ऊर्जा का प्रवाह शिष्य के मस्तिष्क में प्रवेश कर जाता है, जिससे उसके जीवन में परिवर्तन होने लगता है।

हालांकि आज के परिवेश में प्रणाम करने की जो परंपरा है, वह बहुत हास्यास्पद है, क्योंकि प्रणाम करने वाला अपने से बड़ों को न कोई पात्र लेकर और न ही कोई कामना लेकर प्रणाम करता है। फलस्वरूप बड़े भी उन्हें आशीर्वाद नहीं देते या देने में कंजूसी करते हैं। इस प्रकार दोनों तरफ से नकली कारोबार चलता रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रणाम करने वाला आज जिस प्रकार प्रणाम करता है, वह नाटक जैसा लगता है। ऐसा लगता है जैसे वह अपने से बड़ों को प्रणामनुमा कुछ कर रहा है। हालांकि प्रणाम तो हृदय से निकलने वाली कामनाएं हैं। यह एक आमंत्रण है। किसी भक्त की आंखों को देखकर ही यह बताया जा सकता है कि प्रणाम असली है या नकली।

प्रणाम हृदय से किया जाता है और जब उस प्रणाम को आशीर्वाद मिलता है तो उसका प्रत्यक्ष फल भी मिलता है, लेकिन शर्त यह है कि प्रणाम कितनी सच्चाई से किया गया है। प्रणाम सीधी तरह से बड़ों के समक्ष आत्म-निवेदन है और आत्म-निवेदन कभी भी नकली नहीं होगा। उसे हर हालत में असली होना होगा, प्रणाम तभी फलीभूत होगा। जिन लोगों को अपने से बड़ों का आशीर्वाद चाहिए, ताकि वे जीवन में फलें-फूलें तो निश्चित रूप से उन्हें बड़ों को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करना होगा। क्योंकि बड़ों के हृदय से निकला एक-एक शब्द उसके जीवन में परिवर्तन ला सकता है। कोई भी साधक शक्ति तभी अर्जित कर पाता है, जब उसे गुरु का आशीर्वाद मिलने लगता है।

•

103

पैर छूकर प्रणाम से मिलती है ऊर्जा

आजकल प्रणाम की जो परम्परा हमारे समाज में चल रही है, उसमें कितना परिवर्तन हुआ, आप देख और महसूस कर सकते हैं। आजकल तो ऐसी प्रथा-सी चल पड़ी है कि लोग प्रणाम का उत्तर प्रणाम से ही दे देते हैं। जब कभी भी किसी ने आपके प्रणाम का उत्तर प्रणाम से ही दिया तो फिर इसका अर्थ यह हुआ कि उस व्यक्ति ने आपकी चिंता और आपके कष्टों पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसे आपकी पीड़ाओं से कोई मतलब नहीं है। पर आज तो प्रणाम करने के तरीकों में ही परिवर्तन आ चुके हैं। अब के समय के लोग तो पांव छूने से भी कतराने लगे हैं, जबकि पैर छूने का मनोवैज्ञानिक अर्थ यह होता है कि मैं आपके पांव छूकर आपके शरीर से स्रवित हो रही ऊर्जा को ग्रहण कर रहा हूँ। मैं आपके पांव छू रहा हूं, फिर आप मेरे सिर पर अपना हाथ रख देते हैं, इन दोनों ही प्रकारों से आपके शरीर की ऊर्जा मेरे शरीर में प्रवेश कर रही है।

हमारे द्वारा दण्डवत् प्रणाम करने के मनोविज्ञान के अनुसार, जब हम किसी बड़े को दण्डवत् प्रणाम करते हैं तो उनके पांव के अंगूठे से जो ऊर्जा निकल रही होती है, उसे हम सीधे अपने मस्तिष्क से स्पर्शित करते हुए प्राप्त कर लेते हैं। हमारे गुरुकुलों में तो बात केवल दण्डवत् प्रणाम करने तक ही नहीं रही, अपितु वहां के छात्रों ने तो गुरु का चरणामृत लेने की भी परम्परा बना डाली।

इस चरणामृत परम्परा में एक कठौतेनुमा पात्र में हम जल भर लेते हैं और गुरु अपने पांव के अंगूठे से उस जल को स्पर्शित करते हैं, फिर हम सभी उस जल को ग्रहण करते हैं। चरणामृत को हम इस अर्थ से भी समझ सकते हैं कि वह अमृत, जो हमें किसी के चरणों से निकल कर मिला हो। परन्तु अब ये परम्पराएं टूट चुकी हैं और पाश्चात्य प्रथा चल निकली है।

•

104

प्रणाम का अर्थ
पीड़ामुक्ति की याचना

प्राचीनकाल में दण्डवत् प्रणाम करने की परम्परा थी। दण्डवत् का अर्थ हुआ कि अपने से बड़ों के चरणों में सिर को रखकर, जमीन पर पेट के बल लेटते हुए किसी डंडे के समान लम्बा हो जाना। हमारा जो आध्यात्मिक मनोविज्ञान है, उसके अनुसार प्रणाम का मनोविज्ञान यह हुआ कि हम जब किसी के पास जाएं तो अपने दोनों हाथों को जोड़ते हुए उन्हें अपने हृदय के निकट रखकर अपना निवेदन करें। ऐसा तो आज भी गांवों में देखने को मिल जाता है कि जो लोग काफी गरीब होते हैं, वे किसी सम्पन्न व्यक्ति के पास अपने दोनों हाथों को जोड़ते हुए कहते हैं–प्रणाम मालिक! यहां दोनों हाथ जोड़ने का मतलब यह हुआ कि अपना दु:ख, अपनी पीड़ा और अपनी वेदना लेकर आपके पास आए हैं, आप हमारी पीड़ा को सुनें और इनसे हमें मुक्त करने का प्रयास करें। इसके उपरान्त जिन्हें प्रणाम किया जाता है, वे अपने हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि आपने जो अपनी पीड़ा बताई, हम उस कष्ट को समझते हएु उसका निराकरण करते हैं एवं आपकी उस पीड़ा में आपको सहयोग करना चाहते हैं। यह सांकेतिक भाषा में आशीर्वाद देना हुआ।

क्या आपको यह पता है कि हमारे हाथों की दस अंगुलियां और दस अंगुलियां पैरों की, सभी अंगुलियों से प्रति क्षण ऊर्जा का स्राव होता

रहता है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है। हमारे शरीर से जो ऊर्जा निकल रही है, उस ऊर्जा के माध्यम से हम आपकी ऊर्जा पर कुछ प्रभाव डालना चाहते हैं। अपनी जो संयमित और चुम्बकीय ऊर्जा है, हमने जो अपनी ऊर्जाओं का संग्रह किया हुआ है, उन्हीं ऊर्जाओं के माध्यम से हम आपकी ऊर्जाओं पर नियंत्रण करना चाहते हैं और हम आपकी पीड़ा का हरण करना चाहते हैं।

•

105

सिर झुका कर प्रणाम करें

प्रणाम के बाद जो दूसरा शब्द आता है वह है–आशीर्वाद। आशीर्वाद का अर्थ होता है कि जो प्रणत होने के लिए आपके पास आया, आपने उसे चार चीजों से युक्त कर दिया – आयु, विद्या, धन और तेज। ये चार ऐसी चीजें हैं, जिसे हम आशीर्वाद स्वरूप किसी को देते हैं। जब भी कोई छोटा आपको प्रणाम करता है तो आपके मुंह से अनायास ही ये शब्द निकल आते हैं–'आयुष्मान भव', 'तेजस्वी भव', 'सुखी रहो', 'खुश रहो' इत्यादि–इत्यादि।

कोई आपके पास एक चम्मच लेकर आए और इतना कहे कि आप इस चम्मच में मुझे एक किलो दूध दे दें, तो क्या यह संभव है? ठीक उसी प्रकार, यदि आशीर्वाद प्राप्त करने वाला व्यक्ति श्रद्धा–विश्वास के साथ आपके सामने प्रणत नहीं होता है तो आपके भीतर से आशीर्वाद की धारा नहीं फूट सकती है, फिर आपके आशीर्वाद के जो भी शब्द होंगे वे केवल मौखिक ही होंगे, उनकी कोई उपयोगिता नहीं होगी। इसलिए मैं कहता हूं कि आप जब भी किसी को प्रणाम करें तो आदर और श्रद्धापूर्वक करें, अन्यथा न करें। प्रणाम करने का मतलब सिर्फ यह होना चाहिए कि आप थोड़ा नत् हो जाएं, प्रणत हो जाएं, आप थोड़ा झुककर प्रणाम करें। क्योंकि यदि आपका सिर ऊंचा उठा हो तो मिले हुए आशीर्वाद को कहां रखेंगे आप? इसलिए आप थोड़ा झुकना भी सीखें। यदि मुझे यह पता चल जाए कि आप झुकते हुए मुझसे कुछ निवेदन करना चाहते

हैं तो मैं भी उसे उसी रूप में स्वीकार करूंगा और स्वतः एक आशीर्वाद की धारा बहने लगेगी, यह धारा आपको नहीं दिखेगी, लेकिन जिस पर यह धारा बहेगी, वह इसका अनुभव अवश्य ही कर लेगा कि मुझे आशीर्वाद प्राप्त हो गया और मैं धन्य हो गया, मेरा जीवन आनन्द से भर गया, मैंने अपने सारे विघ्नों को नष्ट कर दिया और मेरे जीवन का एक-एक क्षण मंगलमय हो चुका है, मेरा जीवन आनन्द से पल्लवित और प्रफुल्लित हो गया है।

•

106

श्रीकृष्ण ही धर्म है

धर्म को पारिभाषित करना आसान नहीं है। यदि कहा जाए कि श्रीकृष्ण की परिभाषा बताओ, तो यह संभव नहीं होगा। अगर हम श्रीकृष्ण को भली-भाँति समझ लेते हैं, तो फिर धर्म को अलग से समझने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। श्रीकृष्ण ने जो आचरण किया, वही हमारे लिए धर्म है। श्रीकृष्ण ने जो कहा, वही हमारा धर्म है। गोवर्धन पर्वत को उठाकर उन्होंने इन्द्रदेव को जो चुनौती दी, वही चुनौती हमारे जीवन की चुनौती है।

प्रायः देखा जाता है कि रास-लीलाओं में बड़ी भीड़ जमा हो जाती है। जहाँ रूखा-सूखा प्रवचन होता है, वहाँ बहुत कम लोग ही जाते हैं। श्रीकृष्ण को रास अच्छा लगता है, वह मोहन हैं। इसलिए आप श्रीकृष्ण को समझ लो। जैसे ही आप कृष्ण को समझ जाओगे वैसे ही धर्म भी आपको समझ में आ जाएगा। श्रीकृष्ण ने अपने पिता के प्रति कैसे कर्तव्य का निर्वहन किया? राधा के प्रति उनका क्या कर्तव्य था? उन्होंने अपने मित्रों के प्रति कैसा व्यवहार रखा? यदि तुम ये सब जानना चाहते हो, तो तुम्हें सबसे पहले श्रीकृष्ण को ही समझना होगा। इसलिए महाभारत में कहा गया है कि श्रीकृष्ण से बढ़कर और कौन हो सकता है? यदि आप छात्र हैं, तो कृष्ण आपको छात्र जीवन में ही दिखेंगे। यदि आप नई पीढ़ी के युवा बनकर मधुसूदन की ओर देखोगे, तो फिर आपको वे युवा पीढ़ी की तरह ही दिखेंगे। कहने का तात्पर्य है कि धर्म शुरू भी श्रीकृष्ण से

होता है और समाप्त भी श्रीकृष्ण पर। आप जिस रूप में श्रीकृष्ण को पाना चाहते हैं, वह आपको उसी रूप में मिलेंगे।

भगवान श्रीकृष्ण का जन्म एक चमत्कार था। श्रीकृष्ण ने द्वापर युग में उस घोर अंधकार के समय अवतार लिया, जब समाज का नैतिक पतन बहुत तेजी से हो रहा था। उस अंधकार की पृष्ठभूमि के बीच वह पूर्ण चन्द्रमा बनकर प्रकट हुए। भगवान श्रीकृष्ण ने अन्याय को ललकारने के लिए पांचजन्य का उद्घोष किया। ऐसे में जबकि अनीति चरम सीमा पर थी। शुकुनि जैसे लोग, विदुर का सभा से निकाला जाना, धर्मराज युधिष्ठिर का जुआ खोलना आदि। उन्होंने धर्म पालन के लिए पूतना, वकासुर, धेनुकासुर आदि का वध किया। कालिया नाग के फन पर बैठकर बांसुरी की तान छेड़ी। दुर्योधन उनका आतिथ्य संस्कार करके रिझाना चाहता था, फिर भी उन्हें विदुराणी का शक ही पसंद आया। उन्होंने सुदामा के चरण धोए। उनकी गुणगरिमा यह रही कि राजसूय यज्ञ में सर्वोच्च स्थान पाकर भी शिशुपाल की गालियाँ सुनीं। शिशुपाल जब सारी मर्यादाएं लांघ गया तो उनका सुदर्शन चक्र प्रकट हुआ। हालांकि ज्यादातर स्वरूप उनका बांसुरी में ही दिखता है। धर्म यदि जीवन में उतरे तो श्रीकृष्ण उस व्यक्ति के रिश्तेदार बन जाते हैं।

यदि आप चाहते हैं कि आपके देश में पूर्णतः शान्ति हो, सुख और समृद्धि साम्राज्य हो तो फिर आपको श्रीकृष्ण को अपने जीवन में उतारना ही होगा। युद्ध की भूमि में भी श्रीकृष्ण कहते हैं कि अन्याय को बढ़ता देख धर्म को भी कभी-कभी तलवार उठानी पड़ती है। श्रीकृष्ण ने भी तो महाभारत में यही किया था। उसी प्रकार हमारे मन की जो वृत्तियाँ हैं, जिससे लोग डरते हैं और कहते हैं कि तुम ब्रह्मचर्य का पालन करो। ठीक है, वह अच्छी बात है। संयमित होना, स्वयं अपने जीवन का एक बहुत बड़ा धर्म होता है। लेकिन यदि आप अपनी दुष्प्रवृत्तियों का शमन नहीं कर पा रहे हैं, तो आपके पास ज्ञान का अभाव है। इन दुष्प्रवृत्तियों का शमन आप उस स्थिति में ही कर सकते हैं, जब आपको पता हो कि आप आखिर लड़ने किससे जा रहे हैं? यदि आप क्रोध से लड़ने जा रहे

हैं, तो आपको सबसे पहले यह पता होना चाहिए कि क्रोध आखिर है क्या? जब आपको यह पता चल जाएगा कि क्रोध होता क्या है, इसके कारण क्या हैं, तो आसानी से क्रोध से लड़ा जा सकता है।

आपके अन्दर कोई भी विकार हो, उन्हें आप सामने आने दो। जिस प्रकार हम किसी मर्ज की दवा होमियोपैथी से कराते हैं, तो होमियोपैथ सबसे पहले उस बीमारी को थोड़ा और बढ़ाता है, फिर उसके बाद उसे समाप्त करता है। यदि आप विकृति की जड़ को ही समझ जाते हैं, तो काम, क्रोध, लोभ और मोह जैसी दुष्प्रवृत्तियों को आसानी से समाप्त कर लेंगे। आपका मन क्यों भाग रहा है, वह एक जगह एकाग्र क्यों नहीं हो पा रहा है? बस, आप मन की जड़ में बैठो। पहले मन के विज्ञान को समझो, फिर मन के अर्तमन को भी समझ जाओगे। इन सबको जानने से पहले आपको श्रीकृष्ण को समझना होगा।

•